

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186252

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No ^H 354.54 Accession No. H 2811

Author B19B

Title बम्बलाल, आर

भारतीय प्रशासन

This book should be returned on or before the date
last marked below.

भारतीय प्रशासन

हमारे कुछ प्रमुख प्रकाशन

राजनीति-शास्त्र के मूल सिद्धान्त	योगेन्द्र मल्लिक	१०.००
ग्रेट ब्रिटेन का संविधान	योगेन्द्र मल्लिक	४.००
भारत का संविधान एवं राष्ट्रीय विकास	गुरुमुख निहालसिंह	१०.००
भारतीय राजनीति और शासन	के आर बम्बवाल	१०.००
नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त	के आर बम्बवाल	५.००
अगले पाँच साल	जी एम पथिक	५.००
भारत का सचित्र संविधान	प्रो० इन्द्र	२.००
सत्याग्रह और विश्व शान्ति	गगनाथ दिवाकर	१.५०
क्रान्तिवाद	त्रिश्वनाथराय	५.००
सभा-शास्त्र	न० वि० गाडगिल	६.००
राष्ट्रपति और राष्ट्रपति-भवन (सचित्र)	वाल्मीकि चौधरी	६.००
भारत का सांस्कृतिक इतिहास (सचित्र)	हरिदत्त वेदालकार	७.००
भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय	हरिदत्त वेदालकार	१.००
भारत का चित्रमय इतिहास	महावीर अधिकारी	७.००
चम्पारन में महात्मा गांधी	डॉ० राजेन्द्रप्रसाद	५.००
भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त (१)	इन्द्र विद्यावाचस्पति	७.५०
मुगल साम्राज्य की जीवन-संध्या	राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह	६.००
दिल्ली में दस वर्ष	राजेन्द्रलाल हाण्डा	३.५०
शासन पथ-निर्देशन	पुरुषोत्तमदाम टण्डन	६.००
पृथ्वी-परिक्रमा (सचित्र)	सेठ गोविन्ददास	१२.००
यूरोप के स्कैंच (सचित्र)	रामकुमार	६.००
नेपाल की कहानी (सचित्र पुरस्कृत)	काशीप्रसाद	८.००
रजवाड़ा (सचित्र)	देवेशदाम	६.००
मनोरम कश्मीर (सचित्र)	मोहनकृष्ण दत्त	५.००
अगला कदम	हरेकृष्ण महताब	१.२५
शिवाजी की घाटियों में (सचित्र पुरस्कृत)	श्री निधि	५.००
बनराज के राज मे (सचित्र पुरस्कृत)	विराज, एम ए.	४.००
सचित्र गृह-विनोद (पुरस्कृत)	अरुण, एम ए.	८.००
सचित्र व्यंग विनोद	अरुण, एम ए.	७.००
आँखों देखा रूस	सत्येन्द्रनाथ मजूमदार	२.५०

भारतीय प्रशासन

लेखक

के. आर. बम्बवाल

एम० ए०, यू० पी० ई० एस०

सहायक प्रोफेसर, राजनीति विभाग

डी वी एस. राजकीय डिग्री कॉलेज, नैनीताल

आत्माराम साहित्य मंदिर,
कोठी, (बसस्टेण्ड,) हँदराबाद



१९५८

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

लेखक की अन्य रचनाएँ

भारतीय राजनीति और शासन	१०.००
नागरिक-शास्त्र के सिद्धान्त	५.००
Principles of Civics and Indian Administration	
Part I—Principles of Civics	3.50
Part II—Indian Administration	3.50
Indian Politics and Government (Since 1958)	8.00

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

Checked 1963

COPYRIGHT © ATMA RAM & SONS, DELHI-6

प्रकाशक

रामलाल पुरी, सचालक

आत्माराम एण्ड संस

Checked 1963

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	पाँच	रुपये
प्रथम संस्करण	:	जून	१९५८
आवरण	:	ना० मा०	इंगोले
मुद्रक	:	मूवीज प्रेस,	दिल्ली-६

प्रस्तावना

भारत के भिन्न-भिन्न महाविद्यालयों तथा बोर्ड्स ऑफ हायर सेकेंडरी एज्युकेशन में बहुत शीघ्र ही हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया जा रहा है। इस विचार में लेखक की विख्यात पुस्तक 'The Principles of Civics and Indian Administration' के चौथे अंग्रेजी संस्करण (जो अभी छप रहा है) का रूपान्तर किया गया है। यह तीसरे संस्करण का संशोधित एवं परिवर्धित (Revised and Enlarged) रूप है। इस अनुवाद में शीर्षक-उपशीर्षक (Heading and Sub-heading), पारिभाषिक शब्द (Technical Words) तथा अध्याय के अन्त में जो महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं, हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में दिये गये हैं। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक पंजाब विश्वविद्यालय की इण्टरमीडियेट कक्षा के लिए निर्धारित पाठ्य-क्रम के अनुसार ही लिखी गई है तथापि इसमें सामग्री इतनी प्रचुर मात्रा में है कि यह अन्य विश्व-विद्यालयों और बोर्डों की परीक्षा में बैठने वाले विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

1956 के राज्य-पुनर्गठन-आयोग (The State Re-organisation) के कारण संविधान में कई महत्त्वपूर्ण संशोधन हुए हैं, इसलिए यह आवश्यक हो गया कि संविधान सम्बन्धित अध्यायों को दुबारा लिखा जाये। इस अवसर का लाभ उठाते हुए स्वास्थ्य तथा शिक्षा, पंजाब यूनिवर्सिटी, केन्द्रीय सेवाएँ, पुलिस और जेल, स्थानीय स्वशासन, लोकवित्त के अध्यायों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भी किये गये हैं। इसी तरह जो अध्याय भारतवर्ष तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ सम्बन्ध रखता है उसमें भी कई नई धारयाँ सम्मिलित की गई हैं, जिनमें भारत ने राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) के साथ सम्बन्ध क्यों रखा है, भारत की विदेश नीति (India's Foreign Policy) और पंचशील (Panchsheel) के नियमों का वर्णन भी किया गया है। प्रस्तुत संस्करण में "भारत भविष्य के लिए योजना बनाता है" (India plans for the future) शीर्षक से एक नया अध्याय भी जोड़ा गया है। योजना आयोग (Planning Commission) दोनों पंचवर्षीय योजनाएँ, सामुदायिक योजना आयोग (Community Projects), केन्द्रीय कल्याण मण्डल (Central Social Welfare Board) तथा भूदान (Voluntary Land Gift) पर प्रकाश डाला है।

इस पुस्तक के संशोधन करने में अनेक पुस्तकों की सहायता ली गई है, लेखक उनके लेखकों का आभारी है, परन्तु इस पुस्तक में जो आकड़े हैं वे केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तकों "भारत 1957 तथा भारत 1958" में लिए गये हैं।

लेखक की अंग्रेजी पुस्तक के पहले तीन संस्करणों का जो जनता ने हार्दिक स्वागत किया है, उसी से प्रोत्साहित होकर यह हिन्दी संस्करण तैयार किया गया है। आशा है इसको भी वैसा ही सम्मान मिलेगा। लेखक इस प्रस्तावना को, डॉ० बी० एस० पुरी को धन्यवाद दिये बगैर समाप्त नहीं कर सकता, क्योंकि यह उन्हीं के पुरुषार्थ का फल है कि यह हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

—लेखक

विषय-सूची

१. विषय-प्रवेश

(Introductory)

भारत का वैधानिक इतिहास-संक्षिप्त विहगावलोकन (Constitutional development in India—a brief survey)—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)—भारत की संविधान-सभा (The Constituent Assembly of India) । १—१४

✓ २. भारतीय संविधान—उसकी प्रमुख विशेषतायें

(The Indian Constitution—its main features)

संविधान की प्रमुख विशेषतायें (Salient Features of the Constitution)—भारत में संघ-शासन (Federalism in India)—नये संविधान के अन्तर्गत संघ-शासन (Federalism under the New Constitution) । १५—२८

✓ ३. संघीय कार्यपालिका और विधानमण्डल

॥ (Union Executive and Legislature)

संसदीय शासन (Parliamentary Government)—भारत का राष्ट्रपति (The President of India)—उप-राष्ट्रपति (The Vice-President)—मन्त्रिमण्डल (The Cabinet)—संसद् (Parliament)—राज्य-सभा (The Council of States)—लोक-सभा (The House of the People) । २९—४८

४. राज्यों की कार्यपालिका और व्यवस्थापिका

(State Executive and Legislature)

भारत संघ के राज्य-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (States in the Indian Union Historical Background)—राज्यों का पुनर्गठन (Re-organisation of States)—राज्यों की वैधानिक स्थिति (Constitutional Position of the States)—संघ और राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन (Distribution of Powers between the Union and the States)—संघ और राज्यों के सम्बन्ध (Relations between the Union and the States)—राज्यपाल (Governor)—राज्यपाल के अधिकार (Powers of Governor)—राज्यपाल अपने अधिकारों का प्रयोग कैसे करता है ? (How does the Governor exercise his

powers ?)—ब्रिटिशकालीन गवर्नर से तुलना (Comparison with Pre-Independence Governor)—मन्त्रि-परिषद् (The Council of Ministers)—विधान सभा के सदन (Legislature Houses)—विधान-सभा (The Legislative Assembly)—विधान-परिषद् (Legislative Council)—राज्य विधानमण्डल की शक्तियाँ और उसके कृत्य (Powers and Functions of the State Legislature)—राज्य विधानमण्डल के दोनो सदनों में सम्बन्ध (Relations between the two houses of a State Legislature)—राज्य के विधानमण्डल की शक्तियों पर प्रतिबन्ध (Restrictions on the Powers of State Legislature)—विधार्थ प्रक्रिया (Legislative Procedure)—संघीय क्षेत्रों का प्रशासन (Administration of Union Territories)—अण्डमान और निकोबर द्वीप (Andaman and Nicobar Islands) । ४६—७६

५. प्रशासन में नागरिकों का योग

(Citizens' Share in Administration)

नागरिकों और सरकार में सम्बन्ध (Relations between Citizens and Government)—ब्रिटिश शासन में भारत की स्थिति (The case in India under British Rule)—पृथक् और संयुक्त निर्वाचन (Separate versus joint Electorates)—नए संविधान में मताधिकार (Franchise under the New Constitution)—नए संविधान के अधीन निर्वाचन (Election under the New Constitution) । ७७—८३

६. संघ और राज्य की न्यायपालिका

(Union and State Judiciary)

न्यायपालिका का महत्त्व (Importance of Judiciary)—राज्य का न्यायिक संगठन (Judicial Organisation in the State)—उच्च न्यायालय (High Courts)—उच्चतम न्यायालय (The Supreme Court) । ८४—९२

७. संघ और राज्यों के अधीन सेवाएँ

(Services under the Union and the States)

लोक-सेवाओं का स्वरूप और महत्त्व (Character and Importance of Public Services)—भारत में असैनिक सेवाओं का वर्गीकरण (Classification of Civil Services in India)—अखिल भारतीय सेवाओं की भरती (Recruitment of All Indian Services)—राज्य-सेवाएँ (State Services)—लोक-सेवा आयोग (Public Service Commission)—भारत की विदेश सेवाएँ (Indian Foreign Services) । ९३—९९

८. भारत की प्रतिरक्षा सेवाएँ (India's Defence Services)

भारत में प्रतिरक्षा का महत्व (Importance of Defence in India)—
भारत की प्रतिरक्षा सेवाओं का संगठन (Organisation of India's Defence
Services)—थल-सेना (Army)—नौ-सेना (Navy)—वायु-सेना (Air Force)—
प्रशिक्षण संस्थाएँ (Training Institutions) । १००—१०७

९. ग्राम शासन और उसका संगठन (Village Government and its Organisation)

भारतीय ग्रामों के प्रकार (Types of Villages in India)—भारतीय
गाँवों की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Villages)—भारतीय गाँवों
का प्रशासन (Administration of the Indian Village) । १०८—११४

१०. जिले का प्रशासन (District Administration)

भारत के मुख्य प्रशासनिक विभाग (Chief Administrative Divisions of
India)—कमिश्नर (Commissioner)—जिला अधिकारी (District Officer)—
जिला अधिकारी को न्याय और कार्यपालन के अधिकार (Combination of Exe-
cutive and Judicial Powers in the District Officers)—जिला-अधिकारी का
महत्व (Importance of District Officer)—स्वतन्त्रता के बाद स्थिति में परिवर्तन
(The change in the District Officer's Position brought about by Inde-
pendence)—जिला-प्रशासन का संगठन (The Organisation of District
Administration) ।

११५—१२५

✓ ११. ग्रामों तथा नगरों का स्थानिक स्वशासन (Local Government—Local and Urban)

✓ स्थानिक स्वराज्य क्या है ? (What is Local Self-Government ?)—
स्थानिक स्वराज्य का महत्व (Importance of Local Self-Government)—भारत
में स्थानिक स्वराज्य की संस्थाएँ (Institutions of Local Self-Government)—
प्राचीन भारत में स्थानिक स्वराज्य (Local Self-Government in Ancient
India)—मुसलमानों के काल में स्थानिक स्वराज्य (Local Self-Government
during the Muslim Period)—ब्रिटिश काल में स्थानिक स्वराज्य (Self-Govern-
ment under the British)—पंजाब में म्युनिसिपल कमेटियाँ (Municipalities in

the Punjab)—म्युनिसिपल कमेटियों के अधिकार और कर्तव्य (Powers and functions of Municipal Committees)—म्युनिसिपैलिटियों का आय-व्यय (Income and Expenditure of Municipalities)—म्युनिसिपैलिटियों की आय में वृद्धि की आवश्यकता (Need for Increasing the Income of Municipalities)—म्युनिसिपैलिटियों पर सरकारी नियन्त्रण (Government Control over Municipalities)—म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन या नगर-निगम (Corporations)—टाउन एरिया कमेटीयाँ (Town Area Committees)—नोटिफाइड एरिया कमेटी (Notified Area Committees)—कन्टूनमेन्ट बोर्ड (Cantonment Boards)—इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट (Improvement Trusts)—पोर्ट ट्रस्ट (Port Trust)—ज़िला-बोर्ड (District Boards)—ग्राम-पंचायतें (Village Panchayats)—पंचायत-प्रणाली की त्रुटियाँ (Defects in Panchayat System)—पंचायत-प्रणाली के सुधार के उपाय (Suggestions for the Reforms of Panchayat System)—उत्तर-प्रदेश में पंचायती-राज्य (Panchayat Rajya in U. P.)—पंजाब में पंचायती-राज्य (Panchayat Rajya in Punjab)—स्थानिक सरकार का मूल्य-निरूपण (Estimate of the working of Local Bodies)—स्थानिक मस्याओं की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें (Conditions Necessary for the success of Local Institutions)—सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Improvement)।

१२६—१५२

१२. सार्वजनिक वित्त

(Public Finance)

भारत राज्य का लोक वित्त (Public Finance in India)—संघीय सरकार की 1958 की आमदनी के प्रमुख साधन (Sources of Revenue of the Central Government)—केन्द्रीय सरकार के 1958 के मुख्य व्यय (Expenditure of the Central Government)—राज्यों की सार्वजनिक वित्त-व्यवस्था (Public Finance in States)—पंजाब का आय-व्यय लेखा (Revenue and Expenditure of the Government of Punjab), 1958 का मुख्य तथा उस पर आलोचना।

१५३—१६१

१३. सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा और शिक्षा

(Public Health, Medical Relief and Education)

भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की दशा (The State of Public Health in India)—भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा का संगठन (Organisation of Public Health and Medical Relief in India)—राज्यों में सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा का संगठन (Organisation of Public Health and

Medical Relief in States)—भारत में शिक्षा का महत्त्व (Importance of Education in India)—भारत की शिक्षा-प्रणाली (Educational System in India)—केन्द्रीय शिक्षा-अधिकारी (Union Educational Authorities)—राज्यों में शिक्षा-अधिकारी (Educational Authorities in the States)—भारत में प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या (The Problem of Primary Education in India)—हमारी शिक्षा-प्रणाली की त्रुटियाँ (Defects in our Educational System) । १६२—१७५

१४ पंजाब विश्वविद्यालय (The Punjab University)

विश्वविद्यालय (University)—विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)—पंजाब विश्वविद्यालय का संगठन और संचालन (Organisation and Working of the Punjab University)—विश्वविद्यालय का संगठन—कुलपति, उपकुलपति, रजिस्ट्रार, आदि (Its Organisation—Chancellor, Vice-Chancellor, Registrar, etc.)—पंजाब विश्वविद्यालय का बजट (Budget of the Punjab University) । १७६—१८२

१५. पुलिस और जेल (Police and Jails)

पुलिस की आवश्यकता और महत्त्व (The need and importance of the Police)—पंजाब में पुलिस का संगठन (Organisation of the Police in the Punjab)—पुलिस और जनता (Police and the People)—लन्दन की पुलिस (London Police)—जेलें (Jails)—पंजाब का कारावास प्रशासन तथा संगठन (Jail Organisation and Administration in the Punjab)—बोर्स्टल जेलों पर एक टिप्पणी (A note on Borstal Jails) । १८३—१९१

१६ सहकार (Co-operation)

सहकार क्या है ? (What is Co-operation ?)—सहकारी समाजों का रूप (Forms of Co-operative Societies)—सहकारी समाजों का संगठन और उनकी वित्तीय स्थिति (Organisation and Financial Structure of Co-operative Societies)—पंजाब में सहकारी आन्दोलन (Co-operative Movement in Punjab)—भारत में सहकारी आन्दोलन के लाभ और सफलताएँ (Benefits and Achievements of the Co-operative Movement in India)—सहकारी आन्दोलन की धीमी उन्नति के कारण (Causes of Slow Progress of the Co-operative Movement) । १९२—१९६

१७. भारत, राष्ट्रमण्डल और संयुक्त राष्ट्र संघ (India, Commonwealth and the U.N.O.)

राष्ट्रमण्डल (Commonwealth of Nations)—भारत ने राष्ट्रमण्डल की सदस्यता क्यों स्वीकार की ? (Why India accepted the Membership of the Commonwealth ?)—भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ (India and the U.N.O.)—भारत की विदेश नीति और पंचशील (India's Foreign Policy and Panchsheel) । २००—२१०

१८. भारत भविष्य के लिए योजना बनाता है (India Plans for the Future)

भारत की दरिद्रता (India's Poverty)—सरकार की औद्योगिक नीति तथा पंचवर्षीय योजना (India's Industrial Policy and Five Year Plan)—प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan)—दूसरी पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan)—केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल (Central Welfare Board)—भूदान (Voluntary Land Gift) । २११—२१७

भारतीय प्रशासन



अध्याय १

विषय-प्रवेश

(Introductory)

१ भारत का वैधानिक इतिहास—संक्षिप्त विहगावलोकन (Constitutional Development in India—a brief survey)

विद्रोह (1857) के वैधानिक परिणाम (Constitutional effects of the mutiny 1857) —'1857 का विद्रोह भारत के वैधानिक विकास के संक्षिप्त सर्वेक्षण के लिए उचित प्रदान प्रिन्द है। स्वतन्त्रता का पहला संग्राम' स्वयं किन्हीं सीधे वैधानिक कारणों का परिणाम नहीं था। फिर भी वह भारत के वैधानिक इतिहास में एक महान् सीमा-चिह्न था। 1857 के पूर्व भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामक एक व्यापारिक मस्या करती थी। उन दिनों देश का सम्पूर्ण प्रशासन एक विदेशी नौकरशाही (Alien Bureaucracy) के हाथों में था। सरकारी नौकरियों (Public Services) और फौज में कुछ भारतीयों को छोटे-छोटे पद प्राप्त थे लेकिन उनका राजनीतिक प्रभाव कुछ नहीं था। भारत के राजनीतिक जीवन में भारतीय जनता का कहीं नाम भी न था। उस काल में प्रतिनिधित्व की कोई प्रणाली नहीं थी और शासक एवं शासितों के बीच एक ऊँची दीवार खड़ी थी। विद्रोह ने इस शासन-प्रणाली में व्यापक परिवर्तन कर दिया। ईस्ट इण्डिया का शासन समाप्त हो गया और भारत का प्रशासन राजमुकुट (Crown)^१ ने अपने हाथों में ले लिया।

१ राजमुकुट (Crown) एक प्रतीकात्मक शब्द है। इसका अभिप्राय ब्रिटिश सम्राट् अथवा साम्राज्ञी से है।

1861 के भारतीय परिषद् अधिनियम (Indian Councils Act 1861) ने सम्पर्क की नीति (Policy of Association) प्रारम्भ की। इस अधिनियम के द्वारा देश में सबसे पहले केन्द्रीय और राज्य विधान मण्डलों की स्थापना हुई। भारत में प्रतिनिधिक शासन (Representative Government) को स्थापित करने की दिशा में यह पहला कदम था।

~ सम्पर्क की नीति—1919 में उसका उत्कर्ष (The Policy of Association—its culmination in 1909)—यह नीति जिसका उद्देश्य देश में प्रशासन को लोकमत के प्रति उत्तरदायी बनाना था, 1892 में एक कदम और आगे बढ़ी और 1909 के भारतीय परिषद् अधिनियम (Indian Councils Act of 1909) के रूप में उसका उत्कर्ष हुआ। इस अधिनियम को मार्ले-मिंटो सुधार (Morley-Minto Reforms) भी कहते हैं। 1861 से 1909 तक जो भी परिवर्तन हुआ, वह परिणामात्मक था। विधान मण्डलों में भारतीय प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ गई, लेकिन शासन का स्वरूप यथावत् ही बना रहा। विधान-मण्डल संसद नहीं, प्रत्युत दरवाजे थे और उनकी शक्तियाँ बहुत मर्यादित थी। उनका कार्यपालिका (Executive) के ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं था। कार्यपालिका का नौकरगद्दी और अनुत्तरदायी ही बनी रही। विधान मण्डलों में सरकारी पक्ष का बहुमत रहता था, फलतः अधिशासनिक क्षेत्र की भाँति विधायी क्षेत्र में भी अंग्रेजों का ही प्रभुत्व कायम रहा। मार्ले-मिंटो सुधार (Morley-Minto Reforms) इसलिए भी विख्यात हैं कि उन्होंने साम्प्रदायिक निर्वाचनों (Communal Electorates) का श्रीगणेश किया। इन निर्वाचनों ने भारतीय राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई धारा को रोका और आगे चल कर देश का विभाजन किया।

मैकाले (Macaulay) के शब्दों में 'सम्पर्क की नीति' (Policy of Association) का केवल एक ही उद्देश्य था—वह था देश में 'प्रबुद्ध निरकुशता' (Enlightened Despotism) की स्थापना करना। उस समय अधिकांश अंग्रेजों का विचार था कि भारत के लिए केवल यही शासन-प्रणाली उपयुक्त है। अंग्रेज भारत में इंग्लैण्ड जैसे उत्तरदायी शासन की स्थापना करना बिल्कुल नहीं चाहते थे। उत्तरदायी शासन में जनता अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा शासित होती है। इस शासन की एक विशेषता यह भी है कि कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है क्योंकि व्यवस्थापिका जनता का प्रतिनिधित्व करती है और उसकी ओर से बोलती है।

उत्तरदायी शासन की ओर प्रवृत्ति (Trend towards responsible Government)—जैसी कि आशा की जा सकती है, भारतीय जनता सम्पर्क की नीति से अधिक समय तक संतुष्ट नहीं रह सकती थी। इण्डियन नेशनल कांग्रेस (Indian National Congress) ने न केवल प्रतिनिधिक शासन की ही प्रत्युत उत्तरदायी शासन की भी माँग बार-बार प्रस्तुत की। यद्यपि यह माँग साफ तौर से तो नहीं उठाई गई थी, लेकिन कांग्रेस ने 'औपनिवेशिक स्वशासन' (Colonial Self-rule) के लिए जो सकल्प उपस्थित किए थे, उनमें यह माँग गंभीर थी। शुरू-शुरू में तो इस माँग का कोई खास

असर नहीं हुआ लेकिन 1914-18 के प्रथम महायुद्ध ने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दीं, जिन्होंने भारत के वैधानिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति आवश्यक कर दी।

२. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background)

एस्कविथ (Asquith) के शब्दों में महायुद्ध ने ब्रिटिश सरकार को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वह भारतीय समस्या पर एक नई दृष्टि से विचार करे। अब 'प्रबुद्ध निरकुशता' (Benevolent Despotism) की पुरानी नीति में संशोधन की आवश्यकता मालूम पड़ने लगी। इस नीति को प्रमुख दुर्गलता यह थी कि इसके अनुसार भारतीयों का प्रशासन से कोई सम्बन्ध नहीं था। अब यह स्पष्ट हो गया था कि भारत में धीरे-धीरे न केवल प्रतिनिधिक शासन (Representative Government) की ही प्रत्युत उत्तरदायी शासन (Responsible Government) की भी स्थापना की जाये। इसके लिए यह अपेक्षित था कि इंग्लैण्ड की भारत सम्बन्धी औपनिवेशिक नीति में आधारभूत परिवर्तन हो। 1920 में लार्ड मिंटो (Lord Minto) ने कहा था, 'हमने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि पाश्चात्य अर्थों में प्रतिनिधिक शासन भारतीय साम्राज्य के ऊपर बिल्कुल लागू नहीं हो सकता और वह प्राच्य लोगों की परम्पराओं के प्रतिकूल होगा। भारतीय परिस्थितियाँ लोक-प्रतिनिधित्व की अनुमति नहीं देती, देश की सुरक्षा और कल्याण ब्रिटिश प्रशासन की परमेष्ठता के ऊपर आधारित है और यह परमेष्ठता किन्हीं भी परिस्थितियों में प्रतिनिधिक सभा को नहीं सौंपी जा सकती।'

1917 की घोषणा (The Declaration of 1917)—1910 में ब्रिटिश सरकार का यह दृष्टिकोण था। लेकिन सात वर्ष के पश्चात् यह दृष्टिकोण काफी बदल गया। कुछ तो इस कारण कि महायुद्ध के दिनों में भारत ने इंग्लैण्ड को जन-धन दोनों में महायुद्धादी थी और कुछ इस कारण कि भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति अनन्योप दिन प्रतिदिन तीव्र होता जाता था। ब्रिटिश अधिकारियों ने यह आवश्यक समझा कि भारत में ब्रिटिश नीति के लक्ष्य की फिर से व्याख्या कर दी जाये। महायुद्ध के दिनों में भारत में होमरूल आन्दोलन (Home Rule Movement) चला था, इसका भी सरकार के ऊपर बहुत दबाव पड़ा था। भारत मंत्री श्री मांटैग्यू (Montague) ने 20 अगस्त 1917 की घोषणा में यह नई नीति स्पष्ट की। उन्होंने कहा, 'ब्रिटिश सरकार की नीति यह है और उससे भारत सरकार पूरी तरह सहमत है कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाये जो स्वशासन के कार्य में लगी हुई हैं जिससे भारत में शनः शनः उत्तरदायी शासन की स्थापना की जा सके और वह ब्रिटिश साम्राज्य के एक अंग के रूप में रह सके।' लेकिन भारत मंत्री ने यह भी साफ साफ कह दिया था कि "इस नीति में प्रगति सीढ़ी-दर-सीढ़ी होगी और ब्रिटिश सरकार व भारत सरकार ही इस बात की निर्णायक होंगी कि कब और कितना कदम आगे बढ़ाना चाहिए।"

1919 के सुधार (The 1919 Reforms)—भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार की नई नीति 1919 के भारत-सरकार-अधिनियम (Government of India Act of 1919) में प्रकट हुई, यह अधिनियम मोंटफोर्ट सुधारों (Montford Reforms) के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस अधिनियम ने पहली बार प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी शासक की स्थापना की। इस अधिनियम के अनुसार कतिपय हस्तान्तरित विषयों (Transferred Subjects) को निर्वाचित मंत्रियों की अधीनता में रखा गया। ये मंत्री विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होते थे। शेष विषय जो सुरक्षित विषय (Reserved Subjects) कहलाते थे गवर्नर के नियंत्रण में बने रहे। गवर्नर इन विषयों का प्रबन्ध अपनी कार्यपालिका-परिषद् (Executive Council) की सहायता से करता था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि 1919 के अधिनियम ने प्रान्तीय क्षेत्र में द्वैध शासन-प्रणाली (Dyarchy) की स्थापना की। इस अधिनियम के फलस्वरूप केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान मण्डलों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत भी हो गया। केन्द्रीय कार्यपालिका (Central Executive) अर्थात् गवर्नर जनरल और उसकी कार्यपालिका परिषद् के सदस्य यथापूर्व अनुत्तरदायी बने रहे।

उनकी असफलता (Their Failure) — निगमन, 1919 के सुधारों में भारतीय जनता को कोई मतोप लाभ नहीं हुआ। भारतीय देशभक्तों ने जो आशा की थी कि सरकार डोमिनियन स्टेटस (Dominion Status) की दिशा में कोई बड़ा कदम उठायेगी। लेकिन 1919 के सुधारों ने उनकी इस आशा को धूल में मिला दिया। सच तो यह है कि इन सुधारों का लक्ष्य भारतीय राष्ट्रवादियों की राजनीतिक क्षुधा को तृप्त करना नहीं, प्रत्युत 1909 के सार्तो-मिटो सुधारों द्वारा प्रारम्भ किये गये साम्प्रदायिक निर्वाचनों का और अधिक विस्तार करके देश के राजनीतिक जीवन को विपात व राष्ट्रीय आन्दोलन को दुर्बल करना था।

असहयोग आंदोलन और दमन (Non-cooperation and Repression) — युद्धकाल में प्रधान मंत्री लायड जार्ज (Prime Minister Lloyd George) और राष्ट्रपति विल्सन (President Wilson) ने यह वारम्बार कहा था कि मित्र राष्ट्र (Allies) राष्ट्रीय आत्म-निर्णय (National Self-determination) के सिद्धान्त की रक्षा करने के लिए लड़ रहे हैं। युद्ध का अन्त होने पर कांग्रेस ने माँग की कि राष्ट्रीय आत्म-निर्णय (National Self-determination) के सिद्धान्त को भारत के ऊपर लागू किया जाये। ब्रिटिश सरकार ने इस माँग का उत्तर मार्च 1919 में रोलट एक्ट (Rowlatt Act) पास करके दिया। यह अधिनियम जनता की नागरिक स्वतंत्रताओं (Civil Liberties) के ऊपर कुठाराघात था। इस अधिनियम के अनुसार लोगों को बिना किसी अभियोग के गिरफ्तार किया जा सकता था। यह दमनमूलक कानून भारत के राष्ट्रीय सम्मान के लिए एक चुनौती था। इस अधिनियम के परिणामस्वरूप ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथों में आ गया। महात्मा गांधी ने इस काले कानून का विरोध करने के लिए सारे देश का आवाहन

किया। उनके आदेश पर 6 मार्च, 1919 को देशव्यापी हड़ताल हुई। इससे सारे देश में अपूर्व उत्साह पैदा हो गया। 13 अप्रैल, 1919 को जलियावाला बाग में जो भीषण हत्याकांड हुआ, उसने जनता के असंतोष में और वृद्धि की। कांग्रेस ने कलकत्ते के अपने विशेष अधिवेशन में महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम को स्वीकार किया। महात्मा गांधी द्वारा संचालित आन्दोलन के दौरान (1920-22) में तीस हजार ने अधिक देशभक्तों ने 'कृष्णमंदिर' (जेल) की यात्रा की। यद्यपि चोरी-चोरा (उत्तर प्रदेश) कांड के कारण महात्मा गांधी ने आन्दोलन को प्रकस्मात् ही स्थगित कर दिया था, पर उसके कारण यह बात स्पष्ट हो गई कि 1919 के सुधार "अपर्याप्त असन्तोषकर और निराशाप्रद" (Inadequate, Unsatisfactory and Disappointing) हैं। ब्रिटिश सरकार ने भी साइमन कमीशन (Simon Commission) को निश्चित अवधि में पूरा नियुक्त करके मोटफोर्ड सुधारों की असफलता परीक्षित स्वीकार कर ली।

साइमन कमीशन और नेहरू रिपोर्ट (Simon Commission and Nehru Report)—साइमन कमीशन 1928 में भारत आया। उसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। उसमें एक भी भारतीय न था। फलतः भारतीय लोकमत के समस्त वर्गों ने उसका प्रतिवाद किया। कांग्रेस ने साइमन कमीशन का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया। जब साइमन कमीशन उस बात की जाच-पड़ताल करने में व्यस्त था कि भारतीय उत्तरदायी शासन को प्राप्त करने के लिए कहां तक योग्य है, भारत के विपक्षी राजनीतिक नेताओं ने फरवरी 1928 में एक सर्व-दल सम्मेलन (All Parties Conference) का आयोजन किया और पं० मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में भारत के लिए एक संविधान बनाने के प्रयोजनार्थ एक समिति नियुक्त की। भारतीय राष्ट्रवादियों की यह चेष्टा लार्ड बर्केनहेड (Lord Birkenhead) की उस चुनौती के उत्तर में थी कि भारतीय स्वयं ऐसा कोई शासन विधान तैयार नहीं कर सकते जो देश के समस्त वर्गों को स्वीकार्य हो। इस समिति द्वारा तैयार की गई नेहरू रिपोर्ट ने डोमीनियन स्टेटस के सिद्धान्त पर आधारित संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत की। कांग्रेस ने इस संविधान को उस शर्त पर स्वीकार किया कि ब्रिटिश सरकार 31 मिनस्टर, 1928 तक भारत को डोमीनियन स्टेटस दे दे।

पूर्ण स्वराज्य और सविनय अवज्ञा आन्दोलन (Purna Swaraj and Civil Disobedience)—कांग्रेस की उसन साग का लार्ड इर्विन (Lord Irwin) ने 31 अक्टूबर, 1929 की अपनी घोषणा में यह उत्तर दिया कि 1917 के घोषणापत्र का अभिप्राय असंदिग्ध रूप से यह है कि भारत को अन्त में डोमीनियन स्टेटस प्राप्त हो। चूंकि लार्ड इर्विन का यह वक्तव्य केवल दासने वाला था और ब्रिटिश सरकार को किसी ठोस कार्यवाही के लिए बचनबद्ध नहीं करता था, अतः क्रोध होकर कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन (1929) में पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य अपनाया। इस अधिवेशन की अध्यक्षता पं० जवाहरलाल नेहरू ने की थी। इसके साथ ही इस अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को अधिकार दिया गया कि वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सविनय

अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर सकती है। महात्मा गांधी ने पुनः इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। यह आन्दोलन उनकी दांडी-यात्रा के साथ प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन ने जनता में नई प्राणज्वाला फूँक दी। सरकार ने भी अपने दमन-चक्र को जितनी तेजी से हो सकता था, चलाया। उसने कांग्रेस को अवैध सस्था घोषित कर दिया और हजारों लोगों को जेल में ठूस दिया।

गोलमेज परिषद् तथा साम्प्रदायिक निर्णय (Round Table Conference and Communal Award)—लेकिन, ब्रिटिश सरकार इस बात को समझ गई थी कि खाली दमन से ही राष्ट्रीय आन्दोलन नहीं दब सकता। उसने एक गोलमेज परिषद् (Round Table Conference) के द्वारा भारत की वैधानिक समस्या को सुलझाने का प्रयास किया। पहली गोलमेज परिषद् 12 नवम्बर, 1930 को लन्दन में हुई। इसमें कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए सरकार ने महात्मा गांधी के साथ समझौते की बातचीत शुरू की। इस बातचीत के फलस्वरूप गांधी-इर्विन पैक्ट हुआ और समस्त राजनीतिक कंदियों को मत्त कर दिया गया। फलतः, कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी ने दूसरी गोलमेज परिषद् में भाग लिया। लेकिन ब्रिटिश सरकार की 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति (Policy of divide and rule) के कारण साम्प्रदायिक समस्या का कोई हल न निकल सका और यह परिषद् भी विफल हुई। इस परिषद् का सबसे घातक परिणाम साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) था। इस निर्णय ने विषाक्त साम्प्रदायिक निर्वाचनों (Communal Electorates) को न केवल मुसलमानों, सिखों और आंग्ल-भारतीयों के सम्बन्ध में ही कायम रखा, प्रत्युत उन्हें तथाकथित अनुसूचित जातियों के ऊपर भी लागू कर दिया। इस तरह, यह निर्णय हिन्दू जाति की एकता के ऊपर बहुत बड़ा प्रहार था। महात्मा गांधी ने अंग्रेजों के इस कुचक्र को निष्फल करने के लिए अमरणाग्रगणन किया। फलतः, पूना-पैक्ट हुआ और यह राष्ट्रीय दुर्घटना टल गई।

✓ 1935 का भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935)—गोलमेज परिषद् की कार्यवाही और संयुक्त प्रवर समिति (Joint Select Committee) के प्रतिवेदन के आधार पर 1935 का भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935) पास हुआ। इस अधिनियम में दो भाग थे। एक भाग तो प्रस्तावित अखिल भारतीय सभ से और दूसरा प्रान्तों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने से सम्बन्ध रखता था। संघ राज्य स्थापित होने के पूर्व यह आवश्यक था कि समस्त देशी राज्यों के कम-से-कम आधी जनगण्य वाले राज्य जिन्हें संघीय-विधान-मण्डल के उच्च सदन में कुल राज्यों के समस्त प्रतिनिधियों के आधे प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो, संघ-राज्य में सम्मिलित होने के लिए तैयार हो जायें। 1935 के अधिनियम में यह भी कहा गया था कि केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली (Dyarchy) के अनुसार आंशिक उत्तरदायी शासन होगा। लेकिन चूंकि राज्यों ने प्रस्तावित संघ में मिलना स्वीकार नहीं किया, अतः न तो अखिल

भारतीय संघ (All India Federation) की ही स्थापना हुई और न आंशिक उत्तरदायी संघीय कार्य-पालिका की ही ।

प्रान्तों में काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल (Congress in Office)—अधिनियम के दूसरे भाग ने प्रान्तीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy) की स्थापना करके प्रान्तों को नई वैधानिक स्थिति प्रदान की । इसके अनुसार प्रान्तीय प्रशासन का कुल क्षेत्र उत्तरदायी मंत्रियों की अधीनता में रखा गया । लेकिन गवर्नर की स्वविवेकी शक्तियों (Discretionary Powers) और विशेष उत्तरदायित्वों (Special Responsibilities) के कारण प्रान्तीय स्वायत्तता को बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा । अधिनियम के पहले भाग अर्थात् अखिल भारतीय संघ (All India Federation) को तो सभी राजनीतिक दलों ने अस्वीकार कर दिया था, लेकिन उसके दूसरे भाग को जो प्रान्तों से सम्बन्ध रखता था, अधिकांश राजनीतिक दलों ने स्वीकार किया । काँग्रेस इस सम्पूर्ण योजना के विरुद्ध थी और उसने उसे कार्यान्वित करके नष्ट-भ्रष्ट कर डालने का निश्चय किया । उसने 1937 के निर्वाचनों में भाग लिया और छः प्रान्तों में भारी बहुमत प्राप्त किया । पहले तो काँग्रेस इन प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार नहीं हुई, लेकिन जब गवर्नरों ने इस बात का आश्वासन दे दिया कि वे अपनी विशेष शक्तियों का मनमाने ढंग से प्रयोग नहीं करेंगे, तब काँग्रेस ने इन प्रान्तों में (तथा बाद में दो प्रान्तों में और) अपने मन्त्रिमण्डल बनाये ।

द्वितीय विश्व युद्ध और भारत में वैधानिक गतिरोध (World War II and constitutional deadlock in India)—द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने तक सब काम ठीक-ठीक चलता रहा, लेकिन जैसे ही द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ, भारत में एक गम्भीर वैधानिक संकट पैदा हो गया ।

इंग्लैण्ड कहने को तो इसलिए युद्ध में शामिल हुआ कि वह सर्वाधिकारवाद (Totalitarianism) के प्रहार से लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता की रक्षा करना चाहता है । ब्रिटिश सरकार ने भारत को भी एक यद्धप्रस्त देश घोषित कर दिया और इस सम्बन्ध में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय विधान मण्डलों में जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों से कोई राय नहीं ली । काँग्रेस ने इस लोकतन्त्र शून्य प्रक्रिया का विरोध किया और कहा कि यदि इंग्लैण्ड इस बात का आश्वासन दे दे कि युद्ध समाप्त होने पर भारत को स्वतन्त्र कर दिया जायेगा तो भारत युद्ध में इंग्लैण्ड की सहायता कर सकता है, अन्यथा नहीं । चूँकि ब्रिटिश सरकार, इस प्रकार का कोई आश्वासन देने के लिए तैयार नहीं हुई, अतः काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिए । गवर्नरों ने 1935 के अधिनियम की धारा 93 के अधीन प्रान्तों में विशुद्ध नौकरशाही शासन (Bureaucratic Rule) की स्थापना कर दी ।

अगस्त की घोषणा (1940) तथा पाकिस्तान की माँग (August declaration, 1940 and demand for Pakistan)—अब क्या था ? सारे देश में असन्तोष की एक तीव्र लहर फैल गई । देश के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने कहा

कि जब तक केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नहीं होती, भारत इंग्लैण्ड के युद्ध-प्रयत्नों में कोई सहायता नहीं दे सकता। बड़े-बड़े वैधानिक प्रश्नों के सम्बन्ध में वे इस बात पर सहमत थे कि। उन्हें युद्ध समाप्त होने पर तय कर लिया जायेगा। इस स्थिति के समाधान के लिए भारत मन्त्री (Secretary of state for India) ने अगस्त 1940 में घोषणा की कि "ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में युद्ध के पश्चात् शीघ्रानिगोघ्र डोमीनियन स्टेट्स कायम करना है। भारत का संविधान मुख्यतः भारतीयों द्वारा ही बनाया जायेगा लेकिन यह संविधान बनाने समय उन दायित्वों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा जो भारत के इंग्लैण्ड के साथ दीर्घकालीन सम्बन्धों के कारण उत्पन्न हो गये हैं।" इसके साथ ही गवर्नर जनरल ने यह एलान किया कि वे अपनी कार्यपालिका परिषद् (Executive Council) में भारतीय प्रतिनिधियों को सम्मिलित करने के लिए तैयार हैं। चूँकि, यह घोषणा अस्पष्ट थी, अतः देश में इसका कोई विशेष स्वागत नहीं हुआ। गवर्नर जनरल ने कार्यपालिका परिषद् के विस्तार के सम्बन्ध में भारत के राजनीतिक दलों के नेताओं से बातचीत की, लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं निकला। इसी बीच कांग्रेस ने यह घोषणा कर दी कि वह युद्ध के पश्चात् स्वतन्त्रता से कम किसी चीज को स्वीकार न करेगी। मुस्लिम लीग पहले ही भारत के विभाजन द्वारा पाकिस्तान को प्राप्त करने का लक्ष्य अपना चुकी थी।

क्रिप्स योजना (1942) (Cripps Proposals 1942)—नवम्बर, 1941 में जापान ने युद्ध में प्रवेश किया। सिंगापुर और बर्मा पर शीघ्र ही जापान का अधिकार हो गया। चीन और अमरीका ने इंग्लैण्ड पर इस बात का दबाव डाला कि वह युद्ध के पश्चात् भारत को स्वतन्त्रता देने का वचन दे और इस प्रकार युद्ध में उसकी सहायता प्राप्त करे। इंग्लैण्ड को भी इस समय युद्ध के सफल संचालन के लिए भारत के हार्दिक सहयोग की आवश्यकता थी। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने मार्च 1942 में सर स्टेफर्ड क्रिप्स (Sir Stafford Cripps) को कुछ योजनाओं के साथ भारतीय नेताओं के साथ बातचीत करने के लिए भारत भेजा। श्री क्रिप्स की योजना में निम्नलिखित बातें थी—

(1) युद्ध समाप्त होने के तुरन्त बाद ही भारत का संविधान बनाने के लिए निर्वाचित संविधान सभा की स्थापना होगी।

(2) ब्रिटिश सरकार इस संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान को स्वीकार कर लेगी, लेकिन उसमें शर्त यह रहेगी कि यदि कोई प्रान्त नये संविधान को मानने के लिए प्रस्तुत न हो तो उसे अपने वर्तमान वैधानिक स्तर को कायम रखने का अधिकार होगा। (स्पष्टतः इसका सीधा सादा अभिप्राय चोरी-छिपे पाकिस्तान के विचार को मान्यता देना था)।

(3) जहाँ तक वर्तमान का सम्बन्ध है, गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद् (Executive Council) में सर्वोच्च सेनापति (Commander-in-Chief) को छोड़कर शेष समस्त सदस्य भारतीय होंगे। चूँकि भारतीय लोकमत प्रतिरक्षा

विभाग को भी किसी उत्तरदायी मन्त्री के नियन्त्रण में रखने का पक्षपाती था, अतः समझौते की बातें भंग हो गईं और क्रिप्स इंग्लैण्ड वापिस चले गये।

भारत छोड़ो आन्दोलन (Quit India Movement)—जिस ढंग से क्रिप्स योजना पर समझौते की वार्ता भंग हुई थी, उसने भारत में तीव्र असंतोष पैदा कर दिया। जनता की धारणा थी कि क्रिप्स का भारत आना और फिर अचानक लौट जाना ग्रमरीकी लोकमत को सतुष्ट करने की एक चाल मात्र थी। कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' (Quit India Resolution) पास किया। नौकरशाही ने इसके उत्तर में अपना नृशंस दमन-चक्र चलाया। इसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया वह भीषण उथल-पुथल थी जो इतिहास में 1942 के आन्दोलन के नाम से विख्यात है।

वैवेल का प्रस्ताव और शिमला सम्मेलन (Wavell offer and Simla conference)—भारतीय लोकमत के सभी वर्गों के अनवरत दबाव के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने मई 1941 में महात्मा गाँधी को जेल से मुक्त कर दिया। इसके एक वर्ष पश्चात् गवर्नर जनरल लार्ड वैवेल (Lord Wavell) ने भारत के वैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए एक योजना प्रकाशित की। अपनी इस योजना में लार्ड वैवेल (Lord Wavell) ने कहा कि वे कार्यपालिका परिषद् में प्रधान सेनापति को छोड़कर शेष सब भारतीय सदस्य रखने को तैयार हैं। इस योजना का सबसे बड़ा दोष यह था कि इसमें गवर्नर जनरल की कार्यपालिका परिषद् में सर्वर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों को बराबर बराबर स्थान देने की व्यवस्था की गई थी। अपनी इस योजना पर विचार-विमर्श करने के लिए लार्ड वैवेल (Lord Wavell) ने शिमला में 21 प्रमुख भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन बड़े आशामय वातावरण में प्रारम्भ हुआ लेकिन अन्त में वह मुस्लिम लीग के इस दुराग्रह के कारण कि वायसराय की इस कार्यपालिका परिषद् में केवल वही मुस्लिम सदस्य शामिल किये जायें, जो उसके अपने मनोनीत हों, असफल हो गया।

मन्त्रिमिशन योजना (Cabinet Mission Plan)—शिमला सम्मेलन के कुछ समय बाद ही इंग्लैण्ड में आम निर्वाचन (General Elections) हुए और उनमें श्रमिक दल (Labour Party) की विजय मिली। नई सरकार ने भारत को एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजने का निश्चय किया जिसके सब सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स (Sir Stafford Cripps), लार्ड पेट्रिक लारेस (Lord Pethick Lawrence) और श्री ए. वी. अलैक्जेंडर (Mr. A. V. Alexander) ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सदस्य थे। अपने एक व्यान में प्रधान मन्त्री श्री एटली (Mr. Attlee) ने कहा, "ब्रिटिश सरकार भारतवासियों की पूर्ण स्वतन्त्रता और यह निश्चय करने के लिए कि वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में रहे या न रहे अधिकार को स्वीकार करती है।" अपने एक अन्य वक्तव्य में उन्होंने कहा कि "किसी अल्पसंख्यक वर्ग को बहुसंख्यक वर्ग की राजनीतिक माँग पर अनियमित काल तक पानी फेरने का अधिकार नहीं है।"

मन्त्रिमिशन (The Cabinet Mission) 23 मार्च, 1946 को भारत आ

पहुँचा। उसने मुस्लिम लीग और कांग्रेस के चार-चार प्रतिनिधियों का एक संयुक्त सम्मेलन बुलाया, लेकिन इस सम्मेलन में दोनों दलों के बीच कोई समझौता न हो सका। अन्त में 16 मई को मन्त्रिमिश्रण ने भारत का राजनीतिक गतिरोध दूर करने लिए स्वयं अपनी ओर से एक योजना प्रस्तुत की। इस योजना में मुस्लिम लीग की पाकिस्तान सम्बन्धी माँग को अस्वीकार कर दिया गया था और ब्रिटिश भारत व देशी राज्यों को मिलाकर एक भारतीय संघ की स्थापना का प्रस्ताव किया था। योजना ने इस आधार पर कि विदेशी मामले, रक्षा और यातायात केन्द्र के अधीन रहें व शेष समस्त विषयों पर स्वायत्त प्रान्तों तथा राज्यों का नियन्त्रण रहे, भारत का भावी संविधान बनाने के लिए संविधान सभा (Constituent Assembly) के संगठन का सुझाव भी उपस्थित किया था। मन्त्रिमिश्रण योजना ने यह भी निश्चित किया था कि जब तक भारत का नया संविधान बन कर तैयार नहीं हो जाता, गवर्नर जनरल की कार्यपालिका-परिषद् (Executive Council) के स्थान पर भारत के राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित एक अन्तर्कालीन सरकार की स्थापना की जायेगी।

इस योजना को कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग ने अन्तर्कालीन सरकार (Interim Government) के लिए तो अपने प्रतिनिधि भेज दिये, लेकिन संविधान सभा (Constituent Assembly) के बहिष्कार का निश्चय किया। इस का कारण यह था कि इस प्रश्न पर कि योजना में उपबन्धित प्रांतीय गुटों का निर्माण वैकल्पिक था या अनिवार्य, मुस्लिम लीग और कांग्रेस में घोर मतभेद था।

माउन्टबैटन पंचाट और भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (Mountbatten Award and Indian Independence Act)—20 फरवरी 1947 को श्री एटली ने इस आक्षेप की घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार जून 1948 तक भारत छोड़ देगी। 3 जून, 1947 को नये गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबैटन (Lord Mountbatten) ने एक नवीन योजना प्रकाशित की जिसे कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया। यह योजना माउन्टबैटन पंचाट (Mountbatten Award) के नाम से विख्यात है। माउन्टबैटन योजना ने अंग्रेजों के भारत छोड़ने की तारीख जून 1948 से घटा कर 15 अगस्त 1947 निश्चित की, मुस्लिम लीग की पाकिस्तान सम्बन्धी माँग मान ली और बंगाल व पंजाब के विभाजन का उपबन्ध किया। योजना ने भारत और पाकिस्तान दोनों को डोमीनियन स्टेटस प्रदान किया और उन्हें इस बात की स्वतन्त्रता दी कि वे चाहें तो ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में सम्मिलित रहें और चाहें तो उसे छोड़ दें। राज्यों के सम्बन्ध में योजना में कहा गया था कि 15 अगस्त 1947 को उन पर से इंग्लैण्ड की प्रभुसत्ता (Paramountcy) उठ जायेगी और वे दोनों डोमीनियनों में से किसी एक में सम्मिलित होने के लिए अथवा अपनी स्वतंत्रता घोषित करने के लिए स्वतंत्र हों। इस योजना के आधार पर 18 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद् ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (Indian Independence Act) पारित किया। माउन्टबैटन पंचाट में वर्णित उक्त

विशेषताओं के अलावा भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने यह निर्धारित किया कि ब्रिटिश सरकार दोनों डोमोनियनों की संविधान सभाओं को शासन-सत्ता हस्तांतरित कर देगी । ये संविधान सभाएँ अपने-अपने देशों के लिए जैसा संविधान चाहें, बना सकती हैं । ब्रिटिश सम्राट् सम्बद्ध डोमोनियन के मन्त्रीमण्डल की राय पर एक गवर्नर जनरल नियुक्त करेंगे । जब तक दोनों डोमोनियनों के नये संविधान बन कर तैयार नहीं हो जाते, उनकी केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों का शासन-प्रबन्ध उपयुक्त सशोधनों सहित 1935 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935) द्वारा होगा । अधिनियम ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया था कि गवर्नर जनरल और प्रान्तों के गवर्नर अब स्वेच्छाचारी शासक नहीं रहेंगे । दूसरे शब्दों में वे सभी मामलों पर जिनमें उन की विशेष शक्तियाँ और उत्तरदायित्व भी शामिल हैं, अपने मन्त्रियों की राय के अनुसार आचरण करेंगे । भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम ने भारत-मन्त्री (Secretary of State for India) के पद को समाप्त कर दिया । अंतःशः, प्रत्येक डोमोनियन की संविधान सभा को यह अधिकार दिया गया कि जब तक नये संविधान के अधीन नये विधान मण्डलों का निर्वाचन न हो जाये, संविधान सभा डोमोनियन के विधानमण्डल का कार्य कर सकती है ।

भारतीय गणराज्य का जन्म (Birth of the Indian Republic)—स्वतंत्रता के स्वर्णोदय के साथ ही भारत की संविधान सभा जिसका दिसम्बर 1948 में उद्घाटन हुआ था, सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न विधान निर्मात्री संस्था हो गई । अब उसके ऊपर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा । नवम्बर, 1949 में उसने स्वतंत्र भारत के नवीन संविधान को पूरा किया । 26 जनवरी, 1950 से नवीन संविधान लागू हो गया और भारत एक गणराज्य बन गया । फलतः, अब भारत का ब्रिटिश सम्राट् के साथ कोई वैधानिक सम्बन्ध नहीं रहा । अब इंग्लैण्ड का सम्राट् भारत का सम्राट् नहीं था । लेकिन चूँकि भारत ने राष्ट्रमण्डल में रहने का फैसला किया, अतः उसने राजा को “स्वतंत्र राष्ट्रों के स्वतन्त्र संघ के प्रतीक और इसलिए राष्ट्रमण्डल के प्रधान के रूप में” मान्यता प्रदान की । यद्यपि भारत गणराज्य था, फिर भी राष्ट्रमण्डल के अन्य देशों ने भारत को राष्ट्रमण्डल का पूरा सदस्य स्वीकार किया ।

३. भारत की संविधान सभा (The Constituent Assembly of India)

रचना (Composition)—जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, भारत की संविधान सभा का निर्माण मन्त्रिमिशन योजना (Cabinet Mission Plan) के अनुसार किया गया था । संविधान सभा (Constituent Assembly) में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि थे ।* मोटे तौर पर प्रति दस लाख व्यक्तियों के ऊपर एक प्रतिनिधि चुना गया था । प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रान्तीय विधान मण्डलों के सदस्यों ने साम्प्रदायिक आधार पर सानुपात प्रतिनिधित्व (Proportional Representa-

tion) के द्वारा अकेली सक्रमणीय मत-प्रणाली (Single Transferable Voter System) के अनुसार किया था । मन्त्रिमिश्रण योजना ने प्रान्तों एवं विभिन्न जातियों के लिए स्थानों का निर्धारण निम्न प्रकार से किया था—

प्रतिनिधित्व-तालिका

(Table of Representation)

विभाग (क)

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	कुल जोड़
संयुक्त प्रान्त	47	8	55
मद्रास	45	4	49
बिहार	31	5	36
बम्बई	18	2	21
सी. पी.	16	1	17
उड़ीसा	9	0	9
योग	167	20	187

विभाग (ख)

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	सिख	कुल जोड़
पंजाब	8	16	4	28
सिन्ध	1	3	0	4
पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त	0	3	0	3
योग	9	22	4	35

विभाग (ग)

प्रान्त	साधारण	मुस्लिम	कुल जोड़
बंगाल	27	33	60
आसाम	7	3	10
योग	34	36	70

उक्त तालिका के अलावा दिल्ली, अजमेर-मारवाड़ और कुर्ग के चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के तीन प्रतिनिधियों को विभाग (क) में और बलोचिस्तान के एक प्रतिनिधि को भाग (ख) में रखा गया । इस संख्या में 93 प्रतिनिधि देशी राज्यों के जोड़े जा सकते हैं । इस प्रकार सविधान सभा की कुल सदस्य संख्या निम्नलिखित था—

ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि	296
देशी राज्यों के प्रतिनिधि	93
कुल	389

संविधान सभा की सीमायें (Limitations of the Constituent Assembly)—मन्त्रिमिशन द्वारा सुयोजित संविधान सभा प्रभुत्व सम्पन्न नहीं थी। उसके उपर मुख्य रूप से दो प्रतिबन्ध लगे हुए थे। **प्रथमतः** वह मन्त्रिमिशन योजना में वर्णित नये संविधान की रूपरेखा में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती थी। उदाहरणार्थ उसे प्रतिरक्षा, यातायात और विदेशी मामले छोड़ कर अन्य कोई विषय केन्द्र को हस्तांतरित करने का अधिकार न था। दूसरे, वह ब्रिटिश संसद् की अन्तिम सत्ता के अधीन थी। मन्त्रिमिशन योजना ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि सत्ता-हस्तांतरण के फलस्वरूप जो कुछ नये मामले उठ खड़े होंगे, उनके सम्बन्ध में संविधान सभा को ब्रिटिश सरकार से एक पृथक् सन्धि करनी होगी।

मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा का बहिष्कार (Muslim League boycotts Constituent Assembly)—संविधान सभा के लिए जुलाई 1946 में निर्वाचन हुए। इन निर्वाचनों में कांग्रेस ने 205 और मुस्लिम लीग ने 73 स्थानों पर विजय पाई। लेकिन जब दिसम्बर 1946 में दिल्ली में संविधान सभा का अधिवेशन हुआ, मुस्लिम लीग ने उसका बहिष्कार किया और उसने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लिए अलग-अलग दो संविधान सभाओं की अपनी पुरानी माँग को दुहराया।

3 जून के पश्चात् परिवर्तन (Change after 3rd. June)—इस प्रकार, संविधान सभा के कार्य में बाधा आ पड़ी। उसकी कई बैठकें हुईं, लेकिन संविधान-रचना का कार्य कोई विशेष प्रगति न कर सका। उसी बीच में साम्प्रदायिक उपद्रवों के कारण देश की हालत बहुत बिगड़ गई जिसके फलस्वरूप 3 जून की योजना के अनुसार 15 अगस्त, 1947 को देश का विभाजन हो गया। इस योजना (माउन्टबेटन पचाट) ने संविधान सभा के गतिरोध को भी समाप्त कर दिया। अब सभा प्रभुत्व सम्पन्न संविधान-निर्मात्री संस्था बन गई और मन्त्रिमिशन योजना ने उसके ऊपर जो प्रतिबन्ध लगाये थे, वे समाप्त हो गए।

संविधान का निर्माण (Framing of the Constitution)—संविधान सभा ने संविधान के विभिन्न अंगों पर विचार करने के लिए संघ-संविधान समिति (Union Constitution Committee), संघ-शक्ति समिति (Union Powers Committee), राज्य-संविधान-समिति (State Constitution Committee), अल्पसंख्यक और मूल अधिकार समिति (Committee on Minorities and Fundamental Rights) आदि कई समितियों को नियुक्त किया। यह ठीक ही कहा गया है कि इन समितियों की रिपोर्टों से संविधान का मास-मज्जा तैयार हुआ, लेकिन उसे अन्तिम रूप प्रारूप समिति (Drafting Committee) ने दिया। संविधान सभा ने प्रारूप समिति की स्थापना 29 अगस्त, 1947 को की। प्रारूप समिति के निम्न सदस्य थे—डॉ० भीमराव अम्बेदकर (अध्यक्ष) श्री गोपाल स्वामी आयंगर, सय्यद मोहम्मद सादुल्ला, श्री माधवराव, श्री डी पी. खेतान और श्री बी. एल. मित्र। प्रारूप समिति ने संविधान के प्रारूप को 21 नवम्बर 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष के सम्मुख उपस्थित किया। 5 नवम्बर, 1948 को यह

प्राक्त संविधान सभा के सम्मुख उपस्थित हुआ । 26 नवम्बर, 1949 को वह कतिपय संशोधनों सहित पास हो गया और स्वीकार कर लिया गया । इस प्रकार, संविधान सभा को स्वतन्त्र भारत का संविधान बनाने में 2 वर्ष, 11 महीने तथा 8 दिन लगे । भारत का संविधान बहुत लम्बा है । उसमें 395 अनुच्छेद (Articles) और 8 अनुसूचियाँ (Schedules) हैं ।

प्रश्न

1. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये ।
(क) मन्त्रिमिश्रण योजना (ख) भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम (ग) भारत की संविधान सभा ।
2. भारत सरकार के 1947 के स्वतन्त्रता अधिनियम के लिये कौन-कौन सी मुख्य घटनाएँ जिम्मेदार थी ।
3. भारतीय संविधान 1950 के निर्माण के मुख्य कारणों तथा परिस्थितियों का संक्षिप्त वर्णन करो ।
4. भारत सरकार के 1935 के अधिनियम की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करो ।
5. संक्षिप्त में भारत के विभाजन के कारण लिखो । क्या विभाजन अनिवार्य था ?

Questions

1. Write short notes on the following :—
(a) The Cabinet Mission Plan (b) The Indian Independence Act
(c) The Constituent Assembly of India
2. Enumerate the main events leading up to Indian Independence Act 1947.
(P. U. 1957).
3. Give a short account of the main causes and circumstances responsible for the constitution of 1950.
4. Point out the most outstanding features of the Government of India Act of 1935
5. Briefly state the circumstances which led to the partition of India. Could partition be avoided ?

अध्याय २

भारतीय संविधान—उसकी प्रमुख विशेषताएँ

(The Indian Constitution—Its Main Features)

१ संविधान की प्रमुख विशेषतायें (Salient Features of the Constitution)

(1) लिखित और कठोर संविधान (A written and rigid Constitution)—भारतीय गणराज्य का संविधान लिखित है। यह संसार का सबसे विशाल संविधान है। इसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ हैं। यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें शासन के प्रत्येक अंग का विवेचन किया गया है। सचाई यह है कि संसार के अन्य किसी भी देश का संविधान इतना विशाल, इतना विस्तृत और इतना बड़ा नहीं है। यह एक प्रकार से कठोर भी है। देश का कोई भी विधानमण्डल इसके सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपबन्धों को संशोधित नहीं कर सकता। लेकिन, तुलनात्मक दृष्टि से हमारा संविधान अमरीका, स्विट्ज़रलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संविधानों की अपेक्षा कहीं कम कठोर है। यह आम तौर से स्वीकार कर लिया गया है कि अच्छे संविधान को इतना लचीला होना चाहिए कि वह स्वयं ही बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप ढाल सके और विशेष परिस्थितियों का सामना बिना किसी औपचारिक संशोधन के कर सके। भारतीय संविधान में यह गुण है। संविधान में वर्णित संशोधन की प्रक्रिया भी न बहुत कठिन है और न बहुत जटिल। संशोधन की सरल और सीधी प्रक्रिया के अतिरिक्त, संविधान ने राष्ट्रपति को यह शक्ति प्रदान की है कि वह आपात की उदघोषणा निकाल कर उसके सघीय ढाँचे को एकात्मक ढाँचे के रूप में बदल सकता है। उस स्थिति में संघ सरकार सभी विषयों पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सकती है। शान्तिकाल में भी संघीय विधानमण्डल (संसद्) ऐसे किसी भी विषय पर कानून बना सकती है जिसके बारे में राज्य सभा दो-तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पास कर दे कि यह विषय राष्ट्रीय महत्व का है।

(2) सर्व प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र गणराज्य (It makes India a Sovereign Independent Republic)—संविधान की प्रस्तावना में भारत को “सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य” कहा गया है जो अपने नागरिकों के लिए न्याय (सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक) स्वतन्त्रता (विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास धर्म और उपासना की), समानता (पद और अवसर की) एवं बन्धुता (व्यक्ति की महिमा और राष्ट्र की एकता को सुरक्षित रखते हुए) प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

(3) **संघात्मक शासन** (It gives India a Federal Polity)—संविधान ने भारत में संघात्मक शासन की स्थापना की है। संविधान में कहा गया है कि भारत राज्यों का एक संघ होगा। दूसरे संघों की तरह भारत में भी दो तरह की सरकारें हैं—संघीय सरकार और राज्यों की सरकारें। संविधान ने संघ सरकार और राज्यों की सरकारों के अधिकार-क्षेत्र को स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया है। संविधान ने एक स्वतन्त्र न्यायपालिका (उच्चतम न्यायालय) की भी स्थापना की है। न्यायपालिका संविधान की व्याख्या कर सकती है और केन्द्र एवं राज्यों के बीच उठने वाले झगड़ों का निर्णय कर सकती है। यह स्मरणीय है कि यद्यपि भारतीय गणराज्य में संघ-शासन की सभी सामान्य विशेषताएँ हैं, फिर भी वह सच्चा संघ नहीं है। सचाई यह है कि उसकी आत्मा एकात्मक है। भारतीय संघ लचीला है और वह संकटकाल में एकात्मक रूप धारण कर सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय संघ का केन्द्र बहुत शक्तिशाली है और उसे अवशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं। संक्षेप में, भारतीय संघ अमरीकी संघ की अपेक्षा कनाडियन संघ के ज्यादा नज़दीक है।

(4) **संसदीय शासन-प्रणाली** (It establishes Parliamentary Government in India)—संविधान ने भारत में संसदीय शासन-प्रणाली की स्थापना की है। यह बात केन्द्र एवं राज्यों दोनों के सम्बन्ध में लागू होती है। भारत के राष्ट्रपति और राज्यों के राज्यपाल वैधानिक शासक हैं और उनकी शक्तियाँ नाममात्र की हैं। वास्तविक अधिशासनिक शक्ति का प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है जो विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है और उसी समय तक सत्तारूढ़ रहता है जब तक कि सदन उसमें अपना विश्वास प्रकट करता रहे। उस दृष्टि से भारत का संविधान अमरीका के संविधान से भिन्न है। अमरीका में राष्ट्रपति संघ का वास्तविक अधिशासनिक प्रधान है और वह संघीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। संघीय विधानमण्डल राष्ट्रपति को उसके कार्यकाल में अपने पद से अपदस्थ नहीं कर सकता।

(5) **मूल अधिकार** (Fundamental Rights)—नये संविधान ने भारत के नागरिकों को कई मूल अधिकार प्रदान किये हैं। अमरीका और रूस जैसे अन्य बहुत से देशों के संविधानों में भी मूल अधिकारों के सम्बन्ध में एक-एक अध्याय पाया जाता है, लेकिन श्री अनन्तशयनम् आयंगर के शब्दों में, “नये भारतीय संविधान में जनता को गारंटी किये गये अधिकार दूसरे बहुत से देशों में पाये जाने वाले मूल अधिकारों से अधिक विशद् और यथार्थ हैं।” संविधान के भाग 3 को जिनमें इन अधिकारों का वर्णन है, भारत का मैग्ना कार्टा (Indian Magna Carta) कहा गया है। संविधान में वर्णित अधिकारों की निम्न सात श्रेणियाँ हैं।

अधिकारों की सात श्रेणियाँ (Seven categories of rights)—(क) समता अधिकार (Right to Equality), (ख) स्वातन्त्र्य अधिकार (Right to Freedom), (ग) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation), (घ) धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार (Right to freedom of religion),

(ङ) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (Cultural and educational rights), (च) सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property), और (छ) संविधानिक उपचारों का अधिकार (Right to constitutional remedies) ।

आइये, हम अधिकारों पर अलग-अलग विचार करें ।

(क) समता-अधिकार (Right to Equality)—समता-अधिकार में कानून के समक्ष समता, धर्म, मूलवंश, लिंग या जाति के आधार पर विभेद का प्रतिषेध और राज्याधीन नौकरी के विषय में अवसर-समता सम्मिलित है । संविधान ने अस्पृश्यता का अन्त करके और दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों तथा मनोरंजन के स्थानों में सब लोगों को समान रूप से प्रवेश का व तालाब, कुओं, स्नानघाटों, सड़कों तथा सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग का सबको समान अधिकार देकर समता-अधिकार को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया है । संविधान ने बौद्धिक या सैनिक उपाधियों के अतिरिक्त अन्य सब उपाधियों को समाप्त कर दिया है । समता का अधिकार निरपेक्ष है और वह समस्त नागरिकों के ऊपर बिना किसी प्रतिबन्ध के लागू होता है । फिर भी संविधान में इस बात का निर्देश है कि स्त्रियों, बच्चों और पिछड़े वर्गों को समाज के अन्य वर्गों के समान धरातल पर लाने के लिये राज्य विशेष उपबन्ध कर सकता है । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि संविधान भारत में सामाजिक लोकतन्त्र स्थापित करना चाहता है ।

(ख) स्वातन्त्र्य-अधिकार (Right to Freedom)—स्वातन्त्र्य-अधिकार (अनुच्छेद 19) इस बात की गारन्टी देता है कि सब नागरिकों को वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य का, शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का, संस्था या संघ बनाने का, भारत राज्यक्षेत्र में अबाध संचरण का, भारत राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, सम्पत्ति के अर्जन-व्ययन तथा धारण का तथा कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार होगा । स्वातन्त्र्य-अधिकार निरपेक्ष नहीं है और उसके ऊपर कई कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए हैं । बहुत से लोगों ने इन प्रतिबन्धों की आलोचना की है और इन्हें व्यर्थ बताया है । उदाहरण के लिए निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) के अधीन जिसे संविधान का सम्मोदन प्राप्त है, किसी भी नागरिक को तीन मास तक और संसद् की स्वीकृति मिलने पर इससे भी अधिक समय तक बिना मुकदमा चलाये ही जेल में रखा जा सकता है । कहा जाता है कि यह कानून स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की भावना के प्रतिकूल है और सरकार को इस बात की शक्ति देता है कि वह अपने राजनीतिक विरोधियों को कुचल दे । इसके विपरीत राज्य की धारणा यह है कि ये प्रतिबन्ध “राज्य के शत्रुओं” का सामना करने के लिए आवश्यक हैं । संसद् ने जून 1915 में संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम पास करके भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कुछ और प्रतिबन्ध लगा दिए । इस अधिनियम के अनुसार राज्य को यह शक्ति मिल जाती है कि वह “राज्य की सुरक्षा, दूसरे देशों के साथ मैत्री सम्बन्धों, सार्वजनिक व्यवस्था, शिष्टता, नैतिकता के हित में या सत्य के तिरस्कार, अपमान या अपराध के उत्तेजन” के सम्बन्ध में भाषण और अभिव्यक्ति (Speech and expression)

के अधिकार पर उचित प्रतिबन्ध लगा सकती है। इस प्रतिबन्ध की तीव्र आलोचना हुई थी और इसे लोकतन्त्र के ऊपर आक्रमण बताया गया था। लेकिन सरकार ने इसका इस आधार पर समर्थन किया कि न्यायालयों ने अनुच्छेद 19 (क) की इतनी विस्तृत व्याख्या की है कि उसमें हिंसा को उत्तेजना देना तक जब तक कि उससे राज्य की सुरक्षा को खतरा न पहुँचे, शामिल हो जाता है।

(ग) शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against exploitation)—शोषण के विरुद्ध अधिकार मानव के पण्य (Traffic in human beings) और बेगार तथा इसी प्रकार के अन्य बलात् श्रम का प्रतिषेध करता है। संविधान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो व्यक्ति इस उपलब्ध का उल्लंघन करेगा, उसे कानून के अनुसार दण्ड मिलेगा। संविधान यह भी निर्धारित करता है कि 14 वर्ष से अल्प आयु वाले किसी बालक को किसी खान में नौकर न रखा जायेगा और न किसी दूसरी संकटमय नौकरी में लगाया जायेगा।

(घ) धर्म-स्वातन्त्र्य का अधिकार (Right to freedom of religion)—संविधान ने धर्म-स्वातन्त्र्य का भी अधिकार दिया है। अनुच्छेद 25 ने निर्धारित किया है कि सार्वजनिक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए “समस्त नागरिकों को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का तथा धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का” समान अधिकार होगा। संविधान ने यह भी निश्चित किया है कि राज्य द्वारा पोषित शिक्षा-संस्थाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी और राज्य से अभिज्ञात शिक्षा संस्थाओं में जो राज्य की निधि से सहायता पाती हैं, किसी भी विद्यार्थी को धार्मिक शिक्षा में भाग लेने अथवा धार्मिक उपासना में संलग्न होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। तथापि, संविधान ने यह उपलब्ध कर दिया है कि राज्य धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक तथा अन्य प्रकार की लौकिक क्रियाओं का विनियमन कर सकता है और हिन्दुओं की सार्वजनिक प्रकार की धर्म संस्थाओं को हिन्दुओं के सब वर्गों और विभागों के लिए खोल सकता है।

(ङ) संस्कृति और शिक्षा-सम्बन्धी अधिकार (Cultural and educational rights)—भारत के नूतन संविधान में संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों का भी उल्लेख है। अनुच्छेद 25 में कहा गया है कि भारत के नागरिकों के किसी विभाग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाये रखने का अधिकार होगा और राज्य द्वारा पोषित अथवा राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा अथवा इनमें से किसी के आधार पर वंचित न रखा जायेगा। अनुच्छेद 30 धर्म या भाषा पर आधारित समस्त अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार देता है व इस बात का उपबन्ध करता है कि शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद न करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक

वर्ग के प्रबन्ध में है। ये अधिकार भारत के अल्पसंख्यक वर्गों के लिए एक नये युग का सूत्रपात करते हैं और उन्हें पूरी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता देते हैं।

सम्पत्ति का अधिकार (Right to Property)—संविधान का अनुच्छेद 31 सम्पत्ति के अधिकार से सम्बन्ध रखता है। इसमें कहा गया है कि कोई व्यक्ति कानून के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। इस अनुच्छेद ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कोई भी सम्पत्ति प्रतिकर दिए बिना सार्वजनिक उपयोग के लिए कब्जाकृत या अर्जित नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त राज्य के विधानमण्डल द्वारा पास किया गया कोई भी कानून जो सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन (Acquisition) का उपबन्ध करता हो, तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि उस पर राष्ट्रपति अपनी अनुमति न दे दें। साम्यवादी और समाजवादी विचारों के लोगों ने इन उपबन्धों की कठोर आलोचना की है और बताया है कि इनके कारण भारत में “समाजवाद के आवश्यक तत्वों सहित लोकतन्त्र” (Democracy with essentials of socialism) की स्थापना दुःसाध्य हो जायेगी। केन्द्र और राज्यों में कांग्रेस सरकार को भी यह लगा कि संविधान ने जमींदारों और अन्य सम्पत्तिधारियों को अनुचित शक्तियाँ दे दी हैं जिनकी वजह से वे कृषि-सुधारों के मार्ग में बाधा उपस्थित कर सकते हैं। कुछ राज्यों ने जमींदारी उन्मूलन कानून पास किए थे। सरकारों को उन्हें वैधानिक रूप देने के लिए संविधान का संशोधन करना पड़ा था।

(छ) संविधानिक उपचारों के अधिकार (Rights to constitutional remedies)—अंतःशः, संविधान ने उन संविधानिक अधिकारों का भी उपबन्ध किया है जिनके द्वारा उपर्युक्त अधिकारों को प्रवर्तित कराया जा सकता है। ये अधिकार (Justiciable) हैं। संविधान का अनुच्छेद 32 प्रत्येक नागरिक को यह शक्ति देता है कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए न्यायालयों की शरण ले सकता है। इन अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे आदेश या लेख जिसके अन्तर्गत बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus), परमादेश (Mandamus), प्रतिषेध (Prohibition), अधिकार पृच्छा (Quo-Warranto) और उत्प्रेषण (Certiorari) के प्रकार के लेख भी हैं, निकालने की शक्ति प्राप्त है।

आलोचना (Comments)—यह स्मरणीय है कि साधारण परिस्थितियों में नागरिकों के मूल अधिकारों को न्यायालयों द्वारा बाध्यता दी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, वे नागरिक के हैं और नागरिक उनके संरक्षण के लिए न्यायालयों की शरण ले सकता है। दूसरे लोकतन्त्रात्मक देशों के मूल अधिकारों के सम्बन्ध में भी यही बात है। इसके अतिरिक्त, अमरीका की भाँति भारत में भी न्यायपालिका को यह शक्ति दे दी गई है कि यदि संसद् अथवा राज्य विधानमण्डलों द्वारा पास किया गया कोई कानून नागरिकों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है, तो वह उसे अवैध घोषित कर सकती है। तथापि, भारत में मूल अधिकारों के कुछ लक्षण ऐसे

हैं जिनके ऊपर काफी वाद-विवाद हुआ है। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि प्रायः प्रत्येक अधिकार के ऊपर ही कुछ न कुछ प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। कुछ स्थितियों में तो ये प्रतिबन्ध बहुत ही अस्पष्ट हैं। इसके विपरीत, अमरीकी संविधान नागरिकों के मूल अधिकारों का बिल्कुल निम्नलिखित ढंग से निरूपण करता है। भारत में मूल अधिकारों के ऊपर जो प्रतिबन्ध लगे हुए हैं, उनके कारण न्यायपालिका के लिए यह बहुत मुश्किल हो जाता है कि वह उनकी कार्यपालिका अथवा व्यवस्थापिकाओं के अतिक्रमणों से रक्षा कर सके। भारतीय संविधान द्वारा गारन्टी किये गये मूल अधिकारों का सबसे विवादस्पद पहलू यह तथ्य है कि इन अधिकारों में सबसे मूल्यवान अधिकार अर्थात् वे अधिकार जो भाषण, अभिव्यक्ति तथा शान्तिपूर्ण सम्मेलन की स्वतन्त्रता देते हैं, भारत के राष्ट्रपति द्वारा उम समय जब कि वह आपात की उद्घोषणा निकालता है, स्थगित किये जा सकते हैं। इस उद्घोषणा के प्रवर्तनकाल में राष्ट्रपति न्यायालयों से इन अधिकारों में से किसी एक को लागू करने की शक्ति भी छीन सकता है। यह ठीक है कि मूल अधिकारों का स्थगन केवल थोड़े ही काल के लिए ही हो सकता है, लेकिन इसके लिए किए गये उपबन्ध पर आलोचकों ने कठोर आक्षेप किये हैं। उनको भय है कि शासन इस शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है और जनता के ऊपर तानाशाही लाद सकता है। इस उपबन्ध के समर्थन में सरकार ने यह दलील उपस्थित की है कि राज्य की सुरक्षा के विचार से राष्ट्रीय संकटकाल में मूल अधिकारों के प्रवर्तन को स्थगित करने की शक्ति आवश्यक है और सार्वजनिक व्यवस्था को कायम रखना व्यक्ति की स्वतन्त्रता से अधिक महत्वपूर्ण है। अतः, बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि सत्तारूढ शासन अपनी आपात शक्तियों (Emergency Powers) का किस तरह प्रयोग करता है। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यदि शासन चाहे तो वह सुरक्षा और व्यवस्था के नाम पर जनता की स्वतन्त्रता का हनन कर सकता है।

(६) राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्त तथा निर्देशक सिद्धान्तों का क्षेत्र (Directive principles of state policy and scope of the directives)— नये संविधान की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता राज्य नीति के ये निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy) हैं जिनका संविधान के भाग ४ में वर्णन है। यह विशेषता आयरलैंड के संविधान को छोड़ कर सार के अन्य किसी संविधान में नहीं पाई जाती। 'राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त' शब्द का अभिप्राय वे सिद्धान्त हैं जो कानून निर्माण करते समय राज्यों को अपने सामने रखने चाहिए। दूसरे शब्दों में ये निर्देशक सिद्धान्त साधारण किस्म के वे उपबन्ध हैं जो कानून बनाते और नीति-निर्माण करते समय संघ-सरकार (Union Government) और राज्य-सरकारों (State Governments) को अपने ध्यान में रखने चाहिए। निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles) के अनुसार राज्य का उद्देश्य एक ऐसी समाज-व्यवस्था को स्थापित करना है जिसमें नागरिकों को राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त हो सके।

राज्य को अपनी नीति इस प्रकार बदलनी चाहिए जिसके फलस्वरूप सभी नागरिकों को जीविका के उचित साधन उपलब्ध हो सकें और समुदाय की भौतिक सम्पत्ति का स्वामित्व इस प्रकार बँटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो सके। इसके अतिरिक्त, राज्य को ग्राम पंचायतों और स्वशासन की इकाइयों का संगठन करना चाहिए, काम, शिक्षा और बेरोजगारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अन्य अनर्ह प्रभाव की दशाओं में लोक-सहायता पाने के अधिकार को स्वीकार करना चाहिए। राज्य के लिए यह भी आवश्यक है कि वह काम की यथोचित और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करे और प्रसूति-सहायता (Maternity Relief) की व्यवस्था करे। राज्य का यह भी कर्तव्य है कि वह औपधादि प्रयोजनों को छोड़ कर मादक-द्रव्यों का निषेध करे। राज्यों से यह आशा की जाती है कि वह मजदूरों के उचित वेतन एवं शिष्ट जीवन स्तर की व्यवस्था करे जिससे कि उन्हें पर्याप्त अवकाश मिल सके और वे समस्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवसरों से लाभ उठा सकें। राज्य को देहाती क्षेत्रों में व्यक्तिगत या सहकारी आधार पर कुटीर उद्योगों के विकास का भी प्रयास करना चाहिए। राज्य भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में नागरिकों के लिए समान व्यवहार संहिता (Uniform Civil Code) बनाएगा। राज्य संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की कालावधि के भीतर सब बालकों को चौदह वर्ष की अवस्था समाप्ति तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयत्न करेगा। राज्य को समाज के निम्न वर्गों की उन्नति का विशेष ध्यान रखना चाहिए। उसे अनुसूचित रीतियों (Scheduled Castes) और अनुसूचित जनजातियों (Scheduled Tribes) को सामाजिक अन्याय और सब प्रकार के शोषण (Exploitation) से बचाना चाहिए और उनके आर्थिक एवं शैक्षणिक हितों की अभिवृद्धि करनी चाहिए। राज्य से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह कृषि और पशुपालन को वैज्ञानिक प्रणालियों से मगठित करेगा व गोवध का प्रतिषेध करेगा। राज्य राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और चीजों का संरक्षण करेगा और न्यायपालिका एवं कार्यपालिका को एक दूसरे से अलग-अलग रखने के लिए प्रयत्नशील होगा। अन्ततः राज्य “अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मान-पूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, मगठित लोगों के, एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और सन्धि-बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का, तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निबटाने के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयास करेगा।”

निर्देशक सिद्धान्तों का महत्त्व (Significance of the Directive Principles)—राज्य-नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्तों के बारे में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे मूल अधिकारों की भाँति स्मर्थनीय नहीं हैं। नागरिक इनके प्रवर्तन के लिए न्यायालयों को शरण नहीं ले सकते। राज्य से यह आशा अवश्य की जाती है कि वह इन सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करे, लेकिन यदि वह इनका उल्लंघन या अतिक्रमण करता है, तो न्यायालय कुछ नहीं कर सकते। संक्षेप में निर्देशक सिद्धान्तों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है। इसके कारण निर्देशक सिद्धान्तों का अध्याय

“उद्देश्यों और महत्वाकांक्षाओं का घोषणा-पत्र” (A manifesto of aims and aspirations) पात्र बनकर रह जाता है। डॉ० अम्बेदेकर ने निर्देशक सिद्धान्तों का इस आधार पर औचित्य सिद्ध करने की चेष्टा की थी कि “वे यह निश्चित करते हैं कि हमारा आदर्श आर्थिक लोकतन्त्र है।” इसमें कोई सन्देह नहीं है कि काम के अधिकार, धन के उचित वितरण, दुर्बल वर्गों की शोषण से रक्षा, समान कार्य के लिए समान वेतन, चौदह वर्ष की अवस्था तक के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध, ग्राम पंचायतों का संगठन और कुटीर उद्योगों का विकास आदि सिद्धान्त ऐसे हैं जो लोकहितकारी राज्य (Welfare State) अथवा गाँधी जी के रामराज्य के सिद्धान्तों के अनुसार ही हैं। जहाँ मूल अधिकार (Fundamental Rights) राजनीतिक लोकतन्त्र (Political Democracy) को सुदृढ़ आधार प्रदान करते हैं, राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Policy) सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना करके राजनीतिक लोकतन्त्र को वास्तविक बनाना और इस प्रकार सविधान की प्रस्तावना में निर्दिष्ट न्याय, स्वतन्त्रता और समानता के आदर्शों को प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन, आलोचकों का कहना है कि इन निर्देशक सिद्धान्तों से कोई लाभ नहीं है क्योंकि य केवल पवित्र इच्छाएँ और नैतिक उपदेश मात्र हैं तथा इनके पीछे कोई बाध्यकारी सत्ता व कानूनी शक्ति नहीं है तथापि, यह कहना अतिशयोक्ति ही है कि निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles) का कोई महत्त्व ही नहीं है। यह सही है कि यदि राज्य-सत्ता इन सिद्धान्तों की उपेक्षा करती है, तो उससे जवाबदेही नहीं की जा सकती, लेकिन वह साधारण निर्वाचनों में जनता के निर्णय से नहीं बच सकती। यदि जनता जागृत हो जाती है, तो वह प्रत्येक शासन की सफलता तथा विफलता का निर्णय राज्य नीति के इन निर्देशक सिद्धान्तों के प्रकाश में करेगी, यह देखेगी कि शासन ने इन सिद्धान्तों को कहाँ तक कार्यान्वित किया है। इस तरह इन निर्देशक सिद्धान्तों का “महान् शैक्षणिक महत्त्व” (Great Educational Value) है यह सही है कि यदि काम के अधिकार को निर्देशक सिद्धान्तों में शामिल न करके मूल अधिकारों में शामिल किया जाता, तो ज्यादा अच्छा होता। यह समझना भी जरा कठिन है कि भारत “राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों” को किस प्रकार बनाये रख सकता है। फिर भी निर्देशक सिद्धान्तों का महत्त्व कम नहीं करना चाहिए क्योंकि वे शासन और जनता दोनों को यह याद दिलाते रहेंगे कि सविधान निर्माताओं ने देश के लिए भविष्य की कल्पना की थी। यदि निर्देशक सिद्धान्त सरकारी अधिकारियों के लिए केवल “अनुदेश पत्र” (An instrument of instructions) ही हों, तब भी यह नहीं समझना चाहिए कि वे “अहंपूर्ण” शब्दावली में व्यक्त ऊँचे-ऊँचे भावों की परेड मात्र” हैं।

(७) धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र (Secular Democracy)—अन्त में हम कह सकते हैं कि नया संविधान देश में साम्प्रदायिक शासन अथवा धर्म सापेक्ष राज्य (Theocratic State) की वृद्धि को रोकता है। उसका उद्देश्य भारत में धर्म-

निरपेक्ष लोकतन्त्र (Secular Democracy) की स्थापना करना है । धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र में राज्य “न धार्मिक होता है, न अधार्मिक होता है, न धर्म विरोधी होता है, प्रत्युत धार्मिक रुढ़ियों से सर्वथा विमुक्त रहता है और इस प्रकार धार्मिक मामलों में उसके क्रिया-कलाप पूर्णतः तटस्थ होते हैं।” भारत में धर्म-निरपेक्ष राजनीति का विकास आवश्यक है क्योंकि भारत बहुत से धर्मों का देश है । यदि राज्य पाकिस्तान की भाँति स्वयं को किसी धर्म विशेष के साथ स्वीकृत कर लेता है, तो इसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि दूसरे धर्मों के लोग घटिया दर्जे के नागरिक हो जायेंगे । भारतीय संविधान ने अपने नागरिकों को समान नागरिकता दी है । भारत के सभी नागरिक जाति एवं धर्म के बिना किसी भेदभाव के समस्त अधिकारों और विशेषाधिकारों का समान रूप से उपभोग कर सकते हैं । भारतीय संविधान प्रत्येक नागरिक के इस मूल अधिकार को स्वीकार करता है कि वह जिस धर्म को चाहे मान सकता है, जिस धर्म का चाहे प्रचार कर सकता है और यदि चाहे, तो किसी भी धर्म को न माने । संविधान ने विभिन्न धार्मिक अल्पसंख्यक वर्गों के इस अधिकार को स्वीकार किया है कि वे अपनी भाषा की रक्षा कर सकते हैं और अपनी पसन्द की शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना कर सकते हैं । यद्यपि राज्य द्वारा प्रबन्धित शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती, लेकिन राज्य से अभिज्ञात और राज्य से सहायता पाने वाली शिक्षा-संस्थाओं में ऐच्छिक आधार पर धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है । पुनश्च, सरकारी नौकरियों की भरती के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अवसर मिलेंगे । हाँ, पिछड़े वर्गों के सम्बन्ध में कुछ विशेष उपबन्ध किये जा सकते हैं । साम्प्रदायिक निर्वाचनों को समाप्त कर दिया गया है, तथा नये संविधान के अनुसार समस्त निर्वाचन सार्वभौम वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) एवं संयुक्त निर्वाचन प्रणाली (Joint Electorates) के अनुसार होंगे । राज्य न तो किसी विशेष धर्म को संरक्षण ही देगा न उसके सम्बन्ध में विभेद ही करेगा । राज्य जनता के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कल्याण के लिए प्रयास करेगा । उसने धार्मिक तथा आध्यात्मिक मामलों को व्यक्तियों अथवा गैर सरकारी संस्थाओं के ऊपर छोड़ दिया है । राज्य धर्म या नैतिकता को अनुत्साहित नहीं करेगा लेकिन संविधान की भावना के अनुसार राज्य को इस सिद्धान्त पर आचरण करना चाहिए कि “धर्म-निरपेक्ष राज्य मनुष्य मनुष्य के सम्बन्धों का नियमन करता है, मनुष्य और ईश्वर के सम्बन्धों का नहीं ।” संक्षेप में, संविधान सभी नागरिकों के साथ पूर्ण न्याय करता है, चाहे वे किसी भी धर्म को मानते हों । उसने अल्पसंख्यक वर्गों की इन समस्त शंकाओं को दूर कर दिया है कि भारत में कहीं हिन्दू राज की स्थापना न हो जाये । ऐसा करके भारत के संविधान ने संसार के प्रगतिशील राज्यों के संविधानों में अपना स्थान बना लिया है । यह स्वीकार किया जा सकता है कि संविधान में निहित धर्म-निरपेक्षता का आदर्श व्यवहार में पूर्णरूप से सार्थक नहीं हो सका है । लेकिन इस सम्बन्ध में हमें यह याद रखना चाहिए कि मनुष्य आदर्श को पूर्ण रूप से कभी नहीं प्राप्त कर सकता । आदर्श हमारे

सामने है और उस पर काफी हद तक आचरण भी होता है, यह भी कम सन्तोष की बात नहीं है।

भारतीय संघ (Indian Federation)

५. भारत में संघ-शासन (Federalism in India)

भारत में एक अखंड एकात्मक राज्य (Unitary State) की स्थापना ब्रिटिश शासन की सबसे महत्वपूर्ण सफलताओं में से एक थी। प्रारम्भ में ब्रिटिश शासकों की प्रवृत्ति अधिकाधिक केन्द्रीकरण की ओर थी जो लार्ड कर्जन (Lord Curzon) के समय में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई। लेकिन, यह स्पष्ट था कि सारी शक्तियों का केन्द्रीय सरकार में समाहार बहुत दूर तक चला गया था। फलतः, प्रशासनिक और वित्तीय विकेन्द्रीकरण के उपाय किये गये जिसके परिणामस्वरूप 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy) की स्थापना हुई।

साइमन कमीशन की रिपोर्ट में भारत को एक संघ के रूप में संगठित करने की बात पर स्पष्ट रूप से विचार किया गया था। बाद में 1935 के भारत सरकार अधिनियम ने एक अखिल भारतीय संघ की स्थापना का प्रस्ताव किया था। लेकिन, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं भारत के सभी राजनीतिक दलों ने प्रस्तावित संघ को अस्वीकार कर दिया। फलतः, उसकी स्थापना न हो सकी। प्रस्तावित संघ में एक ओर तो स्वेच्छाचारी देशी राज्य शामिल होते और दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के प्रान्त। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का शासन न्यूनाधिक रूप से लोकतन्त्रात्मक पद्धति से होता था। भारतीय राष्ट्रवादियों को शका थी और यह उचित ही थी कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी देशी नरेशों को स्वतन्त्रता-संग्राम में रोड़े अटकाने के लिए प्रयुक्त कर रहे हैं।

६. नये संविधान के अन्तर्गत संघ-शासन (Federalism Under the New Constitution)

नये संविधान की संघीय विशेषतायें (Federal Features of the New Constitution)—तथापि, भारत में इस बात का बराबर अनुभव किया जा रहा था, कि ऐसे विशाल देश के लिए जहाँ जातियों, धर्मों और भाषाओं की विभिन्नता विद्यमान है, वर्तमान एकात्मक शासन की अपेक्षा संघात्मक शासन ज्यादा उपयोगी होगा। इसलिए, यह स्वाभाविक ही था कि स्वतन्त्र भारत के संविधान निर्माताओं ने देश के नये वैधानिक संगठन के लिए संघ-शासन को आधार माना। संविधान में संघ (Federation) शब्द का कहीं प्रयोग नहीं किया गया है। संविधान भारत को

“राज्यों का एक यूनियन” (Union of States) कहता है^१ । तथापि, भारतीय संविधान में संघ-शासन की समस्त मुख्य विशेषतायें विद्यमान हैं । प्रथमतः, भारत में दुहरी शासन-प्रणाली है—संघ शासन और राज्य-शासन । दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं और वे संविधान में निर्दिष्ट शक्तियों के वितरण द्वारा स्निद्धित कर दिये गए हैं । अपने-अपने क्षेत्र में प्रत्येक सरकार स्वतन्त्र है । दूसरे शब्दों में, राज्य भारतीय संघ के स्वायत्त एकक (Autonomous Units) हैं । वे अपनी शक्तियाँ सीधे सघ सरकार से प्राप्त करते हैं । उन्हें ये शक्तियाँ किसी सर्वशक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ने नहीं दी हैं । दूसरे, संविधान जो शक्तियों का वितरण करता है, देश का सर्वोच्च कानून है । संघीय संसद् (Union Parliament) केवल अपने अधिकार के बल से उसमें कोई संशोधन या परिवर्तन नहीं कर सकती । तीसरे, भारत में एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) है जो संविधान की निर्वाचक (Interpreter) और अभिरक्षक (Guardian) है । क्षेत्राधिकार के प्रश्न को लेकर राज्यों एवं सघ के बीच जो विवाद उठ सकते हैं, सर्वोच्च न्यायालय उनका निर्णय कर सकता है । यदि संघीय संसद् या राज्य का कोई विधानमण्डल ऐसा कानून पास करे जो संविधान के किसी उपबन्ध के प्रतिकूल पड़ता हो, तो सर्वोच्च न्यायालय उसे असंविधानिक घोषित कर सकता है ।

संविधान की एकात्मक अभिनति (The Strong Unitary Bias)—लेकिन संघ-शासन के इन बाहरी चिन्हों के होते हुए भी हमारा संविधान दस्तुतः संघीय संविधान नहीं है । वास्तव में वह अर्द्ध-संघीय (Quasi-federal) है । उसका रूप संघात्मक है, लेकिन भावना एकात्मक है । यह स्मरणीय है कि प्रारूप समिति (Drafting Committee) ने संविधान को संघीय कहना पसन्द नहीं किया । उसने सोचा कि “भारत को यूनियन कहने से लाभ है यद्यपि संविधान देखने में संघात्मक हो सकता है ।” न केवल संविधान की भाषा में ही, अपितु उसकी भावना में भी मुख्य बल एकरूपता पर दिया गया है जो राज्यों के मूल्य पर यूनियन को शक्तिशाली बनाती है । इसके दो मुख्य कारण थे—(१) जिस समय संविधान बन रहा था, उस समय देश की हालत बहु-री थी और (२) भारतीय इतिहास की सदैव ही यह शिक्षा रही है कि यदि हम केन्द्र को दुर्बल रखते हैं, तो हमारा नाश हो जाता है । संविधान की प्रबल एकात्मक अभिनति निम्न विशेषताओं से स्पष्ट हो जाती है ।

दुहरी नागरिकता का अभाव (No dual citizenship in India)—पहली बात यह है कि यद्यपि भारत में दुहरी (संघीय) शासन-प्रणाली प्रचलित है, लेकिन संविधान के अन्दर दुहरी नागरिकता की व्यवस्था नहीं है । इस दृष्टि से भारत अमरीका से भिन्न है । अमरीका में प्रत्येक नागरिक न केवल सारे देश का ही नागरिक

१. हिन्दी में Federation और Union दोनों के लिए ‘संघ’ शब्द का प्रयोग होता है ।

होता है, प्रत्युत वह अपने विशिष्ट राज्य का भी नागरिक होता है । अमरीका में राज्य बहुधा अपने नागरिकों के साथ पक्षपात करते हैं, उन्हें कतिपय ऐसे अधिकार और विशेषाधिकार दे देते हैं जिन्हें वे उन व्यक्तियों को जो उनके नागरिक अथवा निवासी नहीं हैं नहीं देते या कठिनता से देते हैं । भारत में, एक नागरिकता के साथ दुहरी शासन-प्रणाली प्रचलित है । यहाँ राज्य नागरिकता नहीं है । भारतीय, चाहे किसी भी राज्य में निवास करते हों, कानून की दृष्टि में समान हैं ।

शक्तिशाली केन्द्र (India has a strong centre)—दूसरे संविधान ने एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की है । शक्तियों के तिहरे वितरण में सबसे महत्वपूर्ण विषय संघसूची में रखे गये हैं । संघ सूची (Union List) सब से लम्बी है और उसमें 97 विषय शामिल हैं । इसके अलावा समवर्ती सूची (Concurrent List) में वे 47 विषय सम्मिलित हैं जिनके ऊपर आवश्यकता पड़ने पर संघ सरकार विधायी और प्रशासनिक अधिकार-क्षेत्र का प्रयोग कर सकती है । संविधान अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र में विहित करता है । अमरीका जैसे सच्चे संघ-शासन में अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को दी जाती हैं तथा संघीय सरकार की शक्तियाँ बहुत सीमित और सुनिश्चित रहती हैं । इस तरह भारतीय संविधान में किया गया शक्तियों का वितरण कनाडा से सादृश्य रखता है । अन्तर केवल यह है कि कनाडा में समवर्ती सूची (Concurrent List) में केवल दो ही विषय हैं—प्राप्रवास (Immigration) और कृषि (Agriculture)

आपात काल में राज्यों की स्वायत्तता स्थगित हो सकती है (In Emergencies the autonomy of the states can be suspended)—तीसरे, युद्ध तथा अन्य राष्ट्रीय संकटों के समय में केन्द्र की शक्ति बहुत बढ़ाई जा सकती है । उस समय संविधानिक संशोधन की बिना किसी आवश्यकता के संविधान को एकात्मक रूप दिया जा सकता है । आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) निकाल कर भारत संघ का राष्ट्रपति ऐसी असाधारण शक्तियाँ धारण कर सकता है जिनके फलस्वरूप राज्यों की स्वायत्तता स्थगित हो सकती है । आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तनकाल में संघ की कार्यपालिका-शक्ति राज्यों तक विस्तृत हो जाती है और संसद् राज्य-सूची में प्रगणित विषयों के ऊपर भी कानून बनाने में समर्थ हो जाती है । यदि किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति से इस बात की रिपोर्ट कर दे कि राज्य में संविधान के उपबन्धों के अनुसार शासन नहीं चलाया जा सकता, तब भी यही प्रभाव होगा । उस समय राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा राज्य की सरकार के सब या कोई कृत्य अपने हाथ में ले सकता है और घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधान मण्डल की शक्तियाँ या संसद् के अधिकार के द्वारा या अधीन प्रयुक्त की जायेंगी । राष्ट्रपति संघ और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण से सम्बन्ध रखने वाले उपबन्धों को भी संशोधित कर सकता है । यह भारतीय संविधान को अद्वितीय विशेषता है जो “परिस्थितियों के अनुसार संघात्मक और एकात्मक दोनों प्रकार का है । साधारणतः वह संघात्मक है, लेकिन संकटकाल में एकात्मक भी हो सकता है ।”

केन्द्र की शक्तियाँ साधारण परिस्थितियों में भी बढ़ाई जा सकती हैं (Powers of the Centre can be increased in normal times also)—चौथे, भारतीय संघ की एक अन्य अद्वितीय विशेषता यह है कि केन्द्र की विधायी शक्ति (Legislative Power) साधारण परिस्थितियों में भी बढ़ाई जा सकती है । साधारणतः राज्य विधानमण्डलों को राज्य-सूची में प्रणालित विषयों के ऊपर अपवर्जी अधिकार-क्षेत्र प्राप्त है । लेकिन, यदि राज्य सभा दो-तिहाई बहुमत से समर्थित प्रस्ताव के द्वारा यह घोषणा कर दे कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से संघीय संसद् इन विषयों में से किसी के ऊपर कानून बनाना आवश्यक है, तो संघीय संसद् इन विषयों में से किसी के ऊपर कानून बना सकती है ।

संसद् राज्यों के क्षेत्रों का पुनर्वितरण कर सकती है (Parliament can redistribute the Boundries of States)—पाँचवें, भारत सघ के राज्यों के क्षेत्र अनु-लंघनीय नहीं हैं । संघीय संसद् (क) किसी राज्य से उसका कोई क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को मिलाकर नया राज्य बना सकती है, (ख) किसी राज्य के क्षेत्र को घटा या बढ़ा सकती है, और (ग) किसी राज्य की सीमाओं या उसके नाम को बदल सकती है । संविधान के अनुच्छेद 3 में कहा गया है कि ये परिवर्तन उसी समय किये जा सकते हैं जब कि संसद् राष्ट्रपति द्वारा सम्बद्ध राज्य अथवा राज्यों के विचारों को निश्चित रूप से जान ले और फिर उनकी सिफारिश पर इस प्रयोजन के लिए एक विधेयक पास कर दे ।

प्रशासनिक और न्यायिक एकरूपता (The Constitution ensures administrative and judicial uniformity)—छठे, कुछ संघों में, दुहरे शासन के कारण न केवल व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में ही, प्रत्युत न्यायपालिका और सेवाओं तक में द्विगुणन (Duplication) पैदा हो जाता है । इससे प्रशासन कानूनी व्यवस्था और न्यायिक संगठन में बहुत विविधता पैदा हो जाती है । लेकिन जब यह बहुत आगे बढ़ता है, तो इससे अव्यवस्था पैदा हो जाती है । अमरीका में औद्योगिक विधायन (Industrial Legislation) के क्षेत्र में यही हो रहा है । भारतीय संविधान समस्त मूलभूत मामलों में एकरूपता (Uniformity) स्थिर करता है । यह तीन उपायों द्वारा किया गया है—(क) एक न्यायपालिका, (ख) मूलभूत दीवानी और फौजदारी कानूनों की एकरूप प्रणाली और (ग) सामान्य अखिल भारतीय सेवाएँ । हमारे संविधान के अधीन राज्यों के उच्च न्यायालय व सर्वोच्च न्यायालय एक अखंड न्यायपालिका का निर्माण करते हैं । दीवानी और फौजदारी कानून व प्रक्रिया की एकरूपता इन विषयों को समवर्ती सूची में रख कर निश्चित की गई है । इसी प्रकार प्रशासनिक एकरूपता अखिल भारतीय सेवाओं (All India Services) के सदस्यों को संघ व राज्यों में मुख्य पदों पर रखकर और राष्ट्रीय महत्त्व के समस्त विषयों में संघीय सरकार व राष्ट्रपति को पहल का पर्याप्त क्षेत्र देकर सुनिश्चित की गई है ।

भारत का संघ-शासन सुपरिवर्तनीय है (India's federal system is flexible)—सातवीं और अन्तिम बात यह है कि भारत का संघ-शासन संसार के

अन्यान्य सधों की तरह कठोर या दुष्परिवर्तनीय नहीं है। यह हम पहले देख ही चुके हैं कि हमारे संविधान के संघीय ढाँचे को राष्ट्रीय संकट की दशाओं में बिना किसी औपचारिक संशोधन के किस प्रकार एकात्मक ढाँचे के रूप में बदला जा सकता है। यद्यपि भारत का संविधान इंग्लैण्ड के संविधान से कहीं कठोर है, फिर भी संविधान के संशोधन के लिए निर्धारित की गई प्रक्रिया अमरीकी संविधान के संशोधन के लिए निर्धारित की गई प्रक्रिया से कहीं आसान है। इस तरह भारत की संघीय पद्धति के बारे में अन्तिमना का कोई भाव नहीं है। वह बिना किसी विशेष कठिनता या जटिलता के संशोधित किया जा सकता है। ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि “भारत का संविधान निश्चित एकात्मक अभिनति सहित देखने में संघीय है।” और यह भी के “भारत का संविधान न तो विशुद्ध रूप से संघात्मक ही है और न एकात्मक ही, प्रत्युत वह दोनों का सम्मिश्रण है। वह एक नये प्रकार का यूनियन या संयुक्त राज्य है।

प्रश्न

- भारत के नये संविधान की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिये। (P. U. 1957)
- नये संविधान के अन्तर्गत भारतीय संघ-शासन के मुख्य लक्षणों की आलोचना कीजिये। क्या इसमें कुछ विशेषतायें भी हैं? या “भारतीय संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी” व्याख्या कीजिये।
- भारतीय नागरिक को संविधान के अनुसार क्या मूल अधिकार प्राप्त हैं? ये अधिकार कहाँ तक किन-किन परिस्थितियों में स्थगित किये जा सकते हैं?
- राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त क्या हैं, मौलिक अधिकारों से इनका क्या अन्तर है?
- भारत का नया संविधान लोकतन्त्र राज्य की स्थापना कहाँ तक करता है?
- धर्म-निरपेक्ष राज्य से आपका क्या मतलब है? नया संविधान भारत को ऐसा राज्य बनाने में कहाँ तक सफल हुआ है?

Questions

- Describe briefly the salient features of the Constitution of India with a critical note on the Supremacy of the Judiciary. (P. U. 1957)
- Discuss the main features of the Indian Federation under the new constitution. Do you find any peculiarities in it? Or “The Indian Constitution is federal in form but unitary in spirit.” Discuss.
- Discuss the fundamental rights guaranteed under the new constitution to the citizens of India. How far are these rights absolute? Under what circumstances can some of them be suspended?
- What are the Directive Principles of State Policy? How do you distinguish them from the fundamental rights? (P. U. 1957)
- How far does India's new constitution establish democracy in India?
- What do you mean by a Secular State? How far has the new constitution made India such a state?

संघीय कार्यपालिका और विधानमण्डल

(Union Executive and Legislature)

७. संसदीय शासन (Parliamentary Government)

अधिशानननक शक्तन सनद्वान्ततः राष्ट्रपतन कन है लेकन वस्तुतः उसका प्रयोग मन्त्रनमण्डल करता है जो संघीय संसद के प्रति उत्तरदायी है (Executive belongs theoretically to the President but it is actually exercised by the Cabinet, which is responsible to the Union Parliament)—संवधान ने ननर्धारनत कनया है कन भारत का एक राष्ट्रपतन होगा ननसमें सघ कन कार्यपालका शक्तन वनहत होगी । तथापन, इसका यह अभनप्राय नहून है, भारत में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली (Presidential form of Government) प्रचलनत है । इसके वनपरीत, भारतीय संवधान ने तो संसदीय अथवा उत्तरदायी शासन प्रणाली कन स्थापना कन है । भारत का राष्ट्रपतन इंगलैण्ड के सम्राट् अथवा फ्रांस के राष्ट्रपतन कन भांतन राज्य का वैधाननक प्रधान होगा । वह अधिशानननक शक्तन का प्रयोग अपनी इच्छानसार नहून, प्रत्युत अपने मन्त्रनयून कन सलाह पर करेगा । दूसरे शब्दून में वह केवल नाममात्र का ही (Chief executive) होगा । सनद्वान्ततः तो उसके पास बहुत शक्तनयाँ रहेंगी लेकन वस्तुतः इन शक्तनयून का प्रयोग मन्त्री करेंगे जो अपने ननर्णयून और कारयून के लनए व्यवनतगत रूप से और सामूहक रूप से संघीय वनधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होंगे । इसका अभनप्राय यह है कन संसद मन्त्रनमण्डल पर अथान् वास्तवक कार्यपालका पर ननयन्त्रण रख सकती है । वनधानमण्डल यह ननयन्त्रण न केवल राष्ट्रीय वनल पर अपने अधिकार द्वारा प्रत्युत अपनी वनधायी सत्ता के द्वारा भी रखती है । यदन मन्त्रनमण्डल से नीतन या कारयून कन कोई गलती हो जाती है, तो संसद उससे जवाब माँग सकती है और उसे अपदस्थ तक कर सकती है । यह शासन प्रणाली अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली से मूलतः मन्त्र होती है । अमरीका में अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली प्रचलनत है । इस शासन-प्रणाली के अन्तर्गत राष्ट्रपतन वास्तवक कार्यपालका होता है और मन्त्रनमण्डल उसकी छायामात्र । इसके वनपरीत, अमरीकी राष्ट्रपतन वनधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नही होता । वनधानमण्डल उसे कार्यकाल कन समाप्तन के पूर्व अपदस्थ नही कर सकता । उसे अपदस्थ करने का केवल एक ही उपाय है । वह है—महाभनयोग (Impeachment) । लेकन यह बहुत कठन उपाय है और इसका शायद ही कभी प्रयोग होता हो ।

८. भारत का राष्ट्रपतन (The President of India)

उसका ननर्वाचन (His Election)—भारत के राष्ट्रपतन का ननर्वाचन परोक्ष रीतन से सानुपात प्रतिननधनत्व प्रणाली (System of proportional representa-

tion) — के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) के द्वारा एक ऐसे निर्वाचक-मण्डल (Electoral College) के सदस्य करते हैं जो संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है। यह मतदान गुप्त रीति से होता है। इस निर्वाचन में निर्वाचक-मण्डल (Electoral College) के प्रत्येक सदस्य की संख्या इस प्रकार निर्धारित की जाती है कि संसद् के दोनों सदनों की मतसंख्या समस्त राज्यों की विधान सभाओं की मतसंख्या के समान हो। किसी राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के उतने मत होते हैं जितने कि एक हजार के गुणित, उस भागफल में हों जो राज्य की जनसंख्या को उस सभा के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से भाग देने से आये। यह पद्धति निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है।

“मान लीजिए किसी राज्य की जनसंख्या 20,849,840 है। और विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 208 है (एक सदस्य एक लाख जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है)। इस तरह का प्रत्येक निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय कितने मत देने का अधिकारी होगा, यह पता लगाने के लिए हमें सबसे पहले 29,849,840 (जो जनसंख्या है) को 208 (जो निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या है) से भाग देना होगा और फिर भागफल को 1,000 से विभाजित करना होगा। यहाँ भागफल 100,239 हैं। प्रत्येक सदस्य को 100,239। 1000 अर्थात् 100 मत देने का अधिकार होगा। शेष 239 को छोड़ दिया गया है जो 500 से कम है।”

संसद् के प्रत्येक सदन के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों की संख्या वही होती है जो समस्त राज्यों की विधान-सभाओं के लिए नियत सम्पूर्ण मतसंख्या को संसद् के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की सम्पूर्ण संख्या से भाग देने से आये।

संविधान-सभा में इस प्रश्न पर कि राष्ट्रपति का निर्वाचन परोक्ष (Indirect) हो या प्रत्यक्ष (Direct) हो, काफी वाद-विवाद हुआ था। जिन व्यक्तियों ने प्रत्यक्ष निर्वाचन का समर्थन किया था, उनका कहना था कि यह अधिक लोकतन्त्रात्मक होगा और राष्ट्रपति को जनता का सीधा वरण बना देगा। लेकिन अन्त में परोक्ष निर्वाचन की पद्धति को अपनाया गया क्योंकि यह सोचा गया कि प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित राष्ट्रपति संसदीय लोकतन्त्र में ठीक नहीं रहेगा। इसका कारण यह है कि संसदीय शासन में वास्तविक अधिशासनिक शक्ति का प्रयोग उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल करता है। यदि राष्ट्रपति सीधे जनता द्वारा निर्वाचित हुआ, तो हो सकता है कि वह नाममात्र के प्रधान की स्थिति से संतुष्ट न हो। ऐसी परिस्थिति में इस बात की संभावना रहती है कि उसका मन्त्रिमण्डल के साथ विरोध हो जाये और देश को वैधानिक गतिरोध का सामना करना पड़े। दूसरे, इस बात की भी शंका थी कि राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष निर्वाचन से बहुत-सी व्यवहारिक कठिनाइयाँ उठ खड़ी होंगी और देश के समस्त वयस्क मतदाताओं के समुचित मतांकन की व्यवस्था करना असम्भव प्राय हो जायेगा। यह भी सोचा गया था कि राष्ट्रपति के प्रत्यक्ष निर्वाचन से देश में अनावश्यक उत्तेजना पैदा होगी।

ग्रहताएँ (Qualifications)—संविधान ने निश्चित किया है कि जो व्यक्ति राष्ट्रपति-पद का प्रत्याशी हो, उसमें निम्नलिखित योग्याएँ होनी चाहिए—(१) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, (२) वह पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, (३) वह लोकसभा के लिए सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो और (४) वह भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी से निमन्त्रित किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ-का पद धारण किये हुए न हो। इसका अभिप्राय यह है कि कोई सरकारी नौकर राष्ट्रपति-पद के लिए निर्वाचित होने का पात्र नहीं है। तथापि, संविधान में कह दिया गया है कि यह नियम उस व्यक्ति के ऊपर लागू नहीं होगा जो संघ के राष्ट्रपति या उप-राष्ट्रपति अथवा किसी राज्य के राज्यपाल अथवा संघ या राज्य के मन्त्री का पद धारण किये हुए है। संविधान के अनुसार यह भी आवश्यक है कि राष्ट्रपति को संघीय संसद् या राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा कोई व्यक्ति राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाता है, तो उसे राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने की तिथि से विधानमण्डल की सदस्यता त्याग देनी पड़ती है।

उसकी पदावधि और उपलब्धियाँ (His term of office and remuneration)—साधारण अवस्था में राष्ट्रपति की पदावधि पाँच वर्ष है। परन्तु वह अपनी पूर्ण पदावधि के समाप्त होने के पूर्व त्यागपत्र दे सकता है अथवा महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा अपदस्थ किया जा सकता है। राष्ट्रपति फिर से निर्वाचित हो सकता है। विभिन्न भत्तों के अलावा 10,000 रु० प्रति मास वेतन प्राप्त करता है। उसे बिना किराया दिए सरकारी पदावास के उपयोग का भी हक है।

राष्ट्रपति की पदच्युति (Removal of President)—जब तक राष्ट्रपति अपनी पदावधि की समाप्ति के पूर्व अपने पद से त्यागपत्र न दे दे, उसे “संविधान के अतिक्रमण” (Violation of the constitution) के लिए महाभियोग के अलावा अन्य किसी उपाय द्वारा अपदस्त नहीं किया जा सकता। महाभियोग (Impeachment) एक प्रकार का संसदीय मुकदमा है। इसमें दोषारोप दो-तिहाई बहुमत से पास किये गये प्रस्ताव में संसद् के किसी भी सदन द्वारा उपस्थित किये जा सकते हैं। दूसरा सदन दोषारोपों की छानबीन करेगा और यदि वह दो-तिहाई बहुत से पास किये गये प्रस्ताव में यह घोषित कर दे कि दोषारोप सिद्ध हो गये हैं, तो राष्ट्रपति अपने पद को रिक्त कर देगा।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ (Powers of the President)—संविधान संघ की समस्त अधिशासनिक शक्ति राष्ट्रपति में विहित करता है। भारत सरकार के समस्त अधिशासनिक कृत्य राष्ट्रपति की ओर से और राष्ट्रपति के नाम में सम्पादित होते हैं।

अधिशासनिक शक्तियाँ (a) (Executive Powers)—राज्यों के राज्यपालों, भारत के राजदूतों और दूसरे कूटनीतिक प्रतिनिधियों, सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिवक्ता और दूसरे न्यायाधीशों, भारत के महान्यायाधीश (Attorney General of India), नियन्त्रक और महालेखापरीक्षक (Controller and Auditor General

of India) तथा संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) के अध्यक्ष व सदस्यों आदि की नियुक्तियाँ राष्ट्रपति ही करता है। केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों (दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मनीपुर, त्रिपुरा, अरुणाचल और निकोबार द्वीप और लाकाडाईव तथा हिनिकोप द्वीप) का भी शासन राष्ट्रपति अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से करता है।

राष्ट्रपति सरकार की कार्यवाही के सम्यक् संचालन के लिए नियम बना सकता है।

विधायी शक्तियाँ (Legislative Powers)—राष्ट्रपति की विधायी शक्तियाँ भी व्यापक हैं। राष्ट्रपति वर्ष में कम-से-कम दो बार संसद् को आहूत करता है। वह संसद् के किसी भी सदन को सत्रावसान और लोक-सभा का विघटन कर सकता है। यदि संसद् के दोनों सदन किसी विधेयक पर एकमत न हो सके तो वह उनकी संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है। राष्ट्रपति राज्यसभा (संसद् के उच्च सदन) के १२ सदस्य भी मनोनीत कर सकता है। वह चाहे तो संसद् के दोनों सदनों को पृथक् रूप से और चाहे तो उन्हें संयुक्त रूप से सम्बोधित कर सकता है। वह संसद् के जिस सदन को चाहे, सन्देश भेज सकता है। संसद् के प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में राष्ट्रपति एक भाषण देता है। यह भाषण ब्रिटिश सम्राट् द्वारा संसद् में दिये गये भाषण (Speech From the Throne) के तुल्य होता है। संसद् द्वारा पास किया गया कोई विधेयक उस समय तक अधिनियम नहीं बन सकता जब तक कि उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त न हो जाये। राष्ट्रपति किसी विधेयक पर, यदि वह धन विधेयक नहीं है, चाहे तो अपनी अनुमति दे सकता है और चाहे तो उसे रोक सकता है। लेकिन यदि उस विधेयक को (जिस पर राष्ट्रपति ने अपनी स्वीकृति नहीं दी है और जिसे उसने पुनर्विचार के लिए संसद् के पास लौटा दिया है) संसद् के दोनों सदन राष्ट्रपति के सन्देश में सुझाए गये संशोधनों के सहित या रहित पुनः पास कर दें, तो राष्ट्रपति उस पर अपनी अनुमति देने के लिए बाध्य है।

संविधान ने संसद् के विश्रांतिकाल में राष्ट्रपति को अध्यादेश (Ordinance) निकालने की भी शक्ति दी है। अध्यादेश का बल और प्रभाव संसद् के अधिनियम के तुल्य ही होता है किन्तु अध्यादेश के लिए यह आवश्यक है कि वह संसद् के पुनः समवेत होने पर उसके दोनों सदनों के समक्ष रखा जाये। अध्यादेश संसद् के पुनः समवेत होने से छः सप्ताह की समाप्ति पर अथवा इस कालावधि से पूर्व दोनों सदनों द्वारा उसके निरनुमोदन का प्रस्ताव पास कर देने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा।

वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)—राष्ट्रपति को कतिपय वित्तीय शक्तियाँ भी दी गई हैं। प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ में राष्ट्रपति संसद् के समक्ष “वार्षिक वित्त विवरण” (Annual financial statement) रखवाता है। इस विवरण में संघ सरकार का उस वर्ष के लिए प्राक्कलित आय एवं व्यय का उल्लेख रहता है। राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना कोई भी धन विधेयक संसद् में पुरःस्थापित नहीं किया जा सकता। संविधान ने राष्ट्रपति को यह शक्ति दी है कि वह आय कर से

प्राप्त होने वाली राशि सघ एवं राज्यों के बीच वितरित करता है और आसाम, पश्चिमी बंगाल, बिहार और उड़ीसा को पटसन-विषयक निर्यात शुल्क के उनके अंश के बदले में सहायता अनुपात (Grants-in-aid) देता है। राष्ट्रपति संघ और राज्यों के बीच करों के वितरण के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए समय-समय पर एक वित्त आयोग (Finance Commission) भी नियुक्त कर सकता है।

कानूनी विशेषाधिकार और न्यायिक शक्तियाँ (Legal privileges and judicial powers)—राष्ट्रपति कतिपय कानूनी विमुक्तियों (Legal Immunities) और न्यायिक शक्तियों का भी उपभोग करता है। वह अपने पद की शक्तियों और कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए किसी न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं है। वह केवल महाभियोग (Impeachment) की प्रक्रिया के द्वारा ही सिद्धदोष ठहराया जा सकता है। उसकी पदावधि में उसके विरुद्ध किसी प्रकार की फौजदारी प्रक्रियाएँ नहीं लाई जा सकती। राष्ट्रपति को उन स्थितियों सहित जब कि दण्डादेश मृत्यु का हो, कतिपय अवस्थाओं में सिद्धदोष व्यक्ति को दण्ड की क्षमा, प्रविलम्बन (Reprieve) विराम या परिहार करने की अथवा दण्डादेश का निलम्बन, परिहार या लघूकरण की शक्ति प्राप्त है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय और राज्य के उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधिवक्ता (Chief Justice) तथा अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करता है।

राष्ट्रपति की आपात शक्तियाँ (Emergency powers of the President)—नये संविधान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक संघीय कार्यपालिका (Union Executive) में निहित विपुल आपात शक्तियों से सम्बन्ध रखता है। राष्ट्रपति तीन प्रकार की आपातों का सामना करने के लिए इन असाधारण शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। ये आपातें निम्नलिखित हैं—(1) युद्ध अथवा बाह्य-आक्रमण अथवा आभ्यन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न आपातें, (2) राज्यों में वैधानिक तन्त्र विफल हो जाने से उत्पन्न आपातें और (3) वित्तीय आपातें।

(1) **आपात की उद्घोषणा** (Proclamation of Emergency)—पहले प्रकार की आपात के सम्बन्ध में संविधान ने निर्धारित किया है कि यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि गम्भीर आपात विद्यमान है जिससे कि युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति से भारत या उसके राज्य-क्षेत्र के किसी भाग की सुरक्षा संकट में है, तो वह आपात की उद्घोषणा निकाल सकता है। यह स्मर्त्तव्य है कि राष्ट्रपति इस प्रकार की उद्घोषणा युद्ध या बाह्य आक्रमण या आभ्यन्तरिक अशान्ति के घटित होने के पूर्व भी निकाल सकता है, यदि उसे इस बात का समाधान हो जाये कि इसका आसन्न संकट विद्यमान है। तथापि, राष्ट्रपति का अधिकार संसद् के नियन्त्रण में रहता है। आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) को संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाता है और वह दो मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहती जब तक कि उसका उस कालावधि की समाप्ति से पहले संसद् के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदन न कर दिया जाये।

उद्धोषणा का प्रभाव (Effects of the Proclamation)—राष्ट्रपति द्वारा की गई आपात की उद्धोषणा का सुदूर-व्यापी प्रभाव होता है। जब आपात उद्धोषणा प्रवर्तन में होती है, संसद् को सम्पूर्ण देश के लिए अथवा उसके किसी भाग के लिए उन विषयों पर भी कानून बनाने का अधिकार होता है जो राज्य-सूची में उल्लिखित हैं और जिन पर साधारणतः राज्य-विधानमण्डलों को पूर्ण अधिकार रहता है। राष्ट्रपति की कार्यपालिका-शक्ति का विस्तार किमी को इस विषय में निर्देश देने तक हो जाता है कि वह अपनी कार्यपालिका का शक्ति का किस रीति से प्रयोग करें। दूसरे शब्दों में, आपात की उद्धोषणा के प्रवर्तन-काल में संघीय विधानमण्डल और कार्यपालिका को राज्यों के विधानमण्डलों और कार्यपालिकाओं के कार्य का नियन्त्रण और निरीक्षण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। अपरन्च, आपात की उद्धोषणा राष्ट्रपति को संघ और राज्यों के बीच राजस्व के साधारण वितरण का संशोधन करने की भी शक्ति दे देती है। इस प्रकार, आपात की उद्धोषणा के प्रभावस्वरूप राज्यों की स्वायत्तता स्थगित हो जायेगी तथा देश का संघीय ढाँचा एकात्मक ढाँचे के रूप में परिवर्तित हो जायेगा। राज्य विधायी, अधिशासनिक और वित्तीय आदि सभी मामलों में केन्द्र के दास हो जायेंगे। इतना नहीं, आपात की उद्धोषणा संविधान द्वारा गारण्टी किये गये भारत के नागरिकों के कतिपय महत्वपूर्ण अधिकारों अर्थात् भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, शान्तिपूर्वक सभा करने की स्वतन्त्रता, भारत के किसी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति के अर्जन, व्ययन और धारण की स्वतन्त्रता तथा वृत्ति, उप-जीविका, कारबार और व्यापार करने की स्वतन्त्रता का अन्त कर देगी। साधारण परिस्थितियों में वे अधिकार समर्थनीय हैं और नागरिक उन्हें प्रवर्तित कराने के लिए सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालयों की शरण तक ले सकते हैं। लेकिन जब आपात की उद्धोषणा प्रवर्तन में है, राष्ट्रपति नागरिकों के इस अधिकार को स्थगित कर सकता है।

स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आपात का सामना करने के लिए संघीय कार्यपालिका को जो शक्तियाँ दी गई हैं, उन्हें लोकतन्त्र के अनुकूल नहीं कहा जा सकता। महान् संकट के समय नागरिकों के मूल अधिकारों को स्थगित करने की शक्ति दूसरे देशों में भी अज्ञात नहीं है। लेकिन, यह शक्ति बहुत भयानक है। इसका बड़ी आसानी से दुरुपयोग हो सकता है और इसके दुरुपयोग के द्वारा जनता की स्वतन्त्रता को कुचला जा सकता है और देश पर सर्वाधिकारवादी शासन लादा जा सकता है। यह स्मरणीय है कि तथाकथित लोकतन्त्रात्मक वेीमर संविधान के (Weimer Constitution) के अनुच्छेद 48 ने जर्मन विधान सभा (German Reich) के अध्यक्ष को यह शक्ति दी थी कि संकटकाल में नागरिकों के कुछ मूल अधिकारों को स्थगित कर सकता है। हिटलर (Hitler) ने इसी शक्ति का प्रयोग करके जर्मन जनता को अपना दास बनाया और देश के ऊपर अपनी तानाशाही लाद दी। यह ठीक ही कहा गया है कि आपात शक्तियों (Emergency Powers) ने भारत के राष्ट्रपति के हाथों में एक

ऐसी भरी हुई बन्दूक सौंप दी है, “जो नागरिकों की स्वतन्त्रता को बचाने और नष्ट करने, दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकती है।”

(2) राज्यों में वैधानिक तन्त्र विफल हो जाने से उत्पन्न आपात (Emergencies arising from the failure of constitutional machinery in States)—संविधान ने निर्धारित किया है कि राज्यों की बाह्य आक्रमण और आभ्यन्तरिक अशान्ति से रक्षा करना तथा राज्य की सरकार संविधान के उपबन्धों के अनुसार चलाई जाय, यह सुनिश्चित करना संघ सरकार का कर्तव्य है। यदि किसी राज्य के राज्यपाल से प्रतिवेदन मिलने पर या अन्यथा राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें उस राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तो राष्ट्रपति इस आशय की आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) निकाल सकता है। उस स्थिति में वह राज्य की समस्त अधिशासनिक सत्ता अपने हाथों में ले सकता है। जहाँ तक राज्य के विधानमण्डल का सम्बन्ध है, राष्ट्रपति आदेश दे सकता है कि उसकी शक्तियाँ संसद् के प्राधिकार के द्वारा या अधीन प्रयुक्त होंगी। तथापि, संसद् राष्ट्रपति को उस राज्य के लिए कानून बनाने की शक्ति दे सकती है। इस प्रकार, आपात की उद्घोषणा के समान ही, राज्य में वैधानिक तन्त्र विफल हो जाने की उद्घोषणा का भी यही प्रभाव होगा कि सम्बद्ध राज्य की स्वायत्तता स्थगित हो जायेगी और वह राज्य सीधे संघ के प्राधिकार के अन्तर्गत आ जायेगा।

राष्ट्रपति द्वारा राज्य में वैधानिक तन्त्र के विफल हो जाने की उद्घोषणा दो महीने की समाप्ति पर, यदि वह संसद् के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित नहीं हो जाती, प्रवर्तन में नहीं रहेगी। यह उद्घोषणा एक बार में छः महीने से अधिक के लिए नहीं निकाली जा सकती लेकिन इसे इस विपत्त काल की समाप्ति पर प्रति बार छः महीने के लिए बढ़ाया जा सकता है। जितनी बार इस उद्घोषणा की अवधि बढ़ायी जायेगी, उतनी ही बार संसद् के अनुमोदन की आवश्यकता होगी। लेकिन यह उद्घोषणा किसी भी दशा में तीन वर्ष से अधिक समय के लिए नहीं चल सकती।

(3) वित्तीय आपात (Financial Emergency)—यदि राष्ट्रपति का समाधान हो जाये कि ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिससे भारत का वित्तीय स्थायित्व (Financial Stability) या प्रत्यय (Credit) संकट में है, तो वह वित्तीय आपात (Financial Emergency) की उद्घोषणा निकाल सकता है। इस प्रकार की उद्घोषणा को यदि दो मास की समाप्ति के पूर्व संसद् के दोनों सदनों द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता, तो वह इस अवधि के समाप्त होने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगी। यह उद्घोषणा एक बार में छः महीने से अधिक के लिए नहीं निकाली जा सकती लेकिन इसे संसद् का अनुमोदन मिलने पर प्रति बार छः महीने के लिए बढ़ाया जा सकता है। तथापि, यह उद्घोषणा किसी भी अवस्था में तीन साल से अधिक समय तक नहीं चलेगी।

वित्तीय आपात की उद्घोषणा के प्रवर्तन काल में राष्ट्रपति को यह अधिकार

होगा कि वह सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों सहित संघ या राज्य के समस्त सरकारी नौकरों के वेतनों और भत्तों में कमी का आदेश दे सके। वह यह भी माँग कर सकता है कि धन विधेयकों को उसकी स्वीकृति के लिए उसके सामने उपस्थित किया जाये। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति देश के वित्तीय स्थायित्व (Financial Stability) को पुनः स्थापित करने के लिए अन्य आवश्यक उपाय भी कर सकता है।

६ राष्ट्रपति की शक्तियाँ—सिद्धान्त और व्यवहार के बीच अन्तर (The President's Powers—a Contrast between Theory and Practice)

राष्ट्रपति की शक्तियाँ औपचारिक और नाममात्र की हैं तथा वैधानिक शासन के रूप में वह अपने मन्त्रियों की राय के अनुसार काम करता है (President's powers are formal and nominal and as a constitutional ruler, he acts on the advice of his ministers)—इंग्लैण्ड के सम्राट् की भाँति ही भारत के राष्ट्रपति के सम्बन्ध में भी सिद्धान्त और व्यवहार के बीच बहुत अन्तर है। सिद्धान्ततः उक्त शक्तियाँ राष्ट्रपति की हैं। लेकिन वस्तुतः वे केवल औपचारिक अर्थ में ही उसकी हैं। दूसरे शब्दों में उसकी शक्तियाँ केवल नाममात्र की हैं। सिद्धान्ततः जो शक्तियाँ राष्ट्रपति की हैं, व्यवहार में उनका प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है। राष्ट्रपति संघ का नाममात्र का प्रधान है। ब्रिटिश सम्राट् या फ्रेंच राष्ट्रपति की भाँति वह केवल वैधानिक शासक है। संघ की वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिमण्डल है जो अपनी नीतियों और कार्यों के लिए संसद् के प्रति उत्तरदायी है। इसलिए यद्यपि संघ की कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति के नाम में होता है, लेकिन वास्तव में उसका प्रयोग मन्त्री करते हैं। इसका ज़रा भिन्न रीति से भी वर्णन किया जा सकता है। राष्ट्रपति अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग अपनी इच्छानुसार नहीं, प्रत्युत अपने मन्त्रियों की मन्त्रणा के अनुसार करता है चाहे वह व्यक्तिगत रूप से इस मन्त्रणा से सहमत न हो। संविधान ने निर्धारित किया है कि “राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers) होगी।” यह सही है कि बाल की खाल निकालने वाला न्यायिद् कह सकता है कि संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के लिए यह नितान्त आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक मामले में अपने मन्त्रियों की राय माने। हमें इस बात का पूरा विश्वास है कि इंग्लैण्ड की तरह भारत में भी संसदीय शासन की रूढ़ियाँ (Conventions) विकसित हो जायेंगी। संसदीय शासन (Parliamentary Government) का मूलमन्त्र यह है कि राज्य का ध्वजमात्र प्रधान (Titular head), प्रत्येक मामले में उत्तरदायी मन्त्रियों की राय को मानता है। सारे निर्णय मन्त्री करते हैं यद्यपि वे राष्ट्रपति के नाम में कार्यान्वित होते हैं।

शक्ति के अभाव का अर्थ प्रभाव का अभाव नहीं है (Lack of power does

not mean lack of influence)—उक्त विवेचन से पाठकों के मन में यह धारणा बन सकती है कि राष्ट्रपति केवल कठपुतली मात्र है। यह सही है कि उसे मन्त्रियों की इच्छानुसार चलना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, उसके पास कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। लेकिन, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसके पास प्रभाव भी नहीं है। यह स्मरण रखना चाहिए कि एक दृष्टि से वह सम्पूर्ण राष्ट्र का निर्वाचित प्रतिनिधि है। उसका पद अत्यन्त गौरवपूर्ण और प्रतिष्ठासम्पन्न है। ब्रिटिश सम्राट् की भाँति उसे भी “सूचना पाने, प्रोत्साहन देने और चेतावनी देने का अधिकार” (The right to be informed, to encourage and to warn) है। यदि उसका व्यवहार प्रभावशाली है और उसमें चातुर्य है, तो वह अपने मन्त्रियों के निर्णयों को काफी हद तक प्रभावित कर सकेगा। एक क्षेत्र में, राष्ट्रपति को वास्तविक शक्ति के प्रयोग का अवसर मिलता है। वह प्रधान मन्त्री को चुनता है। मान लीजिये, लोक-सभा में दो से अधिक दल हैं और उनमें से किसी का स्पष्ट बहुमत नहीं है। स्पष्टतः इस स्थिति में राष्ट्रपति को अपने स्वविवेक (Discretion) के प्रयोग का अवसर मिलता है। यदि वह इस अवसर का बद्धिमत्ता से सदुपयोग करे, तो वह मन्त्रि-परिषद् (Council of Ministers) की रचना में काफी हाथ रख सकता है।

१०. उप-राष्ट्रपति (The Vice-President)

उसका निर्वाचन और अर्हताएँ (His Election and Qualifications)—नये संविधान के अधीन भारत का एक उप-राष्ट्रपति (Vice-President) होगा। वह एकल संक्रमणीय मत (Single Transferrable Vote) के द्वारा सानुपात प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की प्रणाली के अनुसार संघीय विधानमण्डल (Parliament) के दोनों सदनों द्वारा गुप्त मतांकन (Secret Ballot) से निर्वाचित होगा। उप-राष्ट्रपति पद के लिए प्रत्याशी व्यक्ति के पास निम्न अर्हताओं (Qualifications) का होना आवश्यक है—(1) उसे भारत का नागरिक होना चाहिए; (2) उसकी आयु तीस वर्ष से अधिक की होनी चाहिए; (3) उसमें राज्य सभा के लिए सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता होनी चाहिए, (4) उसे भारत सरकार के अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी से नियन्त्रित किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन कोई लाभ का पद धारण किये हुए नहीं होना चाहिए; और (5) उसे संसद् के किसी सदन या राज्य विधानमण्डल का सदस्य नहीं होना चाहिए।

उसके कृत्य (His Functions)—अमरीका के उप-राष्ट्रपति की तरह भारत का उप-राष्ट्रपति भी पदेन (Ex-officio) संघीय विधानमण्डल के उच्च सदन अर्थात् राज्य सभा का सभापति है। यदि राष्ट्रपति की मृत्यु, पदत्याग, पदच्युति या बीमारी के कारण राष्ट्रपति का पद अस्थायी रूप से रिक्त हो जाये, तो उप-राष्ट्रपति नये राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है। इस दृष्टि से वह अमरीका के उप-राष्ट्रपति से भिन्न है क्योंकि वहाँ यदि राष्ट्रपति की मृत्यु हो

जाये या वह त्याग पत्र दे दे, तो उसके शेष कार्यकाल के लिए उप-राष्ट्रपति स्वतः राष्ट्रपति हो जाता है। भारत में राष्ट्रपति की मृत्यु या पदत्याग के फलस्वरूप उप-राष्ट्रपति शेष कार्यकाल के लिए स्वतः राष्ट्रपति नहीं बनता। वह नये राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक ही राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है। भारत का उप-राष्ट्रपति यदि वह स्वयं अपना पदत्याग न करे अथवा राज्य सभा के पूर्ण बहुमत (Absolute Majority) से पास किये गये ऐसे प्रस्ताव के द्वारा जिस पर लोक-सभा ने भी अपनी स्वीकृति दे दी हो, अपदस्थ न किया जाये, पाँच वर्ष की अवधि तक पद धारण करता है।

११. मन्त्रिमण्डल (The Cabinet)

मन्त्रिमण्डल, मन्त्रि-परिषद् तथा मन्त्रि-परिषद् की रचना (Cabinet and council of ministers and formation of the council of ministers)—यह हम बारम्बार कह ही चुके हैं कि भारत में संसदीय शासन (Parliamentary Government) को अपनाया गया है। इस शासन-प्रणाली के अन्दर वास्तविक कार्यपालिका मन्त्रिमण्डल है। संविधान ने जो सत्ता सिद्धान्ततः राष्ट्रपति में वेहित की है, उसका वास्तविक प्रयोग मन्त्रिमण्डल करता है। वह स्मरणीय है कि संविधान में मन्त्रि-परिषद् (Council of Ministers) की चर्चा की गई, मन्त्रिमण्डल (Cabinet) की नहीं। इन दोनों में क्या अन्तर है? मन्त्रिमण्डल मन्त्रि-परिषद् का एक भाग है अथवा जैसा कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के बारे में कहा जाता है, वह चक्र के अन्दर एक चक्र (A wheel within wheel) है। मन्त्रि-परिषद् में वे कई छोटे मन्त्री (Junior Ministers) भी शामिल रहते हैं जिन्हें मन्त्रिमण्डल का स्तर नहीं मिलता। उदाहरण के लिए हमारे यहाँ कई राज्य मन्त्री (Ministers-in-States) और उपमन्त्री (Deputy Ministers) हैं। वे मन्त्रि-परिषद् के सदस्य हैं लेकिन मन्त्रिमण्डल से बाहर रहते हैं। मन्त्रिमण्डल ही सम्पूर्ण परिषद् की कानून-निर्मात्री समिति है।

मन्त्रि-परिषद् की रचना (Formation of Council of Ministers)—संविधान ने मन्त्रि-परिषद् की रचना के लिए निम्न प्रक्रिया निश्चित की है। 'प्रधान मन्त्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा और अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति प्रधान मन्त्री की मन्त्रणा पर करेगा।' यह स्मरण रहना चाहिए कि राष्ट्रपति को प्रधान मन्त्री की नियुक्ति में अपनी वैयक्तिक रुचि-अरुचि के अनुसार कार्य करने का बहुत कम प्रवसर है। साधारणतः, लोक-सभा में जिस दल का बहुमत है, राष्ट्रपति उसके नेता को प्रधान मन्त्री नियुक्त करने के लिए बाध्य है। यदि लोक-सभा में कई दल हों और उनमें से किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, उस स्थिति में राष्ट्रपति अवश्य अपनी थोड़ी-सी रुचि-स्वातन्त्र्य का प्रयोग कर सकता है। प्रधान मन्त्री की नियुक्ति के पश्चात् राष्ट्रपति को उसके द्वारा चुनी गई टीम स्वीकार करनी पड़ती है। संविधान के अनुसार यह आवश्यक है कि संसद् को दोनों सदनों में से किसी एक का सदस्य

अवश्य होना चाहिए। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो संसद् के दोनों सदनों में से किसी का भी सदस्य नहीं है, मन्त्री नियुक्त किया जाता है, तो वह छः महीने की समाप्ति पर वह इन दोनों सदनों में से किसी एक का सदस्य निर्वाचित नहीं हो जाता, मन्त्री नहीं रहेगा।

मन्त्रिमण्डल के कार्य (Functions of the Cabinet)—संघ-शासन में मन्त्रिमण्डल की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसकी शक्तियाँ और दायित्व अत्यन्त व्यापक हैं। उसे प्रशासनिक, विधायी और वित्तीय सभी मामलों का प्रबन्ध करना पड़ता है। वह भारत संघ की सामान्य अधिशासनिक नीति (Executive Policy) निश्चित करता है। वह सम्पूर्ण प्रशासन का संचालन करता है। उसका प्रत्येक सदस्य एक या एक से अधिक विभागों का प्रधान होता है। मन्त्रिमण्डल संघीय विधानमण्डल के विधायी कार्यक्रम को भी तैयार करता है। सभी सरकारी विधेयकों को जिसका अभिप्राय सभी महत्वपूर्ण विधेयक होता है, मन्त्री ही संसद् में पुरःस्थापित करते हैं और उन्हें पास करवाते हैं। चूँकि मन्त्री उस दल के नेता होते हैं जिसका लोक-सभा में बहुमत होता है, अतः संसद् में मन्त्रिमण्डल की स्थिति अत्यन्त प्रभावपूर्ण होती है। सचाई यह है कि कोई गैर सरकारी सदस्य कोई विधेयक उपस्थित करता है और उस विधेयक के पीछे मन्त्रिमण्डल का समर्थन नहीं होता, तो उस विधेयक के पास होने की बहुत कम सम्भावना रहती है। अपरंच, मन्त्रिमण्डल के कुछ वित्तीय कार्य भी होते हैं। वह बजट तैयार करता है। वह यह तय करता है कि कौन-कौन से कर लगाये जायेंगे और संघ की आय किस प्रकार खर्च होगी। समस्त धन विधेयकों (Money Bills) का मन्त्रियों द्वारा पुरःस्थापित किया जाना आवश्यक है। अन्तशः, मन्त्रिमण्डल भारत संघ की वैदेशिक नीति निर्धारित करता है और इस प्रकार यह निश्चित करता है कि भारत संघ के संसार के अन्य देशों के साथ क्या सम्बन्ध होंगे ?

१२. मन्त्रिमण्डल की कार्यप्रणाली के मूल सिद्धान्त (Basic Principles on which Cabinet Works)

मन्त्रिमण्डल तथा संसद् का सहयोग और लोकसभा के प्रति उत्तरदायित्व, क्या यह उत्तरदायित्व सामूहिक है या सिर्फ प्रधानमन्त्री व राष्ट्रपति सब भूतों के दोषी ठहराये जाते हैं ? (The Cabinet its responsibility towards the Parliament— is this responsibility collective or only the Prime-Minister or President accountable for all actions ?)—मन्त्रिमण्डल की कार्यप्रणाली कतिपय सर्वमान्य सिद्धान्तों के ऊपर आधारित है। पहली बात यह है कि यद्यपि सिद्धान्ततः मन्त्रिमण्डल का कार्य राष्ट्रपति को मन्त्रणा और सहायता देना है, लेकिन वस्तुतः राष्ट्रपति उससे बाहर रहता है। वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों में भाग नहीं लेता। यह राष्ट्रपति की तटस्थता निश्चित कर देता है और उसे दलगत राजनीति से ऊपर उठा देता है। मन्त्रिमण्डल द्वारा निश्चित किया गया प्रत्येक कार्य राष्ट्रपति के नाम में सम्पन्न होता

है। लेकिन, इस बात को हर कोई जानता है कि राष्ट्रपति का इस मामले में कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। यदि संघ की अधिशासनिक सत्ता का अच्छी तरह प्रयोग होता है, जो इसका श्रेय मन्त्रिमण्डल को मिलता है। इसके विपरीत, यदि मन्त्रिमण्डल से कोई भूल हो जाती है, तो इसके लिए राष्ट्रपति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इंग्लैण्ड में कहा जाता है कि सम्राट् कोई गलती नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि उसके नाम से जो भी कार्य किया जाता है, उसे वास्तव में वह नहीं कहता, प्रत्युत उसके मन्त्री करते हैं। भारत के राष्ट्रपति की भी यही स्थिति है। हो सकता है कि राष्ट्रपति परोक्ष रीति से मन्त्रिमण्डल के निर्णयों पर अपना प्रभाव डाल सके, लेकिन जहाँ मन्त्रिमण्डल ने एक बार किसी कार्य को करने का निश्चय कर लिया, राष्ट्रपति को उस पर अपनी स्वीकृति देनी ही पड़ती है चाहे वह उससे असहमत ही क्यों न हो। दूसरी बात यह है कि मन्त्रिमण्डल विधानमण्डल के साथ सहयोगपूर्वक कार्य करता है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, प्रत्येक मन्त्री संसद् के किसी न किसी सदन का सदस्य होता है। इस नाते मन्त्री संसद् के दोनों सदनों की बैठकों में उपस्थित होते हैं, विधेयकों को पुरस्थापित करते हैं और पास करवाते हैं, वाद-विवादों में भाग लेते हैं, प्रश्नों के उत्तर देते हैं और अपनी नीतियों का बचाव करते हैं। कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का यह सहयोग संमदीय शासन की एक प्रमुख विशेषता है। यह अमरीका की अध्वक्षात्मक शासन-प्रणाली से भिन्न है। अमरीका की शासन-प्रणाली शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त (The principle of separation of powers) पर आधारित है और कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका को एक दूसरे से अलग रखने का प्रयास करती है। तीसरे, मन्त्रिमण्डल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसका अभिप्राय यह है कि मन्त्रिमण्डल और इस दृष्टि से सम्पूर्ण मन्त्रि-परिषद् उसी समय तक सत्तारूढ़ रहती है जब तक कि उसे लोकसभा का विश्वास (अर्थात् उसके सदस्यों के बहुमत का समर्थन) प्राप्त होता है। यदि यह स्पष्ट हो जाये कि सभा का मन्त्रियों में विश्वास नहीं रहा, तो मन्त्रालय (Ministry) के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह या तो पद रिक्त कर दे या राष्ट्रपति को लोकसभा का विघटन करने और नये साधारण निर्वाचनों का आदेश देने की मन्त्रणा प्रदान करे। यह दृष्टव्य है कि मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से (Collectively) लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। मन्त्रिमण्डल एक टीम है जिसके सदस्य साथ-ही-साथ डूबते और साथ-ही-साथ तैरते हैं। यदि किसी एक मन्त्री से कोई गलती हो जाती है, तो उसका दोष सारे मन्त्रिमण्डल के ऊपर पड़ता है। यदि लोकसभा किसी एक मन्त्री के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर देती है, तो सारे मन्त्रियों को त्यागपत्र देना पड़ता है। यह भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है कि उसमें लोकसभा के प्रति मन्त्रि-परिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया है। इंग्लैण्ड और डोमिनियनों में मन्त्रीय उत्तरदायित्व पूर्णतः अभिसमय (Convention) पर आधारित है। इस दृष्टि से भारती गणराज्य का संविधान आयरलैण्ड तथा फ्रांस के चतुर्थ गणराज्य (Fourth Republic of France) से सादृश्य रखता है। इन दोनों ही देशों के संविधानों में

विधानमण्डल के प्रति मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया है। चौथे, मन्त्रिमण्डल प्रधानमन्त्री के नेतृत्व में कार्य करता है। संविधान ने यह निर्धारित करके कि “एक मन्त्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान प्रधानमन्त्री होगा...” (अनुच्छेद 74) प्रधानमन्त्री की सर्वोच्च स्थिति को मान्यता दी है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री की तरह वह (*primus inter pares*) अर्थात् बराबर वालों के बीच में प्रथम ही है। वह दूसरे मन्त्रियों को चुनता है। उनके बीच विभागों का वितरण करता है। वह मन्त्रिमण्डल की बैठकों का कार्यक्रम निश्चित करता है और उनकी अध्यक्षता करता है। वह किसी भी समय एक मन्त्री से त्यागपत्र की माँग कर और उसके स्थान पर किसी अन्य मन्त्री को नियुक्त कर मन्त्रिमण्डल में फेरफार कर सकता है। यह ठीक ही कहा गया है कि प्रधान मन्त्री जिस तरह चाहे, अपनी टीम में उलट-फेर कर सकता है। यदि कभी प्रधान मन्त्री एवं अन्य मन्त्री के बीच मतभेद हो जाये, तो मन्त्री को या तो भुक्त पड़ता है या त्यागपत्र देना पड़ता है। कुछ वर्ष पूर्व जब प्रधान मन्त्री नेहरू एवं डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी या श्री के० सी० नयोगी के बीच मतभेद हुआ था, तब बाद के दोनों व्यक्तियों को ही त्यागपत्र देने पड़े थे। इस तरह, प्रधानमन्त्री मन्त्रिमण्डल का प्राण है। लेकिन उसकी इस उच्च स्थिति से यह नहीं समझना चाहिए कि वह स्वेच्छाचारी है। वह नेता है, अधिपति नहीं। साधारणतः, मन्त्री दल के नेता होते हैं और प्रधानमन्त्री उनकी सद्भावना से हाथ नहीं धोना चाहता। उदाहरण के लिए, हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि पंडित नेहरू स्वर्गीय सरदार पटेल के साथ अधिपति जैसा व्यवहार करते होंगे। प्रधान मन्त्री इस बात को समझता है कि मन्त्री उसके दास नहीं, प्रत्युत साथी हैं और इसलिए उसे उनके साथ ऐसा ही व्यवहार रखना पड़ता है। प्रधानमन्त्री राष्ट्रपति एवं मन्त्रिमण्डल के बीच कड़ी भी है। वह मन्त्रिमण्डल के निर्णयों को राष्ट्रपति के पास पहुँचाता है। यदि राष्ट्रपति संघीय मामलों के प्रशासन से सम्बन्ध रखने वाली सूचनाओं तथा व्यवस्थापन सम्बन्धी प्रस्तावों की माँग करे, तो इन चीजों को उसके पास तक पहुँचाना प्रधान मन्त्री का कर्तव्य है। संसद् में प्रधान मन्त्री को शासन का मुख्य प्रवक्ता समझा जाता है और उससे आशा की जाती है कि वह सामान्य नीति के सम्बन्ध में समस्त महत्वपूर्ण उद्घोषणाएँ करे। मन्त्रिमण्डल में अपनी सबसे ऊँची स्थिति के कारण प्रधान मन्त्री देश की घरेलू और परराष्ट्र नीति निश्चित करता है। संकटकाल में अधिनायक जैसी शक्तियों का प्रयोग करता है।

संघीय विधानमण्डल (Union Legislative)

१३. संसद् (Parliament)

द्विसदनात्मक विधानमण्डल तथा संसद् के सत्र (A Bi-Cameral Legislature and Sessions of Parliament)—नये संविधान के अधीन संघीय (केन्द्रीय) विधानमण्डल (Parliament) कहलाता है। यह एक द्विसदनात्मक विधानमण्डल

(Bi-Cameral Legislature) है जो राष्ट्रपति तथा संसद् के दो सदनों से मिलकर बना है। ये सदन क्रमशः राज्य सभा और लोकसभा के नाम से प्रख्यात हैं। संविधान ने निर्धारित किया है कि संसद् के दोनों सदनों का वर्ष में कम से कम दो बार आहूत होना आवश्यक है और उनके एक सत्र (Session) की अन्तिम बैठक तथा आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए निश्चित तारीख के बीच छः मास का अन्तर नहीं होना चाहिए। इस उपबन्ध (Provision) के अधीन रहते हुए राष्ट्रपति (1) संसद् के दोनों सदनों को अथवा किसी सदन को आहूत कर सकता है, (2) सदनों का सत्रावसान कर सकता है और (3) आवश्यकता पड़ने पर लोकसभा का विघटन कर सकता है।

१४. राज्य सभा (The Council of States)

उसकी रचना (Its Composition)—संसद् का उच्च सदन राज्य सभा कहलाता है। जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, यह सदन राज्यों अर्थात् भारत संघ के अवयवी एककों के प्रतिनिधियों से मिलकर बनता है। जिस समय संविधान 26 जनवरी, 1950 को पहले पहल प्रारम्भ हुआ था, इन राज्यों की संख्या 26 थी। तब सदनों की अधिकतम सदस्य संख्या 250 निर्धारित की गई थी। (अध्याय 8 देखिए)। 1956 के राज्य पुनर्गठन अधिनियम (States Reorganisation Act of 1956) के अनुसार अब एककों (Units) की संख्या घटकर 18 और सदस्य संख्या 220 रह गई है। इसमें से 12 सदस्यों को राष्ट्रपति नाम-निर्देशित करता है। ये 12 सदस्य ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा के बारे में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है। राज्य पुनर्गठन अधिनियम के अनुसार राज्यों के बीच स्थानों का बंटवारा निम्न प्रकार से किया गया है—

1. आंध्र प्रदेश	18	10. पंजाब	11
2. आसाम	6	11. राजस्थान	10
3. बिहार	21	12. उत्तरप्रदेश	31
4. बम्बई	27	13. पश्चिमी बंगाल	14
5. केरल	9	14. जम्मू और काश्मीर	4
6. मध्यप्रदेश	16	15. दिल्ली	1
7. मद्रास	17	16. हिमाचल प्रदेश	1
8. मेसूर	12	17. मनीपुर }	1
9. उड़ीसा	9	18. त्रिपुरा }	

कुल

208

राज्यों को समान प्रतिनिधित्व नहीं (No equality of representation to states)—भारत संघ के विभिन्न राज्यों के बीच स्थानों के उक्त वितरण से राज्य सभा की एक अनुपम विशेषता का ज्ञान होता है। अधिकांश संघों में उच्च सदन (Upper House) तो संघीय सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है और निम्न सदन

(Lower House) राष्ट्रीय सिद्धान्त का। दूसरे शब्दों में उच्च सदन तो संघ के अवयवी एककों के विशिष्ट हितों का और निम्न सदन सम्पूर्ण देश के सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करता है। अधिकांश संघों की एक विशेषता यह भी रहती है कि उनके सभी एककों को क्षेत्र एवं जनसंख्या के आकार के अन्तर के बावजूद समान दर्जा दिया जाता है। इस समानता को सुनिश्चित करने के लिए सभी अवयवी राज्यों को उच्च सदन में समान स्थान दिये जाते हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैण्ड में यही स्थिति है। भारत में इस सिद्धान्त का पालन नहीं हुआ है। यहाँ राज्यों को राज्य सभायें उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान दिये गये हैं। यह भारत के संविधान की एकात्मक अभिनति का एक अन्य प्रमाण है।

सदस्यों की अर्हतायें और उनका निर्वाचन (Qualifications and election of members)—राज्य सभा का सदस्य चुने जाने के लिए व्यक्ति में निम्न अर्हतायें होनी आवश्यक हैं। उसे भारत का नागरिक होना चाहिए, उनकी अवस्था कम से कम तीस वर्ष होनी चाहिए और उसमें ऐसी अन्य अर्हताएँ होनी चाहिए जो संविधान कानून द्वारा निश्चित करे। राज्य सभा के निर्वाचन परोक्ष रीति से होंगे। राज्यों के प्रतिनिधि जनता द्वारा सीधे नहीं चुने जायेंगे प्रत्युत वे परोक्ष रीति से ऐसे निर्वाचक मण्डलों (Electoral Colleges) द्वारा चुने जायेंगे जो प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनेगा। निर्वाचन सानुपात प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) की प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत्त (Single transferrable vote) के द्वारा होंगे। दिल्ली, हिमाचल प्रदेश और केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के प्रतिनिधि ऐसे ढंग से चुने जायेंगे जैसा कि संसद् निश्चित करे। राज्य सभा एक स्थायी सदन है। दूसरे शब्दों में उसका विघटन नहीं होता। सभा के सदस्य 6 वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं लेकिन उनमें से एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक द्वितीय वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाते हैं। भारत का उप-राष्ट्रपति पदेन राज्य सभा का सभापति (Chairman) होता है। सभा अपने सदस्यों में से किसी एक सदस्य को उप-सभापति (Deputy Chairman) चुनती है।

१५. लोकसभा (The House of the People)

उसकी रचना (Its Composition)—संसद् का निम्न सदन लोकसभा कहलाता है। इसकी अधिकतम सदस्य संख्या 500 है। ये सदस्य वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) के आधार पर सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। नये संविधान ने साम्प्रदायिक निर्वाचनों (Communal Electorates) का अन्त कर दिया है लेकिन अनुसूचित जन जातियों के हितार्थ दस वर्ष के लिए स्थान संरक्षित रखे हैं। उसने राष्ट्रपति को यह अधिकार भी दिया है कि उसकी राय हो कि लोकसभा में आंग्ल भारतीय समुदाय (Anglo-Indian Community) का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, तो वह लोक सभायें उस समुदाय के दो से अधिक प्रतिनिधि नाम-निर्देशित

कर सकता है।

निर्वाचन-क्षेत्र तथा सदस्यों की अर्हतायें (Constituencies and qualifications of members)—लोकसभा के लिए होने वाले निर्वाचनों के प्रयोजनार्थ राज्यों का प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (Territorial Constituencies) में इस प्रकार विभाजन कर दिया जाता है जिससे यह सुनिश्चित रहे कि प्रति 7,50,000 जन संख्या के लिए कम से कम एक सदस्य तथा प्रति 5,00,000 जनसंख्या के लिए एक से अधिक सदस्य न हों। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि जहाँ तक संभव हो, सारे भारत में प्रतिनिधित्व का अनुपात एक सा रहना चाहिए। लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्याशी भारत का नागरिक हो, 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और ऐसी अन्य अर्हतायें रखता हो जो संविधान द्वारा निश्चित की जायें। साधारणतः, लोकसभा की अवधि अपने प्रथम अधिवेशन के लिए नियुक्त की गई तारीख से पाँच वर्ष की है और इस अवधि की समाप्ति होने पर उसका विघटन कर देना आवश्यक है। लोकसभा को उसकी पूर्ण अवधि के समाप्त होने के पूर्व भी विघटित किया जा सकता है। जब आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) प्रवर्तन में है, लोकसभा की इस अवधि को एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है, लेकिन उद्घोषणा के प्रवर्तन का अन्त हो जाने के छः मास पश्चात् यह अवधि समाप्त हो जायेगी।

अध्यक्ष (The Speaker)—लोकसभा अपने दो सदस्यों को क्रमशः अध्यक्ष (Speaker) और उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) चुनती है। अध्यक्ष सभा का सभापति होता है। वह सभा की कार्यवाही का संचालन करता है, उसमें व्यवस्था और अनुशासन कायम रखता है और उसके सदस्यों के विशेषाधिकारों (Privileges) की रक्षा करता है। साधारणतः, लोकसभा के अध्यक्ष की स्थिति वही है जो ब्रिटिश कॉमन सभा के स्पीकर की है। जब वह एक बार अध्यक्ष निर्वाचित हो जाता है, दलगत निष्ठा त्याग देता है और सभा की कार्यवाही के संचालन में पूर्ण तटस्थ तथा निष्पक्ष दृष्टिकोण ग्रहण करता है।

१६. संसद् के दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual Relations of Two Houses of Parliament)

धन विधेयक (Money Bills)—नये संविधान ने संसद् के दोनों सदनों की समान स्थिति नहीं रखी है। वित्तीय व्यवस्थापन (Financial Legislation) के सम्बन्ध में लोकसभा की स्थिति ऊँची है, राज्य सभा की शक्तियाँ अत्यन्त मर्यादित हैं। संविधान ने निश्चित किया है कि धन विधेयक (Money Bills) केवल लोकसभा में ही पुरःस्थापित किया जा सकता है। जैसा ही लोकसभा उसे पास कर देती है, वह सिफारिशों के लिए राज्य सभा के पास भेज दिया जाता है। राज्य-सभा के लिए यह आवश्यक है कि वह विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित चौदह दिन के अन्दर ही लोकसभा के पास वापिस लौटा दे। इसके पश्चात् लोकसभा चाहे तो इन सिफारिशों में से किसी को

स्वीकार करे अथवा अस्वीकार, विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास किया हुआ समझा जाता है। यदि राज्य सभा विधेयक को चौदह दिन के अन्दर ही लोकसभा के पास वापिस नहीं भेज पाती, तब भी वह दोनों सदनों द्वारा पास किया हुआ समझा जाता है। इस प्रकार राज्य सभा को धन विधेयकों के सम्बन्ध में केवल यही शक्ति प्राप्त है कि वह उनके अविनियमन में दो सप्ताह की देरी कर सकती है। इस दृष्टि से राज्य सभा इंग्लैण्ड की लार्ड सभा (House of Lords) की तरह है। धन विधेयकों के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड की लार्ड सभा भी सर्वथा शक्तिहीन है।

धन विधेयकों से अन्य विधेयक (Non-money Bills)—लेकिन, धन विधेयकों से अन्य विधेयकों के बारे संसद् के दोनों सदनों की शक्तियाँ समान हैं। कोई भी अविन्तीय विधेयक (Non-money Bills) उस समय तक अधिनियम नहीं बन सकता जब तक कि वह संसद् के दोनों सदनों द्वारा पास न कर दिया जाये। लोकसभा को राज्य सभा के निर्णय का उत्तरदायक बनने की शक्ति नहीं है। इस दृष्टि से राज्य सभा ब्रिटिश लार्ड सभा से स्पष्टतः भिन्न है। ब्रिटिश लार्ड सभा अविन्तीय व्यवस्थापन (Non-financial Legislation) के सम्बन्ध में भी कॉमन सभा की हौ में हौ मिलाती है।

संयुक्त बैठकें (Joint-sittings)—कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि किसी अविन्तीय विधेयक के ऊपर लोकसभा और राज्य-सभा में मतभेद हो जाये। ऐसी स्थिति में गतिरोध दूर करने के लिए दोनों सदनों की एक संयुक्त बैठक की जा सकती है। संयुक्त बैठक में निर्णय केवल बहुमत से होता है। स्पष्ट है कि संयुक्त बैठक में लोकसभा की प्रधानता रहती है क्योंकि उसकी सदस्य संख्या राज्य-सभा की सदस्य संख्या से दुगुनी है। दूसरे शब्दों में, उच्च सदन उन मामलों में भी जो धन से सम्बन्ध नहीं रखते, लोकसभा की तुलना में घटे में रहता है। भारतीय राज्य-सभा ब्रिटिश लार्ड सभा की तरह गौण सदन नहीं है। फिर भी उसकी स्थिति लोकसभा से नीची ही है।

कार्यपालिका के ऊपर नियन्त्रण (Control over the Executive)—संसद् के दोनों सदनों के सम्बन्धों पर विचार करते समय यह याद रखना आवश्यक है कि कार्यपालिका के ऊपर अकेले निम्न सदन का ही नियन्त्रण है। मंत्रिधान मन्त्रि-परिषद् को दोनों सदनों के प्रति नहीं, प्रत्युत अकेले लोकसभा के प्रति ही उत्तरदायी बनाता है। यह सही है कि राज्य-सभा सरकार की नीति पर विचार-विमर्श कर सकती है और प्रश्नों व स्थगन-प्रस्तावों द्वारा उसकी भूलों को भी प्रकट कर सकती है। लेकिन सरकार के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे अपदस्थ करना केवल लोकसभा के ही हाथ में है। इस दृष्टि से राज्य-सभा केवल विचार करने वाला और सरकार की भूलों पर प्रकाश डालने वाला सदन मात्र है।

१७. संसद् की शक्तियाँ और मर्यादें (Powers and Limitations of Parliament)

(क) संसद् की विधायी शक्तियाँ तथा उनका विधायी क्षेत्राधिकार

साधारणतः राज्य सूची के विषयों पर लागू नहीं होता (The Powers and Jurisdiction of the Parliament do not ordinarily extend to subjects on the state list)—संविधान संघ-सूची (Union List) और समवर्ती सूची (Concurrent List) के सभी विषयों पर कानून बनाने की शक्ति संसद् को देता है। साधारणतः, वह राज्य-सूची के विषयों पर कानून नहीं बना सकती। लेकिन, यदि राज्य सभा किसी संकल्प (Resolution) द्वारा यह घोषणा कर दे कि इन विषयों में से अमक विषय राष्ट्रीय महत्त्व का हो गया है, तो संसद् उसके सम्बन्ध में कानून बना सकती है। संसद् की विधायी क्षमता के ऊपर यह प्रतिबन्ध संधात्मक संविधान की एक आवश्यक विशेषता है। इसका कारण यह है कि संधात्मक शासन में संघ एवं उसके अवयवी एककों के बीच शक्तियों का न्यूनाधिक रूप से कठोर वितरण रहता है। संसद् की विधायी क्षमता के ऊपर दो प्रतिबन्ध और लगे हुए हैं। संसद् के दोनों सदनों द्वारा पास किये गये प्रत्येक विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है। इसके बिना विधेयक अधिनियम नहीं बन सकता। लेकिन, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, राष्ट्रपति संसद् द्वारा पास किये गये किसी विधेयक पर अपनी अनुमति देना अस्वीकार कर सकता है और उसे पुनर्विचार के लिए संसद् के पास वापिस भेज सकता है। लेकिन, राष्ट्रपति का यह निषेधाधिकार विलम्बमान (Suspensory) ही है, अन्तिम नहीं। संसद् के दोनों सदन विधेयक को दूसरी बार सीधे बहुमत से पास करके राष्ट्रपति के निषेधाधिकार का अतिक्रमण कर सकते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि कांग्रेस द्वारा पास किये गये विधेयकों पर अमरीकी राष्ट्रपति जिस निषेधाधिकार का प्रयोग करता है, वह ज्यादा शक्तिशाली है। कांग्रेस राष्ट्रपति के निषेधाधिकार का तभी अतिक्रमण कर सकती है जब कि उसका प्रत्येक सदन विधेयक को दुबारा दो-तिहाई बहुमत से पास कर दे। अंतशः, संसद् ब्रिटिश संसद् की भांति कानून निर्माता निकाय (Sovereign law making body) नहीं है। ब्रिटिश संसद् की संविधान संविधायी (Constituent Powers) अप्रतिहत हैं। वह देश के संविधान को जिस तरह चाहे, बिना किसी विशेष प्रक्रिया के संशोधित कर सकती है। ब्रिटिश संसद् इतनी शक्तिशाली है कि उसके बारे में कहा जाता है कि वह पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बनाने के अलावा और सब कुछ कर सकती है। भारतीय संसद् की जो वे संधात्मक शासन में स्वाभाविक ही हैं। हम अभी कह चुके हैं कि वह साधारणतः राज्य सूची के विषयों पर कानून नहीं बना सकती। उसे पूर्ण संविधान-संविधायी शक्तियाँ (Constituent Powers) भी प्राप्त नहीं हैं। वह संविधान के महत्त्वपूर्ण उपबन्धों को केवल अपने अधिकार पर ही संशोधित नहीं कर सकती।

(ख) **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)**—संसद् को विपुल वित्तीय शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। वह बजट पास करती है और व्यय की अनुमति देती है। तथापि, व्यय की कुछ मर्दे ऐसी हैं जिन पर संसद् में मतदान नहीं हो सकता। हाँ, विचार-विमर्श अवश्य हो सकता है। इन मर्दों का व्यय भार भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) के ऊपर पड़ता है।

(ग) संसद् का संघीय कार्यपालिका के ऊपर नियन्त्रण (Control of Parliament over Union Executive)—चूँकि, संविधान ने भारत में संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की है, अतः संघीय कार्यपालिका के या मन्त्रि-परिषद् संसद् के नियन्त्रण में रहती है। संविधान ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया है कि मन्त्रि-परिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी। यदि मन्त्रि-परिषद् लोकसभा का विश्वास खो देती है, तो लोकसभा उसे (1) सीधे अविश्वास का प्रस्ताव पास करके, (2) किसी सरकारी विधेयक को अस्वीकार करके अथवा (3) किसी सरकारी विधेयक में ऐसा संशोधन उपस्थित करके जिससे सरकार सहमत न हो, अपदस्थ कर सकती है। संसद् प्रश्नों और स्थगन प्रस्तावों आदि के माध्यम से प्रशासन के ऊपर सतर्क दृष्टि रख सकती है और जनता का ध्यान सरकार की गति-विधियों एवं नीतियों की ओर आकृष्ट कर सकती है। संसद् का कोई भी सदस्य सरकार के कार्यों और नीतियों के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से प्रश्न पूछ सकता है। स्वभावतः, यह सरकार की नीतियों को प्रकाश में लाने के लिए अथवा उसे सार्वजनिक महत्त्व के ऐसे मामलों में आवश्यक कदम उठाने को विवश करने के लिए जिनकी उसने उपेक्षा की है, शक्तिशाली उपाय है। स्थगन-प्रस्ताव सदन के साधारण कार्य-व्यापार को स्थगित करने का ताकि रेल दुर्घटना, भीषण उपद्रव या सार्वजनिक सभा पर पुलिस की गोली वर्षा आदि सार्वजनिक महत्त्व के मामलों पर विचार किया जा सके, प्रस्ताव है। स्थगन प्रस्ताव (Adjournment Motion) का वास्तविक उद्देश्य प्रशासन की भ्रष्टता और दुर्बलता तथा कार्यपालिका की नीति-विषयक गलतियों को प्रकाश में लाना है। यह स्मरणीय है कि संसद् का नियन्त्रण कार्यपालिका को सतर्क रखता है और उसे स्वेच्छा-चारी या तानाशाही ढंग से काम करने से रोकता है।

प्रश्न

1. भारत के राष्ट्रपति का चुनाव किस प्रकार होता है ? भारतीय संविधान उसके चुनाव के लिये क्या-क्या अर्हताओं को मानता है ?
2. भारत के राष्ट्रपति की आपातकालीय शक्तियों का वर्णन करो। क्या यह शक्तियाँ कभी आगे चलकर लोकतन्त्र राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं ? (P. U. 1957)
3. उन मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन कीजिये जिनके अनुसार मन्त्रिमण्डल कार्य करता है। यह सिद्धान्त कहाँ तक भारतीय मन्त्रि-परिषद् के ऊपर लागू हो सकते हैं ?
4. मन्त्रि-परिषद् का निर्माण कैसे होता है, इसके क्या-क्या कार्य हैं ? मन्त्रि-परिषद् का (क) राष्ट्रपति तथा (ख) संसद् के साथ क्या सम्बन्ध है ?
5. भारतीय प्रधानमन्त्री की शक्तियों तथा स्थिति का वर्णन कीजिये। (P. U. 1957)
6. राज्य सभा व लोकसभा की रचना तथा चुनाव के बारे में लिखिये।
7. संसद् के दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में वर्णन कीजिये।

8. सरकार के क्या-क्या अंग हैं ? उप-राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है ? उसके अर्हतायों, कार्य और शक्तियों का वर्णन करो । (P. U. 1957)
9. क्या राष्ट्रपति को संविधान किसी कानून को रद्द करने की शक्ति प्रदान करता है ? उस पर उल्लेख और आलोचना करो । (P. U. 1957)
10. लोकसभा देश के वित्त के ऊपर किस तरह नियन्त्रण करती है ?

Questions

1. How is the President of India elected ? What are the qualifications laid down for this office by the Constitution ?
2. What are the Emergency Powers of the President of India ? Are these powers likely to endanger the future of democracy in our country ? (P. U. 1957)
3. What are the basic principles according to which Cabinet Government functions ? How far are these principles applicable to the working of the Cabinet System in India ?
4. Describe the formation and functions of the Union Council of Ministers ? Discuss the relations of the Council of Ministers with (a) The President and (b) Parliament
5. Describe the powers and position of the Prime Minister of India. (P. U. 1957)
6. Describe the composition and functions of the council of states.
7. Discuss the mutual relations between the Council of States and the House of the People (Lok Sabha).
8. What are the constituents of the Union Executive ? Describe the manner of election of the Vice-President as well as his powers and functions. (P. U. 1957)
9. Describe, as critically as you can, the nature and effect of the executive veto vested in the President of India under the present constitution. (P. U. 1957)
10. How does the Lok Sabha control the Finances of the nation ?

अध्याय ४

राज्यों की कार्यपालिका और व्यवस्थापिका (State Executive and Legislature)

१८. भारत संघ के राज्य-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (States in the Indian Union—Historical Background)

जब 1947 में भारत की जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्त की, उसे अपने ब्रिटिश शासकों से एक ऐसा प्रशासनिक संगठन विरासत में मिला था, जो किसी युक्तिसंगत अथवा वैज्ञानिक योजना के अनुसार नहीं, प्रत्युत “समय की सैनिक, राजनीतिक और प्रशासनिक आवश्यकताओं अथवा सुविधाओं” की दृष्टि से तैयार किया गया था। उसका देश के इतिहास से अथवा देश के विभिन्न भागों में निवास करने वाली जनता की आवश्यकताओं, इच्छाओं और भावनाओं से या तो कोई सम्बन्ध नहीं था और यदि था भी तो बहुत कम। स्वतन्त्र भारत को जिन अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ा, उनमें एक प्रमुख समस्या यह भी थी कि इन असंतुलित प्रशासनिक इकाइयों को

गया था और तत्पश्चात् इन राजनीतिक इकाइयों को एक न संगठित किया गया था। 550 विषम देशी राज्यों के एकीकरण के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई गई थी—

(1) 216 राज्यों की जिनकी जनसंख्या प्रायः 150 लाख थी, पास के प्रान्तों में मिला दिया गया और उन्हें भाग (क) राज्यों का नाम दिया गया :

राज्यों का नाम

तत्स्थानी प्रान्त का नाम

1. आसाम

आसाम

2. बिहार

बिहार

3. बम्बई

बम्बई

4. मध्य प्रदेश	मध्य प्रान्त और बरार
5. मद्रास	मद्रास
6. उड़ीसा	उड़ीसा
7. पंजाब	पूर्वी पंजाब
8. उत्तर-प्रदेश	संयुक्त प्रान्त
9. पश्चिमी बंगाल	पश्चिमी बंगाल

(2) 275 राज्यों को जिनकी जनसंख्या प्रायः 350 लाख थी, भाग (ख) राज्य नामक नये प्रशासनिक एककों रूप में गठित किया गया। ये नये प्रशासनिक एकक (Administrative Units) अथवा भाग (ख) राज्य निम्नलिखित थे—

1. मध्य भारत
2. मैसूर
3. पटियाला और ईस्ट पंजाब राज्य संघ (पेप्सू)
4. राजस्थान
5. सौराष्ट्र
6. त्रावणकोर कोचीन

(3) 61 राज्यों को जिनकी जनसंख्या प्रायः 70 लाख थी, भाग (ग) राज्यों के नाम से केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों (Centrally Administered Areas) के रूप में गठित किया गया। भाग (ग) राज्य अथवा केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र निम्नलिखित थे—

1. अजमेर
2. भोपाल
3. विलासपुर
4. कुर्ग
5. दिल्ली
6. हिमाचल प्रदेश
7. कुच
8. मनीपुर त्रिपुरा
9. विन्ध्य प्रदेश

तीन राज्यों अर्थात् हैदराबाद, मैसूर तथा जम्मू और काश्मीर को भाग (ख) राज्यों के रूप में रखा गया था, लेकिन उनके आन्तरिक शासन प्रबन्ध को और केन्द्र के साथ उनके सम्बन्धों को एक नया रूप दिया गया जिससे कि वे नवीन वैधानिक संगठन में ठीक रह सकें।

उक्त परिवर्तन देश के प्रशासनिक एकीकरण (Integration) और समेकन (Consolidation) की दिशा में पहले चरण के रूप में थे। लेकिन उन्हें संक्रमण-काल की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया था। सत्ता-हस्तांतरण (Transfer of Power) के समय भारत के विभिन्न राज्य विकास के विभिन्न स्तरों

पर थे। राज्यों का उक्त वर्गीकरण इस बात को ध्यान में रखकर किया गया था।

उक्त परिवर्तनों के साथ ही साथ देश में भाषावार राज्यों के निर्माण की माँग भी उठ खड़ी हुई। इस माँग की पृष्ठभूमि यह थी कि गत एक शताब्दी में हमारी प्रादेशिक भाषाओं ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी जिसके फलस्वरूप विभिन्न भाषाभाषी वर्गों में भावनात्मक एकता (Emotional Integration) पैदा हुई और उन्होंने स्वभावतः यह माँग उपस्थित की कि एक भाषा के बोलने वाले लोगों को एक प्रशासनिक इकाई के रूप में संगठित किया जाये। इसी माँग का एक परिणाम यह था कि 1 अक्टूबर, 1953 को आंध्र राज्य का जन्म हुआ।

इस तरह, भारत का जो नया राजनीतिक और प्रशासनिक तन्त्र पैदा हुआ था, वह न तो भारत संघ के एककों के बीच एकता और संतुलन ही रख सकता था और न उनकी वैधानिक विषमताओं को ही दूर कर सकता था। जब देश ने राष्ट्रीय आयोजन के कार्यक्रम को अपनाया, तब इस बात की प्रबल आवश्यकता अनुभव की जाने लगी कि राज्यों को स्थायी राजनीतिक एककों के रूप में पुनर्गठित करना चाहिए। अतः, 'इस समस्या पर कुछ इस तरह निष्पक्षता एवं शान्तिपूर्वक विचार करने की जरूरत मालूम पड़ने लगी जिससे कि प्रत्येक अवयवी एकक (Constituent Unit) के लोगों के साथ ही साथ सम्पूर्ण राष्ट्र के लोगों का कल्याण हो।'

१६. राज्यों का पुनर्गठन (Reorganisation of States)

उक्त दृष्टि से, भारत के राज्यों के पुनर्गठन के सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिए भारत सरकार ने 29 दिसम्बर 1953 को राज्य पुनर्गठन आयोग (States Reorganisation Commission) की नियुक्ति की। आयोग ने राज्यों के पुनर्गठन के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें करते समय निम्नलिखित मोटे सिद्धान्त अपने सामने रखे थे—

- (1) भारत की सुरक्षा और एकता।
- (2) भाषा और संस्कृति सम्बन्धी एकता।
- (3) वित्तीय आर्थिक और प्रशासनिक आवश्यकताएँ।
- (4) राष्ट्रीय योजना की सफलता पूर्वक कार्यान्वित।

अवयवी एककों का संगठित रूप (Pattern of Component Units)—आयोग ने सिफारिश की कि पुनर्गठन के फलस्वरूप भारत संघ के अवयवी एककों के बीच वैधानिक असमानता समाप्त हो जानी चाहिए। इसका अभिप्राय यह था कि भाग (ख) राज्य भाग (क) राज्यों समान हो जायें और राजप्रमुख का पद समाप्त कर दिया जाये। शेष भाग (ग) राज्यों के सम्बन्ध में आयोग ने सिफारिश की कि या तो उन्हें पड़ोस के बड़े राज्यों में मिला देना चाहिए या जहाँ सुरक्षा अथवा अन्य महत्वपूर्ण कारणों से उनके ऊपर केन्द्र का निरीक्षण आवश्यक हो, तो उन्हें केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्रों के रूप में रखना चाहिए। इस तरह भारत संघ के निम्नलिखित अवयवी एकक होने चाहिए—

(1) “राज्य” (States) जो भारत संघ की संघात्मक इकाइयाँ हों; और

(2) “क्षेत्र” (Territories) जो केन्द्र द्वारा प्रशासित हों।

राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के आधार पर भारत सरकार ने 1956 में राज्य पुनर्गठन अधिनियम (States Reorganisation Act) पास किया। यह अधिनियम 1 नवम्बर, 1956 से लागू हो गया है। इस अधिनियम के अनुसार भारत में निम्नलिखित राज्य (States) और क्षेत्र (Territories) हैं।

राज्य (States)	क्षेत्र (Territories)
1. आन्ध्र प्रदेश	1. दिल्ली
2. आसाम	2. हिमाचल प्रदेश
3. बिहार	3. मनीपुर
4. बम्बई	4. त्रिपुरा
5. जम्मू और काश्मीर	5. अन्दमान और निकोबर द्वीप
6. मैसूर	6. लाकाडाइव तथा हिनिकोय द्वीप
7. केरल	
8. मध्य प्रदेश	
9. मद्रास	
10. उड़ीसा	
11. पंजाब	
12. राजस्थान	
13. पश्चिमी बंगाल	

क्षेत्रीय परिषदें और प्रादेशिक समितियाँ (Zonal Councils and Regional Committees)—नई योजना की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत पाँच क्षेत्रीय -परिषदों (Zonal Councils) की स्थापना की गई है। इन परिषदों में अन्तर्राज्य-विकास-योजनाओं पर विचार होगा। पंजाब और आन्ध्र प्रदेश में विधान-मण्डल की प्रादेशिक समितियों (Regional Committees) की स्थापना कर दी गई है। इन समितियों का उद्देश्य यह है कि वे सम्पूर्ण राज्य के संगठन के अन्तर्गत ही सम्बद्ध प्रदेशों अथवा अंचलों (Regions) की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करें।

भाग ‘क’ के राज्यों का शासन

२०. राज्यों की वैधानिक स्थिति (Constitutional Position of the States)

1935 के विधान के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य (Provincial autonomy under the Act of 1935)—1935 के भारतीय शासन-विधान में भारत के लिए एक संघीय संविधान का आयोजन किया गया था। उसके द्वारा भारतीय प्रान्तों की वैधानिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया गया था। 1935 के सुधारों ने

अनुसार प्रान्तीय सरकारों को वे ही अधिकार प्राप्त थे, जो केन्द्रीय सरकार उन्हें सौंपती थी। कुछ विषय प्रान्तीय कहलाते थे, किन्तु केन्द्रीय सरकार उन्हें घटा-बढ़ा सकती थी और गवर्नर-जनरल केन्द्रीय विधान-सभा को उनके बारे में भी कानून बनाने का अधिकार दे सकता था। इस प्रकार कुछ विकेन्द्रीकरण हो जाने पर भी केन्द्रीय सरकार ऐकिक (Unitary) ही रही। प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकारों के अभिकर्ता (Agents) मात्र थीं। 1935 के शासन-विधान से संघीय सिद्धान्त कार्यान्वित हुआ और प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त होकर उनकी वैधानिक स्थिति में परिवर्तन हो गया। इसका अर्थ था कि प्रान्तीय सरकारें अपने निश्चित क्षेत्र के अन्दर स्वतन्त्र हो गईं। उनकी सत्ता सर्वसत्ताधिकारिणी केन्द्रीय सरकार से नहीं, वरन् संविधान से प्रसृत होने लगी और संविधान के द्वारा केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का स्पष्ट विभाजन हो गया। प्रान्तीय सरकारों के अधिकारों को अब केन्द्रीय सरकार अपनी इच्छानुसार घटा-बढ़ा नहीं सकती थी। प्रान्तीय सरकारों को प्रान्तीय सूची में सम्मिलित विषयों में स्वतन्त्र विधायक कार्यपालक और वित्तीय (Legislative Executive and Financial) अधिकार प्राप्त हो गए, जो केवल विशेष परिस्थितियों में ही छीने जा सकते थे। विशेष परिस्थितियों के लिए प्रान्तीय स्वराज्य पर प्रतिबन्ध था और वैसी अवस्था में केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय विषयों पर भी नियन्त्रण रख सकती थी।

गणराज्य का संविधान और राज्य (States under the new Constitution)—गणराज्य के संविधान से भारत एक राज्य-संघ (Federation) बन गया है। उसमें संघ के सिद्धान्त अर्थात् केन्द्र और घटक (Constituent Units or States) प्रदेशों के बीच अधिकारों के विभाजन का अवलम्बन किया गया है। राज्यों को स्वशासित इकाइयाँ बना दिया गया है, वे अपने विषयों में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। परन्तु संविधान से संघ-सरकार को कुछ ऐसे अधिकार भी प्राप्त हैं, जिनसे वह राज्यों की सूची (List of States) में समाविष्ट विषयों पर भी कानून बना सकती है। यह व्यवस्था भारत को एक सबल राष्ट्र बनाने के लिए की गई है। इस प्रकार नया संविधान केन्द्रीयकरण तथा संघीयकरण (Centralisation and Federalisation) के बीच एक समझौता है। आगे चलकर हम राज्यों और संघ के सम्बन्धों का विस्तृत विश्लेषण करेंगे।

२१. संघ और राज्यों के बीच अधिकारों को विभाजन (Distribution of Powers between the Union and the States)

विषयों की सूचियाँ—सातवीं अनुसूची में दी हुई तीन सूचियों—संघ-सूची, राज्य-सूची और समवर्ती (Concurrent) सूची में विविध वैधानिक विषयों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। संघ-सूची में वे विषय हैं, जिन पर संघ-सरकार का एकाधिकार है, और जिनके बारे में केवल संघ-संसद् ही कानून बना सकती है। उसमें कुल 97 विषय हैं, जिनमें ये विषय सम्मिलित हैं—प्रतिरक्षा (Defence), वैदेशिक कार्य

(Foreign Affairs), नागरिकता (Citizenship), दशियकरण और विदेशी (Naturalisation and Aliens), प्रत्यर्पण (Extradition), रेल-पथ (Railways), राष्ट्रीय-पथ (National Highways), समुद्र-नौ-पथ (Shipping), वायु-पथ (Airways), डाक-तार (Post and Telegraph), चलार्थ (Currency), टंकण (Coinage), विदेशीय विनिमय (Foreign Exchange), विदेशीय ऋण (Foreign Loan), भारत का रक्षित (Reserve Bank of India) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार द्वारा संघटित लाटरी, विदेशों के साथ व्यापार-वाणिज्य, अन्तर्राज्यीय व्यापार-वाणिज्य, महाजनी (Banking), बीमा, जन-गणना, उच्च न्यायालयों का गठन तथा संगठन आदि ।

राज्य-सूची (The State List)—राज्य-सूची में 66 विषय हैं, जिनमें ये सम्मिलित हैं : सार्वजनिक व्यवस्था (Public Order) आरक्षक (Police), कारागार, स्थानीय शासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता, शिक्षा, कृषि, वन, मीन-क्षेत्र (Fisheries), उद्योग, राज्य-लोक-सेवाएँ आदि । राज्य-सूची में समाविष्ट विषयों पर कानून बनाने तथा प्रशासन का पूर्ण अधिकार राज्य सरकारों को है । केन्द्र-सरकार केवल संविधान में बताये हुए नियमों के अनुसार ही उनमें हस्तक्षेप कर सकती है ।

समवर्ती-सूची, समवर्ती-सूची का अर्थ, अवशिष्ट अधिकार और विषय-विभाजन का सिद्धान्त (The concurrent list its significance residuary powers and principle underlying the distribution)—समवर्ती (Residual Powers)—सूची में 47 विषय हैं, जिनमें से कुछ ये हैं—दंड-विधि (Criminal Law), दंड प्रक्रिया (Criminal Procedure), विवाह तथा विवाहविच्छेद, संविदाएँ (Contracts), व्यवहार-प्रक्रिया (Civil Procedure), व्यापारिक संघ (Trade Union), श्रमिकों का कल्याण, मूल्य-नियन्त्रण, कारखाने, आर्थिक तथा सामाजिक योजना बनाना, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, विजली, समाचार-पत्र, पुस्तकें और मुद्रणालय आदि । समवर्ती-सूची में ऐसे विषय हैं, जिन पर राज्य और केन्द्र दोनों ही सरकारें कानून बना सकती हैं । यदि दोनों के कानूनों में परस्पर विरोध हो तो केन्द्रीय सरकार का कानून ही मान्य होगा । ये तीनों सूचियाँ बहुत व्यापक हैं । फिर भी सम्भव है भविष्य में कोई ऐसा विषय निकल आया, जो किसी सूची में सम्मिलित न हो । ऐसे विषय का निर्णय कौनसी सरकार करेगी ? संविधान में कहा गया है कि अवशिष्ट विषयों का अधिकार (Residuary Power) केन्द्र-सरकार को रहेगा । अर्थात्, जो विषय राज्य-सूची अथवा समवर्ती-सूची में सम्मिलित नहीं हैं, वे सब संघ-सूची में सम्मिलित माने जायेंगे । विभिन्न विषयों को संघ, राज्य और समवर्ती सूची में विभक्त करने में जिस सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है वह वही है जो साधारणतः संघीय संविधानों का आधार माना जाता है । जिन विषयों का सम्बन्ध समग्र देश के साथ होता है, अर्थात् जिनका महत्त्व अखिल राष्ट्रीय होता है, या जिनमें समस्त देश में एक समान कानूनों तथा प्रशासन की आवश्यकता होती है, वे संघ सरकार के अधीन रखे गये हैं । जिन विषयों में भिन्न-भिन्न प्रदेशों के अनुसार भिन्न-

भिन्न प्रकार के कानूनों और प्रशासन की आवश्यकता होती है, उन्हें राज्यों के सुपुर्द किया गया है। समवर्ती-सूची में ये विषय रखे गये हैं, जो साधारणतः राज्य-सरकारों के ऊपर छोड़े जा सकते हैं। परन्तु यह आवश्यक समझा गया है कि जब कभी वे राष्ट्रीय महत्व के हो जायें तब केन्द्रीय सरकार उनकी व्यवस्था कर सके। तथापि यह स्पष्ट है कि अधिकारों के इस वितरण द्वारा केन्द्र को सबल बना दिया गया है। अवशिष्ट अधिकारों को केन्द्र के अधीन रखकर भी इसी लक्ष्य की सिद्धि की गई है। इस दृष्टि से भारत का संविधान अमरीकी संविधान की अपेक्षा कनाडा के संविधान से अधिक मिलता-जुलता है। अमरीका में संघ सरकार को कुछ विषय सौंपकर सब अवशिष्ट अधिकार राज्यों को सौंप दिए गए हैं।

राज्यों के विषयों में संसद् कब कानून बना सकती है ? (Conditions under which Union Government can legislate on State Subjects)—संघ सरकार को सबल बनाने की वृत्ति का एक प्रमाण यह भी है कि संघ को राज्यों के विषयों में भी कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। यह चार प्रकार से हो सकता है—(1) यदि राज्य परिषद् (The Council of States) प्रस्ताव स्वीकार करके घोषित कर दे कि राष्ट्रीय हित या आवश्यकता की दृष्टि से राज्यों की सूची में निहित किसी विषय पर संघ सरकार को कानून बनाना चाहिए, तो संघ-सरकार वैसा कर सकती है। ऐसे प्रस्ताव के स्वीकार होने के लिए उपस्थित सदस्यों में से दो-तिहाई का मत प्राप्त होना आवश्यक है। (2) यदि भारत के राष्ट्रपति आपात (Emergency) की उद्घोषणा द्वारा घोषित कर दें कि भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा युद्ध, बाह्य आक्रमण या आन्तरिक उपद्रवों से सकट में पड़ गई है, तो संघ की संसद् राज्य की सूची के किसी भी विषय में कानून बना सकेगी। यह स्थिति तब तक ही रहेगी, जब तक कि राष्ट्रपति की यह उद्घोषणा कायम रहे। (3) यदि कोई विषय राज्य-सूची में हो तो भी उससे सम्बन्धित संधियों या अन्तराष्ट्रीय अभिसमयों (Conventions) को कार्यान्वित करने के कानून संसद् ही बनायेगी। (4) यदि कोई दो राज्य अपनी विधान-सभाओं में प्रस्ताव स्वीकार करके संसद् को अधिकार प्रदान करें तो संसद् उनके लिए राज्य-सूची के किसी भी विषय में कानून बना सकती है।

२२. संघ और राज्यों के सम्बन्ध (Relations between the Union and the States)

राज्यों की स्वायत्ता की अपेक्षा केन्द्र की शक्ति पर ज्यादा बल (Emphasis on strength of the centre rather than on the autonomy of states)—हम यह ऊपर देख ही चुके हैं कि नये संविधान ने भारत को अर्द्ध-संघ (Quasi-Federation) बनाया है। भारत में दुहरी नागरिकता (Dual Citizenship) के बिना ही दुहरी शासन-प्रणाली (Dual Polity) स्थापित की गई है। हमारे संविधान में केन्द्र की शक्ति पर ज्यादा जोर दिया गया है। यह हमी नान से स्पष्ट है कि

अवयवी एककों अर्थात् राज्यों को न तो अपने संविधान बनाने अथवा बदलने की ही शक्ति दी गई है और न उन्हें संघीय विधानमण्डल (Federal Legislature) के उच्च सदन राज्य-सभा में समान प्रतिनिधित्व ही दिया गया है। संविधान इस बात की भी गारण्टी नहीं देता कि राज्यों का क्षेत्र अखण्ड रहेगा। ये सब हमारे संघ-शासन के असंघीय लक्षण (Unfederal Features) समझे जा सकते हैं। फिर भी, साधारण परिस्थितियों में राज्य पर्याप्त स्वायत्तता का उपभोग करते हैं। संघ जिन परिस्थितियों में राज्य की स्वायत्तता का अतिक्रमण कर सकते हैं, उनका संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दिया गया है। नीचे हम संक्षिप्त रूप से इस बात का वर्णन करेंगे कि विधायी प्रशासनिक और वित्तीय क्षेत्रों में भारत के राज्य कहाँ तक स्वायत्त हैं (Autonomous) और कहाँ तक उनकी इस स्वायत्तता पर केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण है।

संघ और राज्यों का विधायी सम्बन्ध (Legislative relations between Union and States)—जहाँ तक संघ राज्यों के विधायी सम्बन्धों का प्रश्न है, हम शक्तियों के तिहरे वितरण को पहले ही देख चुके हैं। संघ-सूची (Union List) में वे विषय सम्मिलित हैं, जिन पर संघ सरकार को पूरा अधिकार है। इन विषयों पर संघीय संसद् सारे देश के लिए अथवा उसके किसी भाग के लिए कानून बना सकती है। समवर्ती-सूची (Concurrent List) में वे विषय हैं जिन पर संघ सरकार और राज्य सरकारें दोनों ही कानून बना सकती हैं। लेकिन इसमें एक शर्त है और वह यह है कि यदि किसी समवर्ती विषय पर राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून उसी विषय पर संसद् द्वारा निर्मित कानून के प्रतिकूल पड़ता है, तो संसद् द्वारा निर्मित कानून अभिभावी होगा तथा राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून विरोध की यात्रा तक शून्य होगा। राज्य सूची में वे विषय सम्मिलित हैं जिन पर साधारणतः संघ नहीं, प्रत्युत राज्य कानून बना सकते हैं। लेकिन यहाँ भी राज्यों की विधायी स्वायत्तता पूर्ण या अनुलघनीय नहीं है। वह हम ऊपर कह चुके हैं कि यदि राज्य सभा दो-तिहाई बहुमत से यह घोषित कर दे कि राज्य सूची का अमुक विषय राष्ट्रीय महत्त्व का हो गया है, तो संसद् उस विषय के ऊपर कानून बना सकती है। अवशिष्ट शक्तियाँ (Residuary Powers) अर्थात् वे शक्तियाँ जिनका इन तीनों में से किसी भी सूची में उल्लेख नहीं है, संघ में विहित की गई हैं।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संविधान में शक्तियों का जो वितरण किया गया है, उसमें अन्तिमता अथवा निरपेक्षता नहीं है। बहुत से आलोचकों का कहना है कि यह स्थिति सच्चे संघात्मक सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। दूसरी ओर इसके समर्थन में कहा गया है कि भारत के शिशु राज्य को “आभ्यन्तरिक विप्लव अथवा बाहरी आक्रमण से बचाने के लिए शक्तिशाली केन्द्र सत्ता की आवश्यकता है। यह भी कहा गया है कि राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है, अतः राज्य सभा के इस संकल्प (Resolution) के बारे में कि संसद् राज्य विषय के ऊपर कानून बनाये यह कहा जा सकता है कि उसे राज्यों का भी समर्थन प्राप्त है।

राष्ट्रीय आपात (National Emergency) के समय में राज्यों की विधायी

स्वायत्तता को पूर्ण रूप से स्थगित किया जा सकता है। जब युद्ध या आन्तरिक अशान्ति अथवा इस तरह के युद्ध या अशान्ति के खतरे में राष्ट्रपति आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) निकाल देता है, तब संघीय संसद् को राज्य सूची के समस्त विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। पुनश्च, यदि राष्ट्रपति उद्घोषणा द्वारा यह कह दे कि किसी राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चल सकता, तब भी उस राज्य के सम्बन्ध में यही प्रभाव होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि पंजाब के सम्बन्ध में इसी तरह की कार्यवाही की गई थी।

संसद्, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों, रूढ़ियों (Conventions) अथवा समझौतों को पूरा करने के लिए अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में किये गये किसी निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए सारे भारत के लिए अथवा उसके किसी भाग के लिए कानून बना सकती है। यदि दो या दो से अधिक राज्य संसद् से इस बात की प्रार्थना करें कि वह किसी राज्य-विषय पर उनके लिए कानून बना दे, तो संसद् उस विषय पर कानून बना सकती है। बाद में ऐसे कानून का सशोधन या निरसन संसद् ही कर सकती है, न कि सम्बद्ध राज्यों के विधानमण्डल। अन्तः, संविधान ने निर्धारित किया है कि यदि राज्य का विधानमण्डल सम्पत्ति के उपार्जन (Acquisition) अथवा उच्च न्यायालयों की शक्तियों के न्यून (Reduction) के सम्बन्ध में कोई कानून पास करता है, तो वह तब तक अभिभावी नहीं हो सकता जब तक कि संसद् ने उस पर विचार न कर लिया हो और उस पर अपनी स्वीकृति न दे दी हो।

संघ और राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्ध (Administrative relations between the Union and the States)—अब हम संघ और राज्यों के प्रशासनिक सम्बन्धों की संक्षिप्त चर्चा कर सकते हैं। विधायन (Legislation) की भाँति ही संविधान ने संघ और राज्यों के अधिशासनिक क्षेत्रों (Executive Spheres) की भी स्पष्ट व्याख्या कर दी है। तथापि, संविधान में कुछ उपबन्ध ऐसे हैं जिनकी वजह से संघ राज्यों की अधिशासनिक सत्ता (Executive Authority) पर नियन्त्रण रख सकता है। “जोशी के शब्दों में संघ और उसके अवयवी एककों (Constituent Units) के बीच सशक्त प्रशासनिक सम्बन्ध है।” संविधान ने निर्धारित किया है कि प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का इस प्रकार प्रयोग होगा जिससे संसद् द्वारा निर्मित विधियों का पालन सुनिश्चित रहे और संघ की कार्यपालिका-शक्ति के प्रयोग में किसी प्रकार की बाधा न आने पाये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संघ-सरकार राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सकती है। संघ-सरकार राज्य को इस बात का भी निर्देश दे सकती है कि वह राष्ट्रीय राजपथों (National Highways) का निर्माण और उनकी रक्षा करे तथा अपने राज्यक्षेत्र में रेलों की व्यवस्था रखे। यह सही है कि इन निर्देशों के पालन में राज्यों को जो अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा, वह संघ सरकार देगी। यदि कोई राज्य संघ के निर्देशों का पालन नहीं कर सकता, तो राष्ट्रीय उद्घोषणा द्वारा यह घोषित कर सकता है कि अमुक राज्य का शासन संविधान के अनुसार नहीं चल सकता। इस उद्घोषणा के परिणामस्वरूप राज्य

का सम्पूर्ण प्रशासन सीधे संघ सरकार के नियन्त्रण में आ जाता है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यद्यपि संघ और राज्यों के अधिशासनिक क्षेत्र (Executive Spheres) स्पष्ट रूप से विभाजित हैं, फिर भी वे बिल्कुल अलग अलग नहीं हैं। बहुत सी स्थितियों में संघीय कानूनों को लागू करने का काम राज्यों के अधिशासनिक संगठन के ऊपर छोड़ दिया गया है। यह ठीक है कि संघ सरकार का अपना प्रशासनिक संगठन है। भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (Indian Administrative Services) का जाल सारे देश में फैला हुआ है। लेकिन, केन्द्रीय सरकार के अधिकारी राज्यों में कार्य करते हैं और जब वे संघीय कानूनों का कार्यान्वित करते हैं, उन्हें राज्य-सरकारों के भी कुछ आदेशों का पालन करना पड़ता है और इस तरह कुछ अंश तक वे राज्य सरकारों के नियन्त्रण में रहते हैं। हमारे शब्दों में हमारे देश का प्रशासनिक संगठन एक है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि यद्यपि साधारण परिस्थितियों में राज्य काफी हद तक प्रशासनिक स्वायत्तता का उपभोग करते हैं, लेकिन राष्ट्रीय संकट के समय में यह स्वायत्तता बिल्कुल स्थगित की जा सकती है।

संघ और राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध (Financial relations between the Union and the States)—संघ और राज्यों के वित्तीय सम्बन्ध भी प्रायः उसी तरह के हैं जिस तरह के कि विधायी और प्रशासनिक सम्बन्ध। वह संघ-शासन का एक मान्य सिद्धान्त है कि संघ एवं उसके अवयवी एकको (Component Units) के पास राजस्व (Revenue) के स्वतन्त्र स्रोत होने चाहिए और एकको के राजस्व के स्रोत इतने व्यापक होने चाहिए कि वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें। हमारे संविधान ने कुछ सीमा तक संघ और राज्यों के वित्तीय स्रोतों (Financial Resources) का विभाजन कर दिया है। लेकिन, यह विभाजन पूरा नहीं है। उदाहरण के लिए आयकर और तम्बाकू पर उत्पादन शुल्क जैसी आय की कुछ मदें ऐसी हैं जिन पर कर लगाना तथा उसे एकत्रित करना तो संघ का कार्य है, लेकिन जिसकी आय संघ एवं राज्यों के बीच बाँट दी जाती है। कुछ कर उदाहरण के लिए मुद्राक शुल्क तथा औषधीय और प्रसाधन सामग्री पर शुल्क लगाती तो केन्द्रीय सरकार है, लेकिन उनको इकट्ठा करने और बाँटने का काम राज्यों के हाथों में है। राज्यों के पास आय के विशिष्ट स्रोत हैं लेकिन कुछ के सम्बन्ध में वे संघ-सरकार का समर्थन होने पर ही कर लगा सकते हैं। अधिकांश राज्यों के वित्तीय स्रोत उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं और उन्हें केन्द्र के सहायता अनुदानों (Grants-in-aid) के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। नये संविधान में वित्तीय स्रोतों का वितरण बहुत कुछ 1935 के भारत सरकार अधिनियम के ऊपर आधारित है। अतः, संविधान में कह दिया गया है कि संविधान के प्रारम्भ होने के 2 वर्ष के अन्दर एक वित्त आयोग की स्थापना होगी और उसके प्रति पाँचवें वर्ष एक नया बिल आयोग बनेगा जो केन्द्र और राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों के बारे में राष्ट्रपति के पास सिफारिशें भेजेगा। संविधान के इसी उपबन्ध के अनुसार राष्ट्रपति ने 30 नवम्बर, 1951 को श्री के. सी. नियोगी की अध्यक्षता में प्रथम वित्त आयोग (Finance Commission) की नियुक्ति

की थी। इस आयोग ने 31 दिसम्बर, 1952 को अपना प्रतिवेदन उपस्थित किया। वित्त आयोग की मुख्य सिफारिश यह थी कि यद्यपि राज्य सरकारों के संसाधनों में वृद्धि करने की काफी आवश्यकता है, लेकिन केन्द्र को भी उनकी निरन्तर सहायता करते रहना चाहिए। श्री के. सन्थानम् की अध्यक्षता में नियुक्त दूसरा वित्त आयोग अभी अपना कार्य कर रहा है।

२३. राज्यपाल (Governor)

नियुक्ति, कार्यकाल और वेतन (Appointment tenure and emoluments of the Governor)—संविधान में कहा गया है कि राज्य का सम्पूर्ण कार्य-चालक अधिकार राज्यपाल (Governor) को रहेगा और सब कार्यवाहियाँ औपचारिक रूप में इसके ही नाम पर की जायेंगी। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति करेंगे और वह तब तक पद आरूढ़ रहेगा जब तक कि राष्ट्रपति उसे कार्यविरत न करे। इस शर्त के अनुसार उसका कार्यकाल पाँच वर्ष होगा। कोई ऐसा व्यक्ति राज्यपाल नहीं हो सकता जो भारत का नागरिक न हो और वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण न कर चुका हो। राज्यपाल रहते हुए वह किसी अन्य पद द्वारा धन उपार्जन नहीं कर सकता। वह संसद् अथवा राज्य विधान सभा के किसी सदन का सदस्य भी नहीं रह सकता। यदि संसद् अथवा राज्य विधान सभा का कोई सदस्य राज्यपाल नियुक्त कर दिया जाए। उसकी सदस्यता निशेष मानी जायेगी और राज्यपाल का स्थान ग्रहण करने के दिन से उसका स्थान रिक्त समझा जायेगा। उसे पद ग्रहण करने के पूर्व प्रतिज्ञान की शपथ (Oath of Affirmation) लेनी पड़ेगी। जब तक संसद् भिन्न व्यवस्था नहीं करती तब तक उसे 5,500 रुपये मासिक वेतन, बिना भाड़े का सरकारी भवन, और निश्चित यात्रा-भत्ता आदि मिलेगा, जिससे वह अपने कर्तव्य का पालन पर्याप्त सुविधा तथा प्रतिष्ठा के साथ कर सके।

२४. राज्यपाल के अधिकार (Powers of the Governor)

संविधान द्वारा राज्यपाल को बहुत से अधिकार प्रदान किये गये हैं, जिन्हें चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—(1) कार्यपालक (Executive), (2) विधायक (Legislative), (3) वित्तीय (Financial); और (4) न्यायपालक (Judicial)।

कार्यपालक अधिकार (Executive Powers)—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राज्य का सम्पूर्ण कार्यपालक अधिकार राज्यपाल को दिया गया है और उसे इस अधिकार का प्रयोग प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के द्वारा, संविधान के अनुसार, करना होगा। राज्यपाल के कार्यपालक अधिकार उन सब विषयों के प्रशासन से सम्बन्ध रखते हैं, जो राज्य-सूची में सम्मिलित हैं और जिन पर राज्य की विधान-सभा कानून बना सकती है। समवर्ती-सूची के विषयों में राज्यपाल के कार्यपालक अधिकार राष्ट्रपति के कार्यपालक अधिकारों के अधीन हैं। राज्य का सम्पूर्ण शासन राज्यपाल के नाम पर किया जाता है।

विधि निर्माणक अधिकार (Legislative Powers)—अपने विधि-निर्माणक अधिकारों के बल पर राज्यपाल राज्य की विधान-सभा को आमन्त्रित कर सकता है, किसी भी सदन का सत्तावसान (Prorogation) कर सकता है, या विधान सभा को विघटित कर सकता है। यदि राज्य में द्विसदनीय विधानमण्डल है तो वह विधान-परिषद् (Legislative Council) के लिए कुछ सदस्यों का नाम-निर्देशन (Nominate) भी कर सकता है। वह विधानमण्डल के किसी भी सदन या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में भाषण कर सकता है। प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में वह विधान-सभा निम्न-सदन के समक्ष या यदि दो सदन हों तो दोनों की संयुक्त बैठक में भाषण कर सकता है। यह भाषण वैसा ही है, जैसा कि ब्रिटिश संसद् में राजा का होता है। अपने भाषण में राज्यपाल विधि-निर्माण के उस कार्यक्रम की रूपरेखा बताता है, जो सरकार विधान-सभा के द्वारा पूर्ण कराना चाहती है। राज्य की विधान-सभा द्वारा स्वीकृत प्रत्येक विधेयक (Bill) पर, उसके कार्यान्वित होने के पूर्व, राज्यपाल के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। राज्यपाल को अधिकार है कि वह उस पर हस्ताक्षर करे या न करे, या उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए प्रेषित कर दे। वह धन-विधेयक (Money Bill) को छोड़कर शेष सब बिल विधान-सभा को पुनर्विचार के लिए भेज सकता है, किन्तु यदि विधान-सभा दुबारा उन्हें स्वीकार कर ले तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर कर देना होगा। राज्य की विधान-सभा में राज्यपाल की सिफारिश के बिना कोई धन-विधेयक पेश नहीं किया जा सकता है।

अध्यादेश जारी करने का अधिकार (Ordinance making Powers)—संविधान राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार प्रदान करता है। यदि राज्यपाल को विश्वास हो जाय कि अविलम्ब कोई कार्रवाई करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं और विधान-सभा का अधिवेशन जारी नहीं है, जिससे कि कोई कानून स्वीकार कराया जा सके, तो वह अपने अधिकार का प्रयोग करके अध्यादेश (Ordinance) जारी कर सकता है। अध्यादेश एक विशेष और अस्थायी उपाय होता है, जो उस समय की परिस्थितियों का प्रबन्ध करने के लिए विधान-सभा की अनुमति के बिना कार्यपालक प्रमुख द्वारा जारी किया जाता है। अध्यादेश में वही बल होता है, जो विधान-सभा (Legislative Assembly) द्वारा स्वीकृत कानून में किन्तु वह विधान-सभा का अधिवेशन आरम्भ होने से 6 सप्ताह में या, यदि विधान-सभा उसे अस्वीकार कर दे तो, उसके पहले ही समाप्त हो जाता है। कुछ विषयों में राष्ट्रपति के निर्देश के बिना राज्यपाल अध्यादेश जारी नहीं कर सकता।

वित्तीय अधिकार (Financial Powers)—प्रत्येक वित्तीय (Financial) वर्ष के आरम्भ होने के पूर्व राज्यपाल मन्त्रियों द्वारा विधान-सभा के सामने “वार्षिक वित्तीय वक्तव्य” (Annual Financial Statement) पेश कराता है, जिसमें आगामी वर्ष के आय-व्यय का अनुमान बताया जाता है। राज्यपाल की सिफारिश के बिना राज्य की आय के किसी भाग को व्यय करने का अधिकार नहीं माँगा जा सकता। व्यवहार में इसका अर्थ यह होता है कि केवल मन्त्री ही, जो राज्यपाल के नाम पर

काम करते हैं, राज्य की विधान सभा से शासन का कार्य चलाने के लिए राज्य की आय को खर्च करने का अधिकार माँग सकते हैं।

न्यायपालक अधिकार (Judicial Power Immunities)—राज्यपाल को कुछ न्यायपालक के (Judicial) अधिकार भी होते हैं। वह जिला जजों तथा अन्य न्यायाधिकारियों की नियुक्ति, स्थान निर्देश तथा तरक्की आदि का निर्णय कर सकता है। उसे न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमा करने, उनका दण्ड बदलने या घटाने का अधिकार है। उसके कार्यकाल में उसके विरुद्ध कोई फौजदारी या दीवानी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

२५. राज्यपाल अपने अधिकारों का प्रयोग कैसे करता है ? (How does the Governor exercise his powers ?)

वह मन्त्रियों के परामर्श से काम करेगा (He will act on the advice of his Ministers)—यदि राज्यपाल ऊपर बताये हुए सब अधिकारों का प्रयोग स्वयं और स्वेच्छानुसार करे तो वह बहुत शक्तिशाली हो जायगा। परन्तु संविधान में स्पष्ट कर दिया गया है कि उसके अधिकार वास्तविक नहीं, केवल नाममात्र के लिए हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से वह सब कार्यपालक कार्रवाइयों का कर्ता है, परन्तु वास्तव में वह अपनी इच्छा के अनुसार कोई कार्रवाई नहीं करता। संविधान में कहा गया है कि “जिन बातों में राज्यपाल को अपने ही विवेक से काम करने का अधिकार है, उन्हें छोड़कर शेष बातों में उसे सहायता तथा मन्त्रणा देने के लिए मन्त्रियों की एक परिषद् होगी। परन्तु साधारण परिस्थितियों में राज्यपाल अपनी इच्छानुसार कोई काम नहीं कर सकता। केवल आसाम के राज्यपाल को कतिपय सीमापर्वी और जन-निहित क्षेत्रों (Frontier and Tribal Areas) का प्रशासन अपने विवेक के अनुसार करने का अधिकार है। ऐसा इसलिए किया गया है कि उसे इन क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में करना होगा। राज्यपाल को मुख्य मन्त्री की नियुक्ति, राज्य की विधानसभा को बुलाने उसका सत्तावसान (Prorogation) करने और उसे विघटित (Dissolve) करने और राज्य में संविधान के भंग हो जाने की घोषणा करने का अधिकार है। परन्तु संविधान के प्रत्यक्ष व्यवहार में इन विषयों में से किसी में भी उसे वास्तविक स्वतन्त्रता न होगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि साधारण परिस्थितियों में राज्यपाल को मन्त्रियों के परामर्श से ही काम करना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मामले में निर्णय करने का अधिकार मन्त्रियों को ही है, यद्यपि वे राज्यपाल के नाम पर सब कार्यवाई करते हैं।

वैधानिक शासक (The Governor is a constitutional ruler)—दूसरे शब्दों में, संविधान राज्यपाल को वैधानिक (Constitutional) शासक या राज्य के नामाचार के मुखिया की स्थिति प्रदान करता है। कनाडा तथा आस्ट्रेलिया के राज्यों के राज्यपालों के समान भारतीय राज्यपालों की स्थिति भी नामाचार के शासक की है। निस्सन्देह संविधान में स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि राज्यपाल

को प्रत्येक अवस्था में मन्त्रियों का परामर्श स्वीकार करना ही होगा; परन्तु उत्तरदायी शासन-प्रणाली में साधारणतः उसे मन्त्रियों का परामर्श मानना ही पड़ता है। उत्तरदायी शासन में कार्यपालक अधिकार मन्त्रियों द्वारा प्रयुक्त होता है और वे संयुक्त रूप से विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। दूसरे शब्दों में, वे नब तक ही सत्कार्ड रहते हैं, जब तक कि उन्हें विधान-सभा के सदस्यों का बल प्राप्त रहता है। विधान-सभा के सदस्य जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं, जिसका अर्थ यह हुआ कि मन्त्रिगण अन्ततः जनता के प्रति उत्तरदायी हैं। यदि वे अपने अधिकार का दुरुपयोग करें या विधान-सभा के सदस्यों को अस्वीकार्य ढंग से काम करें तो वे पदच्युत किये जा सकते हैं। दूसरी ओर राज्यपाल अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होता। वह जो कुछ भी करता है उस सबका उत्तरदायित्व मन्त्रियों पर होता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि जिन पर उत्तरदायित्व हो उन्हें अधिकार भी हो। राज्यपाल पर कोई वास्तविक उत्तरदायित्व नहीं होता इसलिए उसे कोई वास्तविक अधिकार भी नहीं होता। यह संसदीय शासन का मूल सिद्धान्त है, जो ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया तथा कनाडा आदि में प्रचलित है। संविधान के निर्माताओं का भारतीय राज्यपालों को केवल नामचार के शासक बनाने का उद्देश्य स्पष्ट मालूम होता है। संविधान के प्रथम प्रारूप में कहा गया था कि राज्यपाल का चुनाव जनता के मतों से किया जाय। परन्तु इसे बदलना आवश्यक हुआ और अन्त में निश्चय किया गया कि उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति करें। ऐसा महसूस किया गया कि निर्वाचित राज्यपाल वास्तविक अधिकार ग्रहण करके राज्य का वास्तविक शासक बन सकता है। इससे एक बहुत बड़ा विरोध उत्पन्न हो जाने का भय था; क्योंकि मन्त्रियों से मतभेद होने पर वह मन्त्रियों के विरुद्ध जनता से अपील कर सकता। इधर, संसदीय शासन का तत्त्व (Principle of parliamentary government) है कि वास्तविक कार्यपालिका (Executive) और नामचार के प्रमुख के बीच कभी भी संघर्ष नहीं होना चाहिए। ऐसी स्थिति में नाम-निर्देशित (Nominated) राज्यपाल अधिक उपयुक्त है, क्योंकि वह मन्त्रियों की, जो जनता के प्रतिनिधि हैं और उससे ही बल प्राप्त करते हैं, कभी अवहेलना न करेगा। यदि वह मन्त्रियों का परामर्श मानने से इनकार करे तो स्वाभाविक है कि मन्त्री त्यागपत्र दे देंगे। यदि विधान-सभा का उन पर विश्वास हो तो राज्यपाल को दूसरे मन्त्री नहीं मिलेंगे। इससे संविधान भंग हो जायगा। बुद्धिमान राज्यपाल ऐसी कठिन स्थिति उत्पन्न नहीं होने देगा।

किन परिस्थितियों में मन्त्रिमण्डल से परामर्श करना आवश्यक नहीं है ?

(Circumstances under which the Governor will not have to act on the advice of his Ministers)—कुछ समीक्षकों का कथन है कि विधान-सभा के लिए विसंगटन के लिए दिये गए मन्त्रिमण्डल के परामर्श की जैसी असाधारण परिस्थितियों में राज्यपाल स्वविवेक से काम ले सकेगा। अर्थात् वह मन्त्रिमण्डल का परामर्श तो लेगा, किन्तु आवश्यक नहीं कि उसका पालन करे। परन्तु यह बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। कुछ निर्दिष्ट परिस्थितियों में राज्यपाल राष्ट्रपति के आदेश मानने के

बाध्य है और उस हद तक उसका मन्त्रिमण्डल से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि राष्ट्रपति आपात (Emergency) की घोषणा कर दें तो राज्यपाल राष्ट्रपति का प्रतिनिधि बन जाता है और उनके आदेश के अनुसार कार्य करता है, मन्त्रिमण्डल के परामर्श के अनुसार नहीं। यही स्थिति उस समय होगी, जब कि राष्ट्रपति 356वीं धारा के अनुसार किसी राज्य का शासन अपने हाथों में ले लें, जैसा कि पंजाब में हुआ था। ऐसी स्थिति में मन्त्रिमण्डल को विघटित कर दिया जायगा और राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में राज्य का शासन स्वयं करेगा। यह एक असाधारण अधिकार है। यह हमें 1935 के भारतीय-शासन-विधान की कुख्यात 93वीं धारा का स्मरण कराता है। इस धारा की व्यवस्थाओं की अतीत के साम्राज्यवादी शासन के भग्नावशेष के रूप में बड़ी आलोचना की गई है। यह कहा जा सकता है कि राज्यपालों को जो स्वविवेक के अधिकार दिये गए हैं उनके कारण राज्यों को पूर्ण उत्तरदायी शासन प्राप्त नहीं हुआ।

२६. ब्रिटिशकालीन गवर्नर से तुलना (Comparison with the Pre-Independence Governor)

ब्रिटिश काल में प्रान्तीय गवर्नर नामचार का शासक नहीं, वरन् शासनाधिकार का मुख्य भोक्ता (Pivot) होता था। 1935 के भारतीय-शासन विधान के अंतर्गत भी उसे बहुत से स्वविवेकाधिकार प्राप्त थे और वह बहुत सी कार्रवाइयाँ मन्त्रिमण्डल से परामर्श किए बिना ही कर सकता था। विभाजन के पूर्व भारत में कॉंग्रेसी सरकारों ने यह आश्वासन प्राप्त कर लिया था कि राज्यपाल अपने विवेकाधिकारों का प्रयोग न करेंगे। फिर भी औपनिवेशिक स्वराज्य (Provincial Autonomy) रहने से सब प्रान्तीय शासनो पर राज्यपालों का बहुत नियन्त्रण रहा और कोई-कोई राज्यपाल समय-समय पर बड़ी निरकुशता के साथ उसका प्रयोग करते रहे। बंगाल के मुख्य मन्त्री श्री फजलुल हक को त्यागपत्र देने के लिए बाध्यप्राय कर दिया गया और उन्होंने दैनिक शासन में राज्यपाल के निरन्तर हस्तक्षेप की गम्भीर शिकायतें की। सिन्ध के गवर्नर ने बहुत उन्मादपूर्वक प्रधान मन्त्री खान बहादुर अलाबख्श को पदच्युत कर दिया था। भारत गणराज्य के संविधान में भी राज्यपालों को बहुत स्वविवेकाधिकार दिए गए हैं, किन्तु इनमें और उन अधिकारों में 3 महत्त्वपूर्ण भेद हैं। पहला, वे अधिकार ब्रिटिशकालीन गवर्नरों के अधिकार से बहुत कम हैं। दूसरा, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने में राज्यपाल की राष्ट्रपति के, जो कि भारत के राष्ट्रीय प्रजातन्त्रीय और उत्तरदायी शासन के प्रमुख हैं, आदेश के अनुसार काम करना होगा। फलतः, इसका अर्थ यह होगा कि जब राज्यपाल अपने मन्त्रि-परिषद् के परामर्श से काम न करेगा तो उसे अप्रत्यक्ष रूप से संघीय मन्त्रिमण्डल के परामर्श पर चलना होगा। तीसरे, संविधान का स्पष्ट निर्देश यह है कि साधारण परिस्थितियों में राज्यपाल नामचार का ही शासन रहे। 1935 के भारतीय शासन विधान में यह बात नहीं थी। इसके द्वारा गवर्नर को महत्त्वपूर्ण अधिकार देकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुख्य उपकरण

बनाया गया था ।

२७. मन्त्रि-परिषद् (The Council of Ministers)

नियुक्ति की प्रक्रिया (Procedure for Appointment)—संविधान की धारा 163 के अनुसार राज्यपाल को सहायता तथा परामर्श देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् (Council of Ministers) होगी, जिसका प्रमुख मुख्य मन्त्री रहेगा । यह मन्त्रि-परिषद् केवल उसी हालत में सहायता और परामर्श न देगी, जब कि राज्यपाल को संविधान के अनुसार स्वविवेक से काम करने की आवश्यकता हो । संविधान में मन्त्रि-परिषद् की नियुक्ति के लिए यह प्रक्रिया निश्चित की गई है : मुख्य मन्त्री को राज्यपाल चुनेगा । ऐसा करने में वह इस बात का निश्चय कर लेगा जिस व्यक्ति को मुख्य मन्त्री बनाया जाना है, वह विधानमण्डल में इतना पर्याप्त प्रभाव रखता है कि उसकी बनाई सरकार टिक सके । अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति मुख्य मन्त्री की सिफारिश पर राज्यपाल करेगा । सब मन्त्रियों का राज्य विधानमण्डल का होना आवश्यक है । यदि कोई व्यक्ति सदस्य नहीं है तो उसे मन्त्री नियुक्त किया जा सकता है, किन्तु 6 महीने के अन्दर यदि वह सदस्यता प्राप्त न कर ले तो वह पद-विरत हो जायगा । राज्यपाल ही मुख्य मन्त्री की सिफारिश पर मन्त्रियों के बीच विभागों का बँटवारा करेगा । संविधान में मन्त्रि-मण्डलों के कलेवर (Size) का निर्देश नहीं किया गया, किन्तु यह कहा गया है कि बिहार, उड़ीसा, आसाम और मध्य-प्रदेश में एक-एक मन्त्री जन-जातियों (Tribes) अनुसूचित जातियों (Schedule Castes) तथा अन्य पिछड़ी हुई जातियों के मंगल-कार्य का उत्तरदायी होना चाहिए ।

राज्यपाल के साथ सम्बन्ध (The relation with the Governor)—मन्त्रि-मण्डल राज्य का वास्तविक कार्यपालक होता है । यद्यपि प्रशासन-कार्य राज्यपाल के नाम पर होता है, अधिकांश निर्णय मन्त्रिमण्डल ही करता है । साधारण परिस्थितियों में राज्यपाल को उसके परामर्श पर ही काम करना पड़ता है । मुख्य मन्त्री का कर्तव्य होता है कि वह राज्यपाल को राज्य के प्रशासन और प्रस्तावित कानूनों के बारे में सूचनाएँ दे और इनके बारे में वह सब जानकारी प्रदान करे, जो राज्यपाल माँगे । यदि कोई एक मन्त्री किसी विषय में कोई निर्णय करे तो राज्यपाल उसे सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल के विचारार्थ पेश कर सकता है । इस प्रकार राज्यपाल का अधिकार है कि वह सब बातों से परिचित रखा जाय । वह अपने मन्त्रियों को उनके उन कार्यों के बारे में परामर्श, प्रोत्साहन और चेतावनी भी दे सकता है, जो वे करना चाहते हो । परन्तु यदि एक बार मन्त्रिगण कोई निश्चय कर लें तो उसे उनके निश्चय को स्वीकार कर लेना पड़ता है । फिर भी कुछ ऐसी परिस्थियाँ होती हैं, जिनमें राज्यपाल मन्त्रियों के परामर्श के बिना काम कर सकता है । आसाम का राज्यपाल जन-जातीय (Tribal) तथा कुछ सीमाप्रान्तीय (Frontier) क्षेत्रों में ऐसा ही करता है । राज्य के बंधानिक तन्त्र के असफल हो जाने पर भी राज्यपाल ऐसा ही करता है ।

संविधान के अनुसार मन्त्रिगण तब तक ही पदारूढ़ रह सकते हैं, जब तक कि राज्यपाल पसन्द करे । इसका अर्थ यह हो सकता है कि राज्यपाल यदि चाहे तो

मन्त्रियों को पद-विरत कर सकता है। परन्तु जैसा कि हम कह चुके हैं, ऐसा कार्य उत्तरदायी शासन की भावना तथा परम्पराओं के विपरीत होता है। अतएव यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से राज्यपाल को यह अधिकार है, फिर भी यह व्यवहार में कभी नहीं आ सकता। उदाहरणार्थ, ब्रिटिश राजा किसी भी परिस्थिति में तब तक मन्त्रिमण्डल को भंग नहीं कर सकता, जब तक कि मन्त्रिमण्डल को संसद् का विश्वास प्राप्त रहता है। इसी प्रकार, कोई राज्यपाल भी संयुक्त उत्तरदायित्व के मामले में किसी एक मन्त्री को पद-विरत नहीं कर सकता; क्योंकि एक मन्त्री को पद-विरत करने का अर्थ सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को भंग कर देना होगा।

विधान-सभा से सम्बन्ध (Their relation with the legislature)—संविधान में यह कहकर मन्त्रिमण्डल का तथा विधान-सभा का सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया गया है कि मन्त्रिमण्डल मयुक्त रूप से विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी है अर्थात् वह तब तक ही पदार्हूत रह सकता है, जब तक कि विधान-सभा के बहुसंख्यक सदस्यों का विश्वास उस पर कायम हो। मन्त्रियों का विधान-सभा का सदस्य होना आवश्यक है। उन्हें उसकी बैठक तथा कार्यवाइयों में शामिल होने का अधिकार है। वे ही राज्यपाल के नाम पर अर्थ-विधेयक (Money Bills) पेश कर सकते हैं। वे ही सरकार की ओर से अन्य विधेयक भी पेश कर सकते हैं।

राज्य की विधान-सभा अनेक तरीकों से मन्त्रियों के काम की देख-रेख तथा नियन्त्रण कर सकती है। सदस्यगण जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न तथा पूरक प्रश्न पूछ सकते हैं। बजट पर वाद-विवाद के समय जनता की शिकायतों पर प्रकाश डाल सकते हैं। मन्त्रियों की गलतियों को प्रकाशित करने के लिए कार्य-स्थान प्रस्ताव (Adjournment Motion) पेश कर सकते हैं। संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त के आधार पर सभा सरकारी प्रस्तावों को अस्वीकार करके, मन्त्रियों का विरोध होने पर भी उसमें संशोधन करने या प्रत्यक्ष अविश्वास का प्रस्ताव स्वीकार करके मन्त्रिमण्डल को हटा सकती है। सक्षेप में, उसे मन्त्रिमण्डल बनाने तथा भंग करने का अधिकार प्रदान किया गया है। दूसरी ओर मन्त्रिगण भी विधान-सभा को प्रभावित तथा नियन्त्रित कर सकते हैं। वे उस दल के नेता होते हैं, जिसका संख्या-बल सभा में अधिक रहता है। इस संख्या-बल के कारण वे किसी भी प्रस्ताव को सभा से स्वीकार करा सकते हैं। यदि दल का अनुशासन कठोर और उसका संख्या-बल पूर्ण तथा स्पष्ट हो तो मन्त्रिमण्डल विधान-सभा का उपयोग केवल प्रस्ताव को दर्ज करने वाले कार्यालय के समान कर सकते हैं। सभा उसी समय मन्त्रिमण्डल को उसकी गद्दी से हटा सकती है, जब कि मन्त्रिमण्डलीय दल का संख्या-बल कम हो, या निर्भर करने योग्य सुदृढ़ न हो, या दल में गम्भीर मतभेद हो।

राज्य-विधान-सभा

(The State Legislature)

२८. विधान-सभा के सदन (Legislature Houses)

एक सदनीय व द्वि-सदनीय विधान-सभा (Unicameral and Bi-cameral)

state legislature) — प्रथम अनुसूची के भाग 'क' (Part 'A' of the first schedule) के प्रत्येक राज्य में एक विधान सभा होगी। जिसमें राज्यपाल और एक या दो सदन (Houses) होंगे। संविधान के अनुसार 9 राज्यों—मध्य-प्रदेश, मैसूर, जम्मू तथा काश्मीर, मद्रास, बम्बई, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब में द्वि-सदनीय (Bi-cameral) विधान-सभा होंगी। अन्य राज्यों में एक ही सदन होगा। जहाँ दो सदन होंगे वहाँ निम्न-सदन (Lower House) को विधान-सभा (Legislative Assembly) और उच्च-सदन या द्वितीय सदन को विधान-परिषद् (Legislative Council) कहा जायगा। जहाँ एक ही सदन होगा, वहाँ उसे विधान-सभा कहा जायगा।

२६. विधान-सभा (The Legislative Assembly)

संघटन (Composition), वयस्क मताधिकार (Adult Suffrage), सुरक्षित स्थान (Reservation of seats for certain classes), सदस्यता की अर्हताएँ (Qualification for Members), तथा विधानसभा की अवधि (Life of the Council)— किसी राज्य की विधान-सभा में 500 से अधिक और 60 से कम सदस्य न होंगे। प्रत्यक्ष संख्या का निर्णय भारत-संघ की ससद् करेगी, जिसका आधार यह सिद्धान्त होगा कि 75 हजार लोगो के पीछे एक से अधिक सदस्य न हो। पंजाब की विधान-सभा के 154 सदस्य हैं। इन सदस्यों का चुनाव सार्वजनीन वयस्क मताधिकार के अनुसार प्रत्यक्ष होगा। इसका अर्थ यह है कि 21 वर्ष या इससे अधिक की आयु का प्रत्येक नागरिक मतदाता होगा। यदि कोई उस क्षेत्र का निवासी न हो, पागल हो या अपराधों, भ्रष्टाचार अथवा गैर-कानूनी कामों में कारावास का दण्ड प्राप्त करने के कारण इस अधिकार से वंचित हो गया हो तो उसे मतदाता न बताया जायगा। संविधान ने साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली (Communal Electorate) को उन्मूलित कर दिया है। अतएव सब चुनाव संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली (Joint Electorate) के आधार पर होंगे। परन्तु प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में कतिपय अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के लिए विशेष व्यवस्था कर दी गई है। धारा 332 में कहा गया है कि प्रथम अनुसूची के भागों में सम्मिलित राज्यों की विधान सभाओं में (1) अनुसूचित जातियों (Schedule Castes) तथा (2) अनुसूचित जन-जातियों (Schedule Tribes) के लिए (जिनमें आसाम के जन-जातीय क्षेत्रों की जन-जातियाँ सम्मिलित न होंगी) स्थान सुरक्षित रहेंगे। आसाम की विधान-सभा में राज्य के स्वशासिक जिलों के लिए स्थान सुरक्षित रहेंगे। संविधान में आंग्ल-भारतीय (Anglo-Indian) जनता के लिए भी विशेष व्यवस्था की गई है। यदि किसी राज्य का राज्यपाल महसूस करे कि वहाँ की विधान-सभा में इस समाज के पर्याप्त प्रतिनिधि नहीं हैं तो वह उसके उतने सदस्यों के नाम-निर्देशित (Nominate) कर सकता है, जितनों को वह उचित समझे। ये विशेषाधिकार संविधान के आरम्भ होने से 10 वर्ष तक ही रहेंगे।

संविधान में राज्य-विधान-सभा के चुनाव के उम्मीदवारों के लिए ये अर्हताएँ

(Qualifications) निश्चित की गई हैं—(1) वह भारत का नागरिक हो; (2) वह 25 वर्ष से कम आयु का न हो, (3) उसमें राज्य-विधान-सभा द्वारा निर्धारित अन्य अर्हताएँ हों। संविधान में वे शर्तें भी स्पष्ट कर दी गई हैं, जिनके आधार पर किसी व्यक्ति को विधान-सभा की सदस्यता की उम्मीदवारी के लिए अनर्ह (Disqualified) घोषित किया जा सकता है वे शर्तें हैं—(1) भारत-सरकार अथवा किसी राज्य-सरकार के अधीन कोई लाभ का पद प्राप्त होना, जब तक कि उस पद को राज्य-विधान-सभा ने कानून द्वारा चुनाव के लिए अबाधक घोषित न कर दिया हो, (2) मानसिक वृद्धिमानता और (3) दिवालियापन आदि। राज्य-विधान सभा अपने सदस्यों में से दो को अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष (Speaker and Deputy Speaker) निर्वाचित करती है। यदि जल्दी भंग न कर दी गई तो विधान-सभा की कार्यवाधि उसकी प्रथम बैठक के दिन से 5 वर्ष की होगी। ससद् को अधिकार है कि यदि आपात-काल (Emergency) की घोषणा कर दी गई हो तो वह किसी भी विधान-सभा की अवधि बढ़ा दे; किन्तु ऐसा एक बार में एक वर्ष से अधिक के लिए नहीं किया जा सकता। किसी भी हालत में घोषणा के समाप्त होने के दिन से 6 मास से अधिक उसकी बढ़ी हुई अवधि जारी नहीं रह सकती।

३०. विधान-परिषद् (Legislative Council)

संघटन (Composition)—किसी द्वि-सदनीय राज्य की विधान-परिषद् की सदस्य संख्या विधान-सभा के सदस्यों की एक चौथाई से अधिक न होगी। फिर भी, यह निश्चित कर दिया गया है कि उसकी सदस्य संख्या 40 से कम न होगी। पंजाब-विधान-परिषद् की कुल संख्या 40 है। यदि संसद् कानून द्वारा दूसरी व्यवस्था न करे तो विधान-परिषद् का संघटन इस प्रकार होगा—(1) एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन स्थानिक संस्थाएँ करेंगी; (2) बारहवाँ भाग विश्व-विद्यालय के स्नातक चुनेंगे। (3) बारहवाँ भाग शिक्षक चुनेंगे; जिन्हें कम-से-कम तीन वर्ष तक ऐसी शिक्षा-संस्थाओं में काम कर लेने के पश्चात् ही इस क्षेत्र में मतदान का अधिकार होगा जो माध्यमिक (Secondary) श्रेणी से कम की न हों; (4) एक-तिहाई का चुनाव विधान-सभा उन लोगों में से करेगी जो विधान-सभा के सदस्य नहीं हैं; (5) शेष छठे अंश का नाम-निर्देशन राज्यपाल करेगा और वह ऐसे व्यक्तियों को लेगा जो साहित्य, विज्ञान, कला सहकारी-आन्दोलन, सार्वजनिक सेवा आदि का विशेष ज्ञान तथा अनुभव रखते हों। विधान-परिषद् के सब चुनाव एकल सक्मणीय मत (Single Transferrable Vote) की प्रणाली से अनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के आधार पर किये जायेंगे।

सदस्यता की अर्हताएँ (Qualification for Members)—विधान-परिषद् के सदस्यों की अर्हता यह निश्चित की गई है—उम्मीदवार (1) भारत का नागरिक होना चाहिए, (2) उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो; और (3) उसमें वे सब अन्य अर्हताएँ हों जो राज्य विधान-सभा द्वारा निर्धारित की गई हों। विधान-सभा की

सदस्यता के लिए निर्धारित अनर्हीकरण (Disqualification) के नियम विधान-परिषद् की सदस्यता के लिए भी लागू होंगे ।

परिषद् का कार्यकाल (Life of the Council)—राज्य की विधान परिषद् (Legislative Council) एक सभापति (Chairman) और अपने सदस्यों में से ही एक उप-सभापति (Deputy Chairman) चुनती है । विधान परिषद् स्थायी सदन है । उसका विघटन नहीं होता । विधान परिषद् के सदस्य छ. वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं और तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष हट जाया करते हैं ।

विधान परिषदों का निर्माण और अन्त (Abolition and Creation of Legislative Councils)—संविधान के अनुच्छेद 169 ने ससद् को यह शक्ति दी है कि वह ऐसे राज्य में जहाँ विधान-परिषद् नहीं है उसके निर्माण के लिए और ऐसे राज्य में जहाँ विधान-परिषद् है, उसका अन्त करने के लिए कानून बना सकता है यदि उस राज्य की विधान सभा इस आशय का प्रस्ताव सभा की समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत से तथा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की संख्या के दो-तिहाई से अग्र्यून बहुमत से पास कर दे । इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि यदि ससद् किसी राज्य की विधान परिषद् के निर्माण या अन्त के लिए कोई कानून पास करती है, तो उसे संविधान का संशोधन नहीं समझा जायेगा ।

राज्य विधानमण्डल के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार और विमुक्तियाँ (Privileges and immunities of members of the State Legislature)—राज्य विधानमण्डल के सदस्य को कुछ विशेषाधिकार (Privileges) और विमुक्तियाँ (Immunities) दी गई हैं । संविधान में कहा गया है कि जब तक राज्य का विधान-मण्डल इस तरह के विशेषाधिकारों और विमुक्तियों का निरूपण नहीं करता, तब तक ये वही होंगी जिनका ब्रिटिश कॉमन-सभा के सदस्य उपभोग करते हैं । इस तरह, सदस्य सदन की या उसकी किसी समिति की कार्यवाही में चाहे कुछ भी बोले या उसमें किसी भी तरह मतदान दे या विधानमण्डल द्वारा प्रकाशित किसी प्रतिवेदन में कुछ भी लिखे, किसी न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती । राज्य विधान-मण्डल का प्रत्येक सदस्य ऐसे वेतन (Salaries) और भत्ते (Allowances) प्राप्त करता है जो विधानमण्डल समय-समय पर निर्धारित करता है ।

राज्य विधानमण्डल के सत्र (Sessions of the State Legislature)—राज्य विधानमण्डल के सदन या सदनो को यथास्थिति राज्यपाल (Governor) आहूत करता है । उनका वर्ष में कम से कम दो बार समवेत होना आवश्यक है । उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की बैठक के लिए नियुक्त तारीख के बीच छ. मास का अन्तर नहीं होना चाहिए । इस उपबन्ध के अधीन रहते हुए राज्यपाल समय-समय पर सदन या सदनो को आहूत कर सकता है, उनका सत्रावसान और विधान सभा का विघटन कर सकता है । यदि किसी राज्य में विधान परिषद् (Legislative Council) हो तो राज्यपाल उसका विघटन नहीं कर सकता, क्योंकि वह स्थायी सदन है । राज्यपाल प्रत्येक सदन के प्रारम्भ में विधान सभा के सम्मुख

तथा यदि राज्य का विधानमण्डल द्वि-सदनात्मक है तो दोनों सदनों के सम्मुख अभिभाषण दे सकता है। राज्यपाल सत्र की अवधि में जब ठीक समझे, दोनों सदनों के सम्मुख संयुक्त रूप से या अलग-अलग भाषण दे सकता है। इसके अतिरिक्त वह जिस सदन को चाहे संदेश भेज सकता है।

३१. राज्यविधान मण्डल की शक्तियाँ और उसके कृत्य (Powers and Functions of the State Legislature)

विधायी शक्तियाँ (Legislative Powers)—प्रत्येक राज्य के विधानमण्डल को राज्य सूची में प्रणालित समस्त विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है। लेकिन, इस शक्ति पर तीन शर्तें लगी हुई हैं। साधारण परिस्थितियों में राज्य विधानमण्डल की यह शक्ति असीम और अमर्यादित है। लेकिन, यदि राज्य सभा (संघीय विधानमण्डल का उच्च सदन) दो-तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पार कर दे कि राज्य-सूची में प्रणालित अमुक विषय राष्ट्रीय महत्व का है, तो संसद् को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जायेगा। दूसरे, यदि राष्ट्रपति ने आपात की उद्घोषणा निकाल दी है, तो वह राज्य-सूची के किसी भी विषय पर कानून बनाने के लिए संसद् को प्राधिकृत कर सकता है। राज्य विधानमण्डल समवर्ती-पूची (Concurrent List) के विषयों पर भी कानून बना सकता है। लेकिन, इन विषयों पर संसद् को भी कानून बनाने का अधिकार है। यदि किसी समवर्ती विषय पर राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून उसी विषय पर संसद् द्वारा निर्मित कानून के विरुद्ध है, तो संसद् द्वारा निर्मित कानून, चाहे वह उसके अधिनियम (Enactment) के पहले या पीछे पास हुआ हो, अभिभावी होगा और राज्य के विधानमण्डल द्वारा निर्मित कानून विरोध की मात्रा तक शून्य होगा। लेकिन यदि किसी समवर्ती विषय से सम्बद्ध राज्य के कानून के ऊपर, उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की अनुमति मिल गई है, तो वह उसी विषय के ऊपर पास किये गये संघीय कानून के ऊपर अभिभावी होगा। इसके अतिरिक्त राज्य के विधानमण्डल को राज्य के उच्च न्यायालय (High Court) के निर्माण अथवा पुनर्निर्माण की शक्ति प्राप्त है। पुनश्च, वह कानून के द्वारा राज्य के लिए मुख्य लेखा-परीक्षक (Auditor-in-chief) की नियुक्ति की व्यवस्था कर सकता है।

वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)—राज्य का विधानमण्डल राज्य के वित्त पर भी नियन्त्रण रखता है। यदि राज्य का विधानमण्डल द्वि-सदनात्मक है, तो विधान सभा की स्थिति ऊँची होती है। राज्य के राजस्वों पर भारित व्यय¹ के अलावा

1. अनुच्छेद 502 के खड (इ) में कहा गया है कि निम्नलिखित व्यय राज्य की संचित निधि पर भारित होगा—(क) राज्यपाल की उपलब्धियाँ और भत्ते तथा उसके पद से सम्बन्धित व्यय, (ख) अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते तथा यदि राज्य का विधानमण्डल द्वि-सदनात्मक हुआ, तो परिषद् के सभापति और उप-

जिस पर राज्य का विधानमण्डल वाद-विवाद कर सकता है, पर मतदान नहीं दे सकता, समस्त व्यय प्रस्तावों का अनुदान माँगों (Demands for Grants) के रूप में विधान-सभा के सम्मुख उपस्थित किया जाना अनिवार्य है। विधान सभा माँग को स्वीकार या अस्वीकार या उसकी राशि को कम कर सकती है। वह किसी अनुदान माँग को बढ़ा नहीं सकती। इस तरह विधान सभा की सहमति के बिना कोई भी कर नहीं लगाया जा सकता। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि नये विधान के अधीन राज्य के विधान मण्डलों को जो वित्तीय शक्तियाँ दी गई हैं, वे उन वित्तीय शक्तियों से व्यापक हैं जिनका प्रान्तीय विधानमण्डल 1935 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935) के अन्तर्गत उपभोग करते थे। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रायः 80% बजट ऐसा था, जिस पर विधानमण्डल मत नहीं दे सकता था। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्यपाल विधानमण्डल द्वारा अस्वीकृत माँगों को भी प्रमाणीकृत कर सकता था। अब किसी राज्य के राज्यपाल को यह अधिकार नहीं है।

कार्यपालिका के ऊपर नियन्त्रण (Control over the Executive)—नये संविधान ने केन्द्र और राज्यों दोनों स्थानों में संसदीय शासन-प्रणाली (Parliamentary system of Government) की स्थापना की है। फलतः, राज्य की वास्तविक कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रि-परिषद् (Council of Ministers) को सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी बना दिया गया है। इस तरह राज्य का विधानमण्डल मन्त्रि-परिषद् के ऊपर नियन्त्रण और निरीक्षण रख सकता है। यदि विधान सभा मन्त्रि-परिषद् के ऊपर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे, तो मन्त्रि-परिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हम मन्त्रि-परिषद् और राज्य विधानमण्डल के सम्बन्धों का विवेचन करते हुए ऊपर कह चुके हैं, विधानमण्डल के सदस्य प्रश्नों, बजट के वाद-विवादों तथा स्थगन-प्रस्तावों (Adjournment Motions) के द्वारा शासन की गलतियों को जनता के सामने ला सकते हैं।

३२. राज्य विधानमण्डल के दोनों सदनों में सम्बन्ध (Relations between the two houses of a State Legislature)

धन-विधेयकों के सम्बन्ध में (In regard to money bills)—द्वि-सदनात्मक विधानमण्डल वाले राज्य में निम्न-सदन अर्थात् विधान सभा को मूर्धन्य (Pre-ement) स्थान दिया गया है। वित्तीय मामलों में उसे ही पूरी और अंतिम सत्ता प्राप्त सभापति के भी वेतन और भत्ते, (ग) ऋण व्यय, (घ) उच्च न्यायालय के वेतन और भत्ते, (ङ) न्यायालय के किसी निर्णय या आज्ञापति को पूरा करने के लिए आवश्यक धन, (च) अल्प व्यय जिसे संविधान या राज्य के विधानमण्डल ने विधि द्वारा इस तरह भारित घोषित किया हो। अनुच्छेद 229, 291 और 322 ने घोषित किया है कि निम्न व्यय भी राज्य की संचित निधि पर भारित होगा, (छ) उच्च न्यायालय का प्रशासनिक व्यय, (ज) देशीय नरेशों की प्रिवीपर्स के लिए ऐसा धन जिसे राष्ट्रपति निर्धारित करे, (झ) राज्य लोक सेवा आयोग का व्यय।

है। धन विधेयक के लिए यह आवश्यक है कि वह विधान सभा में ही पुरःस्थापित किया जाये। जब इस तरह का विधेयक सभा द्वारा पास कर दिया जाता है, तब वह विधान परिषद् के पास भेजा जाता है। परिषद् के पास भेजे जाने के 14 दिन के पश्चात् वह विधेयक चाहे इस बीच में परिषद् ने उसे पास किया हो या न किया हो, राज्यपाल की स्वीकृति मिल जाने पर कानून बन जाता है। इसके अतिरिक्त अनुदान-मांगों (Demands for grants) पर केवल विधान सभा ही मत दे सकती है।

धन-विधेयकों को छोड़ कर अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में (Bills other than money bills)—धन विधेयकों को छोड़कर अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में भी विधान सभा विधान परिषद् की अपेक्षा अधिक शक्तियों का उपभोग करती है। संविधान के अनुच्छेद 197 ने धन विधेयकों से अन्य विधेयकों के सम्बन्ध में विधान परिषद् की शक्तियों के ऊपर कड़े प्रतिबन्ध लगाये हैं। यदि विधान परिषद् वाले राज्य की विधान सभा द्वारा धन विधेयक से किसी अन्य विधेयक के पास किये जाने तथा विधान परिषद् के पास पहुँचाये जाने के पश्चात्—

(क) विधेयक परिषद् द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, अथवा

(ख) परिषद् के समक्ष विधेयक रखे जाने की तारीख से उसके द्वारा विधेयक के पास किये जाये बिना तीन मास से अधिक समय व्यतीत हो जाता है, अथवा

(ग) परिषद् द्वारा विधेयक ऐसे संशोधनों (Amendments) सहित पास किया जाता है जिनसे सभा सहमत नहीं होती तो विधान सभा विधेयक को उसी या किसी आगामी सत्र में परिषद् द्वारा प्रस्तावित संशोधनों सहित या रहित, पुनः पास कर सकती है और इस प्रकार पास किये गये विधेयक को विधान परिषद् तक पहुँचा सकती है। यदि विधान सभा द्वारा विधेयक के इस प्रकार दुबारा पास किये जाने तथा विधान परिषद् तक पहुँचाये जाने के पश्चात्—

(क) विधेयक परिषद् द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, अथवा

(ख) परिषद् के समक्ष विधेयक को रखे हुए एक मास व्यतीत हो जाता है और इस बीच में परिषद् विधेयक को पास नहीं करती, अथवा

(ग) परिषद् विधेयक को ऐसे संशोधनों सहित पास करती है, जिनसे सभा सहमत नहीं होती, तो विधेयक राज्य के विधानमण्डल के दोनों सदनों द्वारा उस रूप में पास किया समझा जायेगा जिसमें कि वह विधान सभा द्वारा दूसरी बार पास किया गया था।

प्रशासन के ऊपर नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध में (Control over Administration)—राज्य की कार्यपालिका का नियन्त्रण विधान सभा के हाथ में रखा गया है और यदि किसी राज्य में द्वितीय सदन है, तो विधान परिषद् सूचना आदि प्राप्त करने के अलावा इस शक्ति में कोई हिस्सा नहीं रखती। संविधान ने मन्त्रि-परिषद् को सामूहिक रूप से अकेले विधान सभा के प्रति उत्तरदायी बनाया है। दूसरे शब्दों में, विधान परिषद् नहीं प्रत्युत विधान सभा ही मन्त्रि-परिषद् को अपदस्थ (Remove from office) कर सकती है।

३३. राज्य के विधानमण्डल की शक्तियों पर प्रतिबन्ध (Restrictions on the Powers of State Legislature)

कतिपय विधेयकों पुरःस्थापना के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक (Presidents sanction is necessary for the introduction of certain bills)—यह स्पष्ट है कि नया संविधान राज्य विधानमण्डल को उन शक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तियाँ देता है जिनका प्रान्तीय विधानमण्डल 1935 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935) के अधीन उपभोग करते थे। साधारण परिस्थितियों में वे अपने निश्चित क्षेत्र में कभी-कभी प्रभुत्व सम्पन्न हैं, लेकिन उनकी क्षमता के ऊपर लगाये गये कुछ प्रतिबन्ध हमारे संविधान की एकात्मक भावना को प्रकट करते हैं। पहली बात यह कि कुछ विधेयक राष्ट्रपति की पूर्व मजूरी के बिना राज्य के विधानमण्डल में पुरस्थापित नहीं किये जा सकते। उदाहरण के लिए यह शर्त उन विधेयकों के ऊपर लागू है जो राज्य के भीतर या दूसरे राज्यों के साथ वाणिज्य व्यापार और समागम की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाते हैं। (अनुच्छेद 304)। दूसरे, राज्य विधानमण्डल द्वारा पास किये गये कुछ विधेयक उस समय तक प्रभावी नहीं हो सकते जब तक की वे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित किये जाने के पश्चात् उसकी स्वीकृति न प्राप्त कर लें। इस श्रेणी में ये विधेयक आते हैं— (1) राज्य द्वारा सम्पत्ति के अर्जन से सम्बद्ध विधेयक (अनुच्छेद 31), समवर्ती मामलों से सम्बद्ध वे विधेयक जो संसद् के वर्तमान कानूनों के प्रतिकूल पड़ते हैं (अनुच्छेद 254)। दूसरे (ख) वे विधेयक जो संसद् द्वारा समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक घोषित की गई वस्तुओं के त्रय या विक्रय पर कर लगाते हैं (अनुच्छेद 286)।

तीसरे संविधान ने संसद् को राज्य सूची के विषयों के ऊपर भी कानून बनाने की शक्ति दी है। यदि राज्य सभा उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों की दो-तिहाई से अन्यून सख्या द्वारा समर्थित प्रस्ताव द्वारा यह घोषित कर दे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या इष्टकर है कि संसद् को राज्य-सूची में प्रमाणित विषयों के ऊपर कानून बनाना चाहिए, तो संसद् उन विषयों के ऊपर कानून बना सकती है (अनुच्छेद 249)। लेकिन यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस उपबन्ध के अधीन पास किये गये कानून केवल कुछ समय तक के लिए ही चालू रहेंगे। चौथे, राष्ट्रपति द्वारा निकाली गई आपात की उद्घोषणा (Proclamation of Emergency) के प्रवर्तन काल में संसद् राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है। यदि किसी राज्य का राज्यपाल यह उद्घोषणा निकाल दे कि राज्य का शासन संविधान के उपबन्धों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तब भी यही परिणाम होता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति घोषणा कर सकता है कि राज्य के विधानमण्डल की शक्तियाँ संसद् के अधिकार के द्वारा या अधीन प्रयुक्त की जायेंगी। पाँचवें, राज्यपाल की स्वविवेकी शक्तियाँ (Discretionary Powers) भी राज्य के विधानमण्डल की क्षमता के ऊपर प्रतिबन्ध हैं। यदि किसी विषय के बारे में राज्यपाल अपने विवेक के अनुसार आचरण करता है, तो वह विषय विधानमण्डल के क्षेत्राधिकार के बाहर रहता है। इसी तरह,

आसाम का विधानमण्डल जो भी कानून पास करता है, वे आसाम के अनुसूचित क्षेत्रों और जनजाति क्षेत्रों (Tribal Areas) के ऊपर तब तक लागू नहीं हो सकते जब तक कि वहाँ का राज्यपाल ऐसा निश्चय न करे। इसमें ज्ञात होता है कि राज्य की कार्यपालिका राज्य की व्यवस्थापिका के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी नहीं है।

३४. विधायी प्रक्रिया (Legislative Procedure)

विधेयक और अधिनियम (Bills and Acts)—राज्य के विधानमण्डल का मुख्य कार्य राज्य के प्रशासन के संचालन के लिए कानून बनाना है। सभी कानून विधानमण्डल में विधेयकों (Bills) के रूप में पुर.स्थापित किये जाते हैं। वे अधिनियम तभी बनते हैं जबकि समस्त विहित स्तरो को पार कर लेते हैं और उन पर राज्यपाल की स्वीकृति मिल जाती है। राज्य के विधानमण्डल को अपनी प्रक्रिया के नियम स्वयं बनाने की शक्ति प्राप्त है। जब तक ऐसे नियम नहीं बन पाते, तब तक ऐसे नियम चलेगें जो कि संविधान के प्रारम्भ के समय राज्य विधानमण्डल के तत्स्थानी प्रान्तीय विधानमण्डल में प्रचलित थे। हाँ, उनमें विधान सभा का अध्यक्ष अथवा विधान परिषद् का सभापति यथास्थिति आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकता है।

विधेयक किस तरह अधिनियम बनता है (How a bill becomes an Act)—विधेयक अनेक प्रकार के होते हैं—उदाहरण के लिए धन विधेयक (Money Bills), अविन्तीय सरकारी विधेयक (Non-financial Government Bills) और गैर सरकारी विधेयक (Non-official Bills), इन सभी विधेयकों को पास करने की अलग-अलग प्रक्रिया होती है। लेकिन, साधारण रूप से हम कह सकते हैं कि एक विधेयक अधिनियम बनने के पूर्व निम्नलिखित स्तरों को पार करता है। पहला स्तर विधेयक की पुर.स्थापना (Introduction) है। जो सदस्य (A minister in case of Government Bills) विधेयक प्रस्तावित करना चाहता है, उसे इस बारे में एक महीने की अधिसूचना देनी होती है। पुर.स्थापना के लिए निश्चित की गई तारीख को वह अपने स्थान पर खड़ा हो जाता है, और विधेयक पुर.स्थापित करने के लिए सदन की अनुमति माँगता है। वह कहता है, “मैं विधेयक पुर.स्थापित करने की अनुमति चाहता हूँ।” तत्पश्चात् वह विधेयक का शीर्षक पढ़ देता है। यदि उपस्थित और मतदान देने वाले सदस्यों का बहुमत विधेयक का समर्थन करता है, तो समझा जाता है कि विधेयक प्रस्तावित हो गया। इसके बाद विधेयक सरकारी गजट में प्रकाशित होता है। सरकारी विधेयक के लिए यही पर्याप्त होता है कि वह सरकारी गजट में छप जाये। उसके लिए औपचारिक पुर.स्थापना (Detailed Introduction) की आवश्यकता नहीं होती। विधेयक की पुर.स्थापना के बाद उसके प्रथम वाचन (First Reading) के लिए एक तारीख निश्चित कर दी जाती है। इस तारीख को विधेयक का भारसाधक सदस्य प्रस्ताव करता है कि विधेयक का प्रथम वाचन हो। इस स्तर पर विधेयक के सामान्य सिद्धान्तों का ही विवेचन होता है। विशेष खण्डों या व्योरे की बातों पर कोई चर्चा नहीं होती। विधेयक की पुर.स्थापना और उसका प्रथम वाचन एक ही दिन हो सकते हैं। प्रथम वाचन पार कर लेने के बाद विधेयक को या तो

जनमत जानने के लिए घुमाया जा सकता है या उसे प्रवर समिति (Select Committee) को सौंपा जा सकता है। विधेयक को लोकमत के लिए घुमाने का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि उसके पास करने में विलम्ब कर दिया जाये (हिन्दू कोड बिल (Hindu Code Bill) जैसे विवादास्पद विधेयकों के सम्बन्ध में इस पद्धति को अपनाना उपयोगी होता है)। प्रवर समिति में विधानमण्डल के 25 से लेकर 30 तक सदस्य होते हैं। प्रवर समिति विधेयक की एक-एक धारा पर गम्भीरतापूर्वक विचार करती है। इस स्तर पर विधेयक में संशोधन उपस्थित किये जा सकते हैं। जब समिति विधेयक का परीक्षण कर चुकती है, वह सदन के सम्मुख एक प्रतिवेदन उपस्थित करती है। इस प्रतिवेदन में यदि कोई संशोधन होते हैं, तो उनका भी उल्लेख रहता है। प्रतिवेदन स्तर के बाद विधेयक को प्रस्तुत करने वाला सदस्य प्रस्ताव करता है कि विधेयक पर द्वितीय वाचन (Second Reading) हो। द्वितीय वाचन में सदन विधेयक की एक-एक धारा पर विचार करता है, संशोधनों पर वाद-विवाद करता है और मतदान देता है। प्रक्रिया यह है कि यदि विधेयक की किसी धारा के सम्बन्ध में कोई संशोधन उपस्थित किया जाता है, तो सबसे पहले संशोधन पर मत लिया जाता है और फिर मूल धारा पर। यदि विधेयक द्वितीय वाचन को भी पार कर लेता है, तो उसका तृतीय वाचन (Third Reading) होता है। इस स्तर पर विधेयक के सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन होता है। विधेयक की भाषा में केवल यत्र-तत्र कुछ शाब्दिक परिवर्तन करने वाले संशोधनों की ही अनुमति दी जाती है। सामान्य वाद-विवाद के बाद विधेयक पर मतदान होता है। यदि राज्य का विधानमण्डल द्वि-सदनात्मक है, तो जिस सदन में विधेयक प्रारम्भ हुआ था, उसमें पास होने के पश्चात् वह दूसरे सदन में जाता है। उसमें भी उसे ये सारे स्तर पार करने पड़ते हैं। जब विधेयक (एक सदन या दोनों सदनों में यथास्थिति) सभी आवश्यकता स्तर पार कर लेता है, तब वह राज्यपाल के पास उसकी स्वीकृति के लिए जाता है। यह हम पहले कह ही चुके हैं कि राज्यपाल विधेयक पर अपनी स्वीकृति दे सकता है, उसे विधानमण्डल के पास पुनर्विचार के लिए वापिस भेज सकता है या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ संरक्षित रख सकता है। जब विधेयक पर संविधान के उपबन्धों के अनुसार राज्यपाल या राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है, तब वह विधेयक अधिनियम बन जाता है और उसे संविधान पुस्तक (Statute Book) में स्थान मिल जाता है।

३५ संघीय क्षेत्रों का प्रशासन (Administration of Union Territories)

राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (States Reorganisation Act, 1956) — के अनुसार हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, मनीपुर और त्रिपुरा के संघीय क्षेत्रों के सुचारु प्रशासन के लिए मन्त्रणा समितियों (Advisory Committees) की स्थापना की गई है। उन समितियों का मुख्य प्रयोजन यह है कि इन प्रदेशों के शासन-प्रबन्ध में जनता का भी कुछ हाथ रहे। सरकार (1) राज्य क्षेत्र में आने वाले विषयों के प्रशासन

की नीति के साधारण प्रश्नों, (2) क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाले विधायी प्रस्तावों; और (3) क्षेत्रों के वार्षिक वित्त विवरणों से सम्बन्ध रखने वाले मामलों के ऊपर इन मन्त्रणा समितियों से सलाह-मशवरा करती रहती है।

1956 के क्षेत्रीय परिषद् अधिनियम (Territorial Council's Act 1956) ने हिमाचल प्रदेश, मनीपुर और त्रिपुरा के संघीय क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय परिषदों (Territorial Councils) की व्यवस्था की है। ये परिषदें तथा दिल्ली के लिए प्रस्तावित निगम (Corporation) सार्वभौम वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) के आधार पर चुने जायेंगे और स्थानीय मामलों के प्रबन्ध के लिए उत्तरदायी होंगे। वे एक निर्वाचित अध्यक्ष की अधीनता में कार्य करेंगे और उन्हें उप-विधियाँ (Bye-Laws) बनाने की शक्ति होगी। इन क्षेत्रों से राज्य सभा के लिए जो प्रतिनिधि चुने जायेंगे, उनका निर्वाचन भी वही करेंगे।

३६. अन्दमान और निकोबर द्वीप (Andaman and Nicobar Islands)

अन्दमान और निकोबर द्वीपों का शासन राष्ट्रपति अपने द्वारा नियुक्त किये जाने वाले मुख्य आयुक्त (Chief Commissioner) या अन्य अधिकारी के द्वारा करता है। राष्ट्रपति ऐसे क्षेत्र में शान्ति और सुशासन के लिए तथा संसद् द्वारा निर्मित किसी कानून का अथवा किसी वर्तमान कानून का जो उस पर लागू है, निरसन या संशोधन करने के लिए विनियम (Regulation) बना सकता है।

प्रश्न

1. नये संविधान के अनुसार केन्द्र और राज्यों में विधायी तथा प्रशासनीय सम्बन्ध बताइये ?
2. केन्द्र तथा राज्यों में नये संविधान के अनुसार क्या सम्बन्ध है, इस पर व्याख्या करें।
3. नये संविधान के अनुसार राज्यपाल के क्या कृत हैं ?
4. संसद् में एक विधेयक कैसे पारित होता है ? (P.U. 1957)
5. राज्यपाल तथा मन्त्रिमण्डल में क्या सम्बन्ध है ? (P.U. 1957)
6. सक्षिप्त से राज्य परिषद् की बनावट का वर्णन और इसकी राज्य विधान सभा के विशेष अधिकारों तथा शक्तियों से तुलना करो।
7. किस तरह राज्य की विधान सभा राज्य के वित्त पर नियन्त्रण रखती है ?
8. अपने राज्य की विधान परिषद् की बनावट का वर्णन करो, क्या इसकी राज्य में कोई आवश्यकता है ?
9. संघ और राज्यों में शक्तियों के बटवारे का वर्णन करो।
10. ए. बी. सी. तथा डी. राज्यों का अन्तर अब क्यों समाप्त कर दिया गया है ? अब भारत में कौन-कौन से राज्य स्थापति किये गये हैं ?

Questions

1. How are the subjects of legislation and administration distributed between the Centre and the States under the new Constitution ?
2. Examine the relations between States and the Centre under the new Constitution.
3. Examine the powers and position of the Governor of a State.
4. Describe the stages through which a bill must pass before it becomes an act of State Legislature (P U 1957)
5. What is the relation of the Governor of a State with his council of Ministers ? (P U. 1957)
6. Describe briefly but carefully the composition of the Legislature Council of a state and compare its powers and functions with those of the Legislative Assembly of a State.
7. How does the Legislative Assembly of your State control the finances of the State ?
8. Describe the composition and the utility of Legislature Council of your State
9. What do you know about the distribution of legislature powers between the Union and Units in India ?
10. What has made the Government of India to do away with A, B, C, and D kinds of States of India. What new States have come in the view ?

अध्याय ५

प्रशासन में नागरिकों का योग

(Citizens' Share in Administration)

(मताधिकार और निर्वाचन)

(Franchise and Elections)

३७. नागरिकों और सरकार में सम्बन्ध (Relations between Citizens and Government)

लोकतन्त्र में नागरिक सरकार का निर्माण व नियन्त्रण करते हैं (Under democracy citizens create and control the Government)—लोकतन्त्रीय देशों में सरकार को समस्त बल जनता से प्राप्त होता है। लोकतन्त्र समग्र राष्ट्र को प्रभुत्व प्रदान करता है। व्यवहार में इस प्रभुत्व का प्रयोग अपेक्षाकृत एक छोटा समूह करता है, जिसे सरकार या शासनतन्त्र आदि नामों से पुकारा जाता है। लिंकन की प्रसिद्ध व्याख्या के अनुसार, प्रजातन्त्रीय शासन “जनता के, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन” को कहा जाता है। वर्तमान राष्ट्र-राज्यों में जनता का सीधे अपने हाथों राज्य-कार्य करना सम्भव नहीं है (जो प्राचीनकाल में रोम आदि के नगर राज्यों में सम्भव था)। इसलिए जनता का प्रत्यक्ष कार्य इतना ही रह गया है कि वह शासनतन्त्र या सरकार का निर्माण और नियन्त्रण करे। इस शक्ति का प्रयोग वह अपने मताधिकार के उपयोग द्वारा करती है। लोकतन्त्रीय राज्य की सरकार जनता के प्रतिनिधियों से बनती है, जिन्हें जनता निर्वाचित करती है। इस प्रकार नागरिकों का मन उस शक्ति का प्रतीक है, जिससे सरकार का निर्माण तथा नियन्त्रण होता है। इससे स्पष्ट है कि यदि देश की सरकार जनता की इच्छा से बनाई जाती है तो उसका निर्माण सार्वजनीन वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) के आधार पर होना चाहिए—मताधिकार में स्त्री-पुरुष, वर्ग, सम्पत्ति, धर्म, शिक्षा अथवा जाति-पाँति का भेद नहीं हो सकता।

जनता को भाषण व समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता होती है (People enjoy freedom of speech and press)—निस्सन्देह, केवल मताधिकार इस बात का प्रमाण नहीं है कि सरकार पर नागरिकों का वास्तविक तथा सतत् नियन्त्रण रहता है। सार्वजनीन वयस्क मताधिकार का प्रचार हिटलर-कालीन जर्मनी और मुसोलिनी-कालीन इटली जैसे तानाशाही राज्यों में भी रहा है। परन्तु वहाँ के प्रशासन पर जनता का कोई प्रभाव नहीं था, क्योंकि जनता को भाषण तथा पत्रों की स्वतन्त्रता

नहीं थी। व्यवहार में वह सरकार की नीति और कार्रवाइयों की आलोचना नहीं कर सकती थी, भले ही सरकार कितने ही उत्पीड़क तरीके से शासन क्यों न करती हो। उसे हर प्रकार के प्रचार द्वारा यह शिक्षा दी जाती थी कि शासकों के प्रति वफादार रहना उसका परम कर्तव्य है और सच्ची स्वतन्त्रता शासकों के आदेशों का पूरी तरह पालन करने में ही निहित है। उन देशों के पत्र पूर्णतया सरकार के अधीन थे। जनता की स्वतन्त्रता तथा उसके अधिकारों की आवाज उठाने के बदले वे सरकार के मुखपत्रों का काम करते थे। इस प्रकार वहाँ की जनता के पास सरकारी नीति के प्रति अपनी नापसन्दगी व्यक्त करने का कोई साधन नहीं था। सरकार का थोड़ा भी विरोध किया जाता तो विरोधियों को निर्दयतापूर्वक कुचल दिया जाता था।

लोकतन्त्र में चित्र दूसरा ही होता है। जनता को सरकारी कामों की रचनात्मक आलोचना का पूर्ण अधिकार होता है। जनता शान्तिमय विरोधी दल का संगठन करती है और वैधानिक उपायो से सरकार को बदल भी सकती है। समाचार-पत्रों को सरकार की दुर्बलताएँ व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है और वे जनता के सच्चे मुखपत्र तथा उसके अधिकारों के संरक्षक के रूप में चल सकते हैं।

३६. ब्रिटिश शासन में भारत की स्थिति (The Case in India under British Rule)

आरम्भ में जनता शासन पृथक् (Complete dissociation of the people from the administration in early stages)—अभी हाल तक ही भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद से जकड़ा हुआ एक पराधीन देश रहा है। ब्रिटिश शासनकाल में देश का राज्य कार्य न तो जनता का, न जनता द्वारा और न जनता के लिए ही था। वास्तव में देश के शासन में जनता का कोई हाथ नहीं था। विदेशी शासक कानून बनाते थे और जनता से पूछे बिना ही उसका शासन करते थे। परन्तु थोड़े ही दिनों में देश में असन्तोष उत्पन्न होने लगा और जनता में राजनीतिक जागृति फैल गई। 1857 का स्वतन्त्रता-संग्राम गोरे शासकों के लिए एक भारी चेतावनी के रूप में प्रस्तुत हुआ। उन्होंने महसूस किया कि जनता को शासन से पूर्णतया पृथक् रखना उसके लिए जितना बुरा है, उतना ही शासकों के लिए भयावह है। फलतः, विधान-सभाओं की रचना की गई, परन्तु वे लोकतन्त्रीय नहीं थी क्योंकि उनमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं जाते थे।

स्वराज्य का आन्दोलन (The Nationalist struggle for Swaraj)—1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। वह राष्ट्रवादियों की स्वतन्त्र-आकांक्षाओं का पतवार बनी। लोकमान्य तिलक ने “स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है” का नारा बुलन्द किया। दूसरे शब्दों में, कांग्रेस ने जनता के स्वराज्य के अधिकार का प्रतिपादन किया। उसका कहना था कि जनता को देश के शासन पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त होना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यवादी सदा यह कहते रहे कि भारतीय जनता शासन करने के योग्य नहीं है, अतएव उसे अच्छा शासन—‘सुराज्य’—प्रदान

करना हमारा काम है। राष्ट्रवादियों का उत्तर था कि “सुराज्य स्वराज्य का विकल्प नहीं है।” राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप विधान-सभाओं में सुधार किया गया और धीरे-धीरे उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ती गयी।

उत्तरदायी शासन का लक्ष्य (The Goal of responsible Government)—1917 में यह प्रसिद्ध घोषणा की गई कि भारत में ब्रिटिश नीति का उद्देश्य शासन के प्रत्येक पहलू में भारतीयों के सहयोग को बढ़ाना और धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन स्थापित करने के निमित्त स्व-शासित संस्थाओं का उत्तरोत्तर विकास करना है। उत्तरदायी शासन का अर्थ है, विधान-सभाओं में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा सरकार का जनता के प्रति उत्तरदायी होना। उत्तरदायी शासन की पहली किश्त 1919 में माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के द्वारा आरम्भ हुई। उन सुधारों के अनुसार प्रादेशिक शासन को दो विभागों—‘सुरक्षित तथा हस्तांतरित’ (Reserved and Transferred)—में बाँट दिया गया। हस्तान्तरित विषय वे थे जो विधान-सभा के निर्वाचित प्रतिनिधियों में से बने हुए मन्त्रियों को सौंपे जाते थे और जिनके लिए ये मन्त्री विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी रहते थे। 1915 के भारतीय शासन-विधान से इस सिद्धान्त को और व्यापक करके प्रान्तीय स्वराज की स्थापना की गई। इसके द्वारा सुरक्षित और हस्तान्तरित विषयों का अन्तर मिट गया और सब विषय लोकप्रिय तथा उत्तरदायी मन्त्रियों के हाथों में आ गए। नामजद स्थानों को तोड़ दिया गया। परन्तु इतने पर भी केन्द्रीय सरकार पूर्णतया अनुत्तरदायी रही और 1935 के सुधारों द्वारा प्रतिपादित आंशिक उत्तरदायित्व भी व्यावहारिक रूप में उस पर लागू नहीं किया गया।

भाषण व पत्रों की स्वतन्त्रता सीमित (Restricted freedom of speech and press)—प्रान्तीय शासन में भी जो उत्तरदायित्व उपलब्ध हुआ वह सच्चा नहीं था, क्योंकि मताधिकार केवल उन लोगों को प्रदान किया गया था जिन्हें ऊँची शिक्षा प्राप्त थी, या जो पर्याप्त धनी थे। मताधिकार कुछ लोगों का, न कि सब का, विशेषाधिकार था। देश के केवल 14 प्रतिशत लोगों को यह विशेषाधिकार दिया गया था। अर्थात् बहुसंख्यक जनता मताधिकार के प्रयोग द्वारा शासन पर नियन्त्रण रखने से वंचित थी। वह लोकमत जैसे अन्य साधनों का प्रयोग भी सरकार पर नियन्त्रण रखने के लिए नहीं कर सकती। भाषण तथा पत्रों की स्वतन्त्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। पत्रों को सरकार बन्द कर सकती थी, और छोटे-छोटे बहाने लेकर उनसे बड़ी-बड़ी जमानतें माँग सकती थी, जिन्हें जब्त भी कर लिया जाता था। अतएव पत्र सरकार की खरी आलोचना नहीं कर सकते थे।

३६. पृथक् और संयुक्त निर्वाचन (Separate versus Joint Electorates)

पृथक् निर्वाचन का अर्थ (The meaning of Separate Electorates)—ब्रिटिश शासनकाल में मताधिकार केवल संकुचित ही नहीं था, उसमें एक अन्य दोष

भी था, जिससे सारे देश में एक भयानक विष फैल गया। मताधिकार पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली के आधार पर दिया गया था। इसके अनुसार मुस्लिम मतदाता मुसलमानों और सिख मतदाता केवल सिखों को मत दे सकता था। यह प्रणाली अनेक समाजों पर लागू थी। उन समाजों के लोग केवल अपने ही समाज के उम्मीदवार को मत दे सकते थे।

पृथक् निर्वाचन का प्रारम्भ व प्रसार (The introduction and extension of separate electorates)—पृथक् निर्वाचन-प्रणाली सबसे पहले 1909 के मार्ले-मिटो सुधारों के अंतर्गत केवल मुसलमानों के लिए प्रारम्भ की गई। 1919 के सुधारों में उसे सिखों पर भी लागू कर दिया गया। इस भयानक प्रणाली से देश में एक गम्भीर विवाद खड़ा हो गया। इसकी बुराइयों को अंग्रेजों ने भी स्वीकार किया, किन्तु 1932 के साम्प्रदायिक निर्णय में उन्होंने उसे और बढ़ाकर ईसाइयों, एंग्लो-इण्डियनों, और दलित जातियों पर भी लागू कर दिया। दलित जातियों के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के अग्रजनों के कारण पूना-समझौते के आधार पर—जिसमें पृथक् और संयुक्त निर्वाचन के बीच का मार्ग निकाल लिया गया था—इस निर्णय को संशोधित कर दिया गया।

संयुक्त निर्वाचन तथा पृथक् निर्वाचन के पक्ष में तर्क (Joint Electorates and arguments for Separate Electorates)—भारत का राष्ट्रीय लोकमत सदैव संयुक्त निर्वाचन का समर्थक रहा। इस प्रणाली के अनुसार सब मतदाताओं को जाति धर्म का भेद भुलाकर किसी भी उम्मीदवार को मत देने का अधिकार होता है। दूसरे शब्दों में हिन्दू, मुसलमान तथा सिख आदि सब मतदाता अपने प्रतिनिधियों को सम्मिलित रूप में चुनते हैं। अला संख्यक सम्प्रदायों के पार्थक्यवादी वर्गों का, जो पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन की माँग करते थे, यह तर्क था कि उनके धर्म, संस्कृति, भाषा तथा राजनीतिक अधिकारों के संरक्षक के लिए उसकी आवश्यकता है। वे विभिन्न सरकारी नौकरियों में भी साम्प्रदायिक आधार पर नियुक्तियाँ स्वीकार कराने में सफल हो गए। संयुक्त निर्वाचन के सम्बन्ध में उनकी मुख्य आपत्ति यह थी कि सब सम्प्रदायों के मतदाताओं द्वारा संयुक्त पद्धति में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुसंख्यक समाज के, अर्थात् हिन्दुओं के, वश में हो जाना अनिवार्य है।

पृथक् निर्वाचन की बुराइयाँ (Evil of Separate Electorates)—परन्तु यदि वृक्ष की पहचान उसके फलों से होती है, तो पृथक् निर्वाचन एक भयंकर बुराई सिद्ध हुआ और वह निन्दा से बच नहीं सकता था। उससे भारत के सार्वजनिक जीवन में साम्प्रदायिकता का घुन लग गया। वह साम्प्रदायिक फूट, दंगे और अन्त में, देश के विभाजन का कारण बना। उससे राष्ट्रीय एकता नष्ट हो गई। उससे जनता कट्टर गुटों में बँट गई और वह अपने को भारतीय नहीं, बल्कि हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि समझने लगी। वह स्वयं अल्पसंख्यकों के लिए भी हानिकारक हुआ, क्योंकि उससे अल्पसंख्यक लगातार अल्पसंख्यक ही बने रहे और उनके बौद्धिक विकास में बाधा पड़ी, क्योंकि वे सुरक्षा की झूठी भावना के अधीन हो गए, जिससे उन्हें

शैक्षणिक प्रगति की स्फूर्ति नहीं मिली। इससे केवल ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को लाभ हुआ, जो 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का अनुसरण करते रहे।

४०. नये संविधान में मताधिकार (Franchise under the New Constitution)

भारत गणराज्य के संविधान में, जो 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया, पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन का अन्त कर दिया गया है। उसमें पंचायतों से लेकर संसद् तक सम्युक्त निर्वाचन की व्यवस्था की गई है। नए संविधान ने भारत में पहली बार सार्वजनिक वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) का सूत्रपात किया है। इससे धन के आधार पर मताधिकार देने की प्रणाली का अन्त कर दिया है और अब शिक्षा, यौन-भेद (Sex discrimination) जाति या धर्म के आधार पर कोई व्यक्ति मताधिकार से वंचित न रहेगा। उसमें शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हुई होने के कारण, परिगणित जातियों और परिगणित जनजातियों के लिए और संख्या में बहुत कम होने के कारण एंग्लो-इण्डियनों के लिए प्रांतीय विधान-सभाओं और संसद् के निम्न सदन में स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं। उन्हें सरकारी नौकरियों में भी इसी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई हैं तथापि ये सुविधाएँ केवल १० वर्ष के लिए हैं और यदि इसके पश्चात् संविधान में संशोधन न किया गया, तो ये समाप्त हो जायेंगी, और संशोधन की कोई आशा नहीं की जाती।

४१. नए संविधान के अधीन निर्वाचन (Elections under the New Constitution)

स्वतन्त्र और निष्पक्ष निर्वाचनों की आवश्यकता (The need for free and fair elections)—भारत के नये संविधान ने लोकतन्त्र के क्षेत्र में अब तक के मानव इतिहास का सबसे बड़ा प्रयोग किया है। उसने भारत के 18 करोड़ से अधिक वयस्क नागरिकों को मतदान का और इस तरह उन्हें कानून बनाने एवं देश का शासन करने के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया है। अस्तु, लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव बिना किसी विघ्न-बाधा के कर सकें। दूसरे शब्दों में निर्वाचन स्वतन्त्र और निष्पक्ष होने चाहिए। सत्तारूढ़ दल को ऐसा अवसर नहीं मिलना चाहिए कि वह निर्वाचकों को अपने नियन्त्रण में रख सके या निर्वाचन-विधि का ऐसा दुरुपयोग कर सके कि स्वयं ही सदैव सत्ताधीश रह सके। यदि सरकार निर्वाचनों पर अनुचित प्रभाव या नियन्त्रण रख सकती है, तो इसका परिणाम फासिज्म (Fascism) होगा, लोकतन्त्र नहीं।

निर्वाचन आयोग (Election Commission)—भारत में निर्वाचन स्वतन्त्र, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण हों, इस बात की व्यवस्था करने के लिए संविधान के उपबन्धों के अधीन एक निर्वाचन आयोग (Election Commission) की स्थापना की गई है। यह आयोग संसद्, राज्य विधान-मण्डलों, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचनों का निरीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण करता है। वह इनके लिए निर्वाचन-सचिवों

(Electoral Rolls) तैयार करता है। वह इन समस्त निर्वाचनों का प्रबन्ध करता है और यदि इन निर्वाचनों के सम्बन्ध में कोई विवाद उठ खड़ा होता है, तो उसके निर्णय के लिए निर्वाचन-न्यायाधिकरणों (Election Tribunals) की स्थापना करता है।

इस बात का ध्यान रखा गया है कि निर्वाचन आयोग एक स्वतन्त्र संस्था रहे और उसके कार्य में कार्यपालिका कोई बाधा न डाल सके। आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों को राष्ट्रपति, ससद् द्वारा निर्धारित उपबन्धों के अनुसार नियुक्त करता है। लेकिन उनको पदच्युत उसी तरह से किया जा सकता है जिस तरह से कि सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को। इन समस्त उपबन्धों का लक्ष्य यह है कि निर्वाचन आयोग (Election Commission) के उपर किसी तरह का बाहरी राजनीतिक दबाव न पड़ सके, निर्वाचन स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के वातावरण में सम्पादित हों और नागरिकों के मताधिकार के प्रयोग में किसी प्रकार का अन्याय न हो। नए संविधान के अधीन प्रथम और द्वितीय निर्वाचन जिस सफलता से सम्पन्न हुए हैं, उससे इन उपबन्धों की सार्थकता भली भाँति प्रकट हो गई है।

प्रश्न

1. देश के प्रशासन पर नागरिक किस प्रकार नियन्त्रण रखता है ? भारत के नागरिक किस हद तक नियन्त्रण रखते हैं ?
2. पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणाली पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए। इस प्रणाली को भारत में क्यों रद्द कर दिया गया ?
3. पृथक् और संयुक्त निर्वाचन-प्रणालियों के गुण-दोषों की तुलना कीजिए।
4. क्या नये संविधान में सार्वजनिक वयस्क मताधिकार व्यवस्था का किया जाना उचित हुआ है ? कारण सहित लिखिये।
5. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) वयस्क मताधिकार (ब) संयुक्त निर्वाचन।
6. देश के प्रशासन पर नागरिक किस प्रकार नियन्त्रण रखता है ? वर्णन करो, कहाँ तक इन को सफलता प्राप्त हुई है ?
7. स्वतन्त्र और निष्पक्ष निर्वाचनों के लिए क्या किया गया ?
8. लोक-सभा तथा संसद् का निर्वाचन प्रत्येक राज्य में वयस्क मताधिकार पर आधारित है, विस्तारपूर्वक व्याख्या करें कि वयस्क मताधिकार क्या है, किस प्रकार और कैसे यह राज्य-सभा, लोक-सभा तथा नगरपालिका निर्वाचनों का मुख्य आधार है ?

Questions

1. In what ways does the citizen control the administration of a country ? How far is this control exercised by the citizens of India ?
2. Write a note on "separate communal electorates". Why has the system been discarded in India ?
3. Compare the merits and demerits of separate and joint electorates.
4. Do you think that the introduction of adult suffrage under the Constitution of free India has been a step in the right direction ? Give reasons for your answer.
5. Write short notes on (a) adult franchise, (b) Election Commission.
6. In what ways does the citizen control the administration of a country ? How far has he been successful in this ?
7. What steps have been taken to ensure free and fair elections in India ?
8. The elections to the House of the People and to the Legislative Assembly of every State shall be on the basis of adult Suffrage. Explain fully "adult suffrage" and say how it forms the basis of elections to the house of the People, to the State Assemblies and the Local Bodies

अध्याय ६

संघ और राज्य की न्यायपालिका

(Union and State Judiciary)

४२. न्यायपालिका का महत्त्व (Importance of Judiciary)

संघ में न्यायपालिका की विशेष स्थिति (Special role of judiciary in a federation)—लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में सबल, स्वतन्त्र और सुसंगठित न्यायपालिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उसका कर्तव्य है कि वह सरकार को अपनी शक्ति के स्वेच्छाचारी ढंग में प्रयोग करने से रोके और नागरिकों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षा करे। संघीय शासन-प्रणाली के अधीन न्यायपालिका का कार्य और भी महत्त्वपूर्ण होता है वह संविधान के अभिभावक (Guardian) का कार्य करती है। संघीय शासन में संघीय सरकार और अवयवी एकाको अथवा राज्यों की सरकारों के बीच शक्तियों का स्पष्ट वितरण होता है। ऐसी पद्धति में संघ सरकार और राज्य सरकारों के बीच अधिकार क्षेत्र के प्रश्न पर मतभेद पैदा हो जाने सर्वथा स्वाभाविक हैं। इसके अतिरिक्त, संघीय संविधान शासन के विभिन्न अंगों की शक्तियों और कृत्यों का स्पष्ट रूप से निरूपण कर देता है और उनकी मर्यादाएँ बाँध देता है। ऐसी स्थिति में यदि शासन की कोई शाखा, अपने अधिकार की सीमाओं से आगे बढ़ती है, तो विवाद उठ खड़े हो सकते हैं। केवल एक सशक्त और निष्पक्ष न्यायपालिका ही ऐसे विवादों को सुलझा सकती है और शासन के विभिन्न अंगों को अपने लिए विहित क्षेत्रों के भीतर रख सकती है। भारत का नया संविधान सघात्मक है। इसलिए इस संविधान के अन्तर्गत एक सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) की स्थापना की गई है जो संविधान के अभिरक्षक (Custodian) और अन्तिम निर्वाचक (Final Interpreter) का कार्य कर सके, तथा वैधानिक विवादों को सुलझा सके।

४३. राज्य का न्यायिक संगठन (Judicial Organisation in the State)

न्याय-व्यवस्था राज्य का विषय है (Administration of justice a state subject)—भारत की न्याय-व्यवस्था मुख्य रूप से वही है जो स्वतन्त्रता से पहले देश में प्रचलित थी। न्याय-व्यवस्था और सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को छोड़कर शेष समस्त न्यायालयों का संगठन राज्य सरकारों को सौंप दिया गया है। प्रत्येक राज्य में निम्न तीन प्रकार के न्यायालय न्याय-कार्य करते हैं।

- (1) फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts)
- (2) दीवानी न्यायालय (Civil Courts)
- (3) राजस्व न्यायालय (Revenue Courts)-

फौजदारी न्यायालय (Criminal Courts)—फौजदारी न्यायालयों का एक श्रेणीबद्ध संगठन है। इस पक्ष में सबसे नीचे का न्यायालय तृतीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट (Third Class Magistrate) होता है। वह छोटे-छोटे फौजदारी मामलों का निबटारा कर सकता है। उसे 50 रु० तक जुर्माना करने और एक मास तक की सजा देने की शक्ति प्राप्त है। इससे ऊँचा द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट (Second Class Magistrate) का न्यायालय होता है जो छ. मास की सजा और 200 रु० जुर्माना कर सकता है। इनके ऊपर प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट (First Class Magistrate) का न्यायालय होता है। इस न्यायालय को नीचे के दोनों न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनने का अधिकार है। यह न्यायालय दो वर्ष के कारावास और 1000 रु० तक के दण्ड के मामलों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) का प्रयोग करता है। इन तीनों न्यायालयों का संगठन जिला आधार पर होता है और ये एक सेशन न्यायालय (Sessions Court) की अधीनता में कार्य करते हैं। सेशन न्यायालय जिले का सर्वोच्च फौजदारी न्यायालय होता है। यह न्यायालय हत्या तथा अन्य ऐसे गम्भीर अपराधों के मामलों का निर्णय करता है जो उसके पास प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट भेजता है। यह न्यायालय इन मामलों को एक जूरी (Jury) या एसेसर्स (Assessors) की सहायता से निबटाता है और विधि द्वारा स्वीकृत किसी भी दण्ड को दे सकता है। सेशन न्यायालय को मृत्यु-दण्ड देने के लिए उच्च न्यायालय (High Court) की स्वीकृति लेनी पड़ती है। उच्च न्यायालय राज्य में अपील का अन्तिम न्यायालय (Final Court of Appeal) होता है। उसका प्रधान कार्यालय प्रायः राज्य की राजधानी में रहता है।

दीवानी न्यायालय (Civil Courts)—फौजदारी न्यायालयों की भाँति दीवानी न्यायालयों की भी एक क्रमबद्ध व्यवस्था है। इनके क्रम में सबसे नीचे खफीफा न्यायालय (Small Cause Courts) अथवा मुंसिफ के न्यायालय (Munsiff's Courts) होते हैं। इन न्यायालयों की स्थापना बड़े बड़े कस्बों में की जाती है और ये 500 रु० से लेकर 2000 रु० तक के मुकदमों में सुन सकते हैं। इन न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध विधि-प्रश्नों को छोड़कर कोई अपील नहीं हो सकती। इन न्यायालयों के ऊपर विभिन्न श्रेणियों के उप-न्यायाधीशों के न्यायालय (Court of Sub-Judges) होते हैं। ये न्यायालय अधिक से अधिक 5000 रु० की राशि के मामले सुन सकते हैं। इनके पास अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction) नहीं होता। इनके ऊपर वशिष्ठ उप-न्यायाधीशों के न्यायालय (Courts of Senior Sub-Judges) होते हैं जो किसी भी राशि के मुकदमों में सुन सकते हैं। लेकिन, इन न्यायालयों को भी अपीलीय क्षेत्राधिकार नहीं मिला है। जिले में दीवानी मुकदमों की अपील के लिए जिला न्यायालय (District Court) होता है। इस न्यायालय का अध्यक्ष जिला न्यायाधीश (District Judge) होता है। जिला न्यायाधीश जिले के न्यायिक संगठन का प्रधान होता है और प्रशासनिक तथा न्यायिक दोनों प्रकार की शक्तियों का प्रयोग करता है। अपनी प्रशासनिक क्षमता में वह जिले के दीवानी न्यायालयों का कार्यकरण

देखता है और उनके बीच काम का बंटवारा करता है। अपनी न्यायिक क्षमता में उसे प्रारम्भिक और अपीलीय दोनों प्रकार का क्षेत्राधिकार प्राप्त है। (यह स्मरणीय है कि जिला न्यायालय और सेशन न्यायालय एक ही चीज है और एक ही व्यक्ति जिला और सेशन न्यायाधीश के रूप में कार्य करता है। जब वह दीवानी मुकदमों को सुनता है, तब जिला न्यायालय और जब फौजदारी मुकदमों को सुनता है, तब सेशन न्यायालय कहलाता है)।

जिला न्यायालय ट्रस्टों के प्रबन्ध पर भी निगरानी रखते हैं और अवयस्कों (Minors) व विक्षिप्तों (Lunatics) के सरक्षकों को नियुक्त करते हैं। जिला न्यायालयों के यहाँ से अपीले सीधे उच्च न्यायालय में हो सकती हैं जो राज्य में दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार की अपीले सुनने के लिए सर्वोच्च न्यायालय है।

राजस्व न्यायालय (Revenue Courts)—हमारे यहाँ भूमि राजस्व या लगान सम्बन्धी मुकदमों की सुनवाई के लिए पृथक् न्यायालय हैं। सबसे नीचे राजस्व न्यायालय तहसीलदारों के न्यायालय हैं। इनके यहाँ से अपीले जिला मजिस्ट्रेट (डिप्टी कमिश्नर) के पास पहुँचती हैं जो जिले का कलक्टर भी होता है। जिला मजिस्ट्रेट के यहाँ से अपीले कमिश्नर के न्यायालय (Commissioner's Court) में पहुँचती हैं। राजस्व मुकदमों की सुनवाई के लिए सबसे ऊँचा न्यायालय बोर्ड ऑफ रेवेन्यू (Board of Revenue) है।

४४. उच्च न्यायालय (High Courts)

उच्च न्यायालय की रचना, न्यायाधीशों की नियुक्ति, न्यायाधीशों की योग्यताएँ, उनकी उपलब्धियाँ और सेवा की शर्तें (High courts under the new constitution, appointment of judges, qualification of judges, their emoluments and conditions of service)—नये संविधान में प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था की है। उच्च न्यायालय एक मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) तथा दूसरे न्यायाधीशों से मिलकर बनता है उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या राष्ट्रपति समय-समय पर निश्चित करता है। इस समय किसी न्यायालय में अधिक से अधिक बीस न्यायाधीश हो सकते हैं। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) और दूसरे न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice of India) और सम्बद्ध राज्य के राज्यपाल से मन्त्रणा करने के उपरान्त करता है। दूसरे न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति के लिए राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति से भी परामर्श करना आवश्यक होता है। संविधान ने निर्धारित किया है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश में निम्न अर्हताओं का होना आवश्यक है : (1) वह भारत का नागरिक हो, (2) भारत में कम से कम दस वर्ष तक कोई न्यायिक पद धारण कर चुका हो और (3) किसी उच्च न्यायालय में कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता (Lawyer) रह चुका हो। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति को 4,000 रु० मासिक वेतन तथा दूसरे न्यायाधीशों को

3,500 रु० मासिक वेतन मिलता है । न्यायाधीशों की निवृत्ति आयु 60 वर्ष निश्चित की गई है । न्यायाधीश यदि चाहे, तो अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है । यदि संसद् के दोनों सदन एक प्रस्ताव द्वारा राष्ट्रपति से किसी न्यायाधीश को अपदस्थ करने की प्रार्थना करें, तो राष्ट्रपति उस न्यायाधीश को अपदस्थ कर सकता है । यह आवश्यक है कि इस प्रकार के प्रस्ताव को संसद् के प्रत्येक सदन ने अपनी समस्त सदस्य-संख्या के बहुमत तथा उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पास कर दिया हो । संविधान ने यह भी निर्धारित किया है कि जो व्यक्ति एक बार उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है, न तो किसी न्यायालय में वकालत कर सकता है और न भारत की किसी न्यायिक शक्ति के सामने उपस्थित हो सकता है ।

उच्च न्यायालय की शक्तियाँ (Powers of High Courts)—जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, उच्च न्यायालय राज्य में अपील का सर्वोच्च न्यायालय है । वह दो प्रकार के कार्य करता है—(1) न्यायिक (Judicial) और (2) प्रशासनिक (Administrative) अपनी न्यायिक क्षमता में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई प्रेसीडेन्सियों के उच्च न्यायालय प्रारम्भिक और अपीलीय दोनों प्रकार के क्षेत्राधिकारों का उपयोग करते हैं । शेष राज्यों के न्यायालयों को अधिकतर अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction) प्राप्त है । हम 'अधिकतर' इसलिए कहते हैं क्योंकि उन्हें नौकाधिकरण (Admiralty), वसीयत (Probate) तथा उच्च न्यायालय के अवमान (Contempt of High Court) के मामलों में प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction) भी प्राप्त है । प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का अर्थ मुकदमों पर सबसे पहले विचार करना है । अपीलीय क्षेत्राधिकार का अधिकार उन मामलों में अपीलें सुनने का अधिकार है जिन का निम्न न्यायालयों में निर्णय हो चुका है) ।

प्रशासनिक शक्तियाँ (Administrative Powers)—जहाँ तक प्रशासनिक शक्तियों का प्रश्न है, उच्च न्यायालय अपने अधीन रहने वाले समस्त न्यायालयों के कार्यों का निरीक्षण करता है और उनके कार्य संचालन के लिए नियम बनाता है । वह इन न्यायालयों की फाइलें देख सकता है और एक न्यायालय के मुकदमों को दूसरे न्यायालय में भेज सकता है । उच्च न्यायालय अपने तथा अपने नीचे कार्य करने वाले न्यायालयों के लिए क्लर्कों तथा अन्य कर्मचारियों को नियुक्त कर सकता है । अन्तर्ग, उच्च न्यायालय अभिलेख न्यायालय (Courts of Record) के रूप में भी कार्य करता है ।

४५. उच्चतम न्यायालय (The Supreme Court)

नये संविधान के अधीन संस्थापित उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) देश का सबसे ऊँचा न्यायाधिकरण (Tribunal) है । वह देश की न्यायपालिका के शिखर पर आसीन है । उच्चतम न्यायालय का गठन 1935 के भारत सरकार अधिनियम (Government of India Act of 1935) के उपबन्धों के अधीन 1937 में स्थापित सघीय न्यायालय (Federal Court) के पद को ऊँचा उठा कर किया

गया था। उच्चतम न्यायालय की स्थापना के साथ-साथ भारत का प्रिवी परिषद् (Privy Council) से न्यायिक सम्बन्ध टूट गया है।

उच्चतम न्यायालय की रचना, न्यायाधीशों की योग्यताएँ, सेवा की शर्तें तथा उच्चतम न्यायालय की पीठ (Its composition, qualification of judges, their terms of service, seat of the supreme court)—इस समय उच्चतम न्यायालय भारत के एक मुख्य न्यायाधिपति और सात दूसरे न्यायाधीशों से मिलकर बनता है। तथापि संविधान ने ससद् को यह शक्ति दी है कि वह न्यायाधीशों की संख्या को घटा या बढ़ा सकती है। राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करके जिनसे परामर्श करना वह आवश्यक समझे, भारत के मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice of India) को नियुक्त करता है। राष्ट्रपति अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधिपति से परामर्श करके करता है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति उन्हीं नियुक्तियों में से की जा सकती है जो (1) भारत के नागरिक हो, (2) किसी उच्च न्यायालय में कम से कम पाँच वर्ष तक न्यायाधीश रह चुके हो, (3) किसी उच्च न्यायालय में कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता (Lawyer) रह चुके हों, या (4) पारंगत विधिवेत्ता हो। उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को बिना किराया दिए पदावास के उपयोग का अधिकार है। भारत के मुख्य न्यायाधिपति को 5,000 रु० प्रति मास और दूसरे प्रत्येक न्यायाधीश को 4,000 रु० प्रति मास वेतन मिलता है। न्यायाधीश जहाँ एक बार नियुक्त हुए, फिर उनके भत्तो, उपलब्धियों, अधिकारों और विशेषाधिकारों में उनके लिए किसी प्रकार का कोई अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश 65 वर्ष तक अपने पद से स्थित रहता है और उसे अपने पद से केवल सिद्ध कदाचार (Proved misbehaviour) अथवा असमर्थता (Incapacity) के आधार पर केवल उसी विधि से हटाया जा सकता है जो कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पदच्युति के लिए निर्धारित की गई है। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश सेवा निवृत्त होने के पश्चात् किसी न्यायालय में अथवा किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष वकालत करने अथवा उपस्थित होने से वंचित कर दिए गए हैं। यह न्यायाधीशों की निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा के लिए आवश्यक है। साधारणतः, उच्चतम न्यायालय दिल्ली में समवेत होता है लेकिन वह ऐसे अन्य स्थानों में भी समवेत हो सकता है जो भारत का मुख्य न्यायाधिपति राष्ट्रपति से मन्त्रणा करके निश्चित करे।

उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ (Powers of the Supreme Court)—भारत का उच्चतम न्यायालय देश के शासन-विधान में एक शक्तिशाली तत्त्व है उसकी शक्तियाँ अमरीका के उच्चतम न्यायालय के सहित किसी अन्य संघ की सर्वोच्च न्यायिक सत्ता की शक्तियों से अधिक हैं। यह एक अभिलेख न्यायालय (Court of Record) है और इसे अपने अपमान (Contempt) के लिए दण्ड देने की शक्ति के सहित ऐसे न्यायालय की सब शक्तियाँ प्राप्त हैं। उच्चतम न्यायालय को प्रारम्भिक (Original),

अपीलीय (Appellate) और परामर्शीय (Advisory) क्षेत्राधिकार प्राप्त है ।

उच्चतम न्यायालय का अप्रवर्ज्य प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार (Exclusive original jurisdiction) (1) भारत सरकार तथा एक या अधिक राज्यों के बीच के और (2) दो या अधिक राज्यों के आपस के समस्त विवादों से सम्बन्ध रखता है । **उच्चतम न्यायालय के अपीलीय क्षेत्राधिकार** में तीन तरह के मामले आते हैं—(1) संविधानिक, (2) फौजदारी और (3) दीवानी । संविधानिक मामलों में उच्चतम न्यायालय अपील को तभी सुन सकता है जब कि उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि उस मामले में संविधान की व्याख्या से सम्बद्ध कोई गम्भीर कानूनी प्रश्न उलझा हुआ है । यदि उच्च न्यायालय ऐसा कोई प्रमाण-पत्र न दे, तो उच्चतम न्यायालय स्वयं भी ऐसा प्रमाण-पत्र दे सकता है । **फौजदारी मामलों** में किसी उच्च न्यायालय के दिए हुए निर्णय की उच्चतम न्यायालय में अपील हो सकती है यदि उस उच्च न्यायालय ने (क) अपील में किसी अभियुक्त व्यक्ति की विमुक्ति के आदेश को पलट दिया हो तथा उसको मृत्यु दण्डादेश दिया हो, (ख) अपने अधीन न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण के लिए अपने पास मंगा लिया हो तथा ऐसे परीक्षण में अभियुक्त व्यक्ति को दोषी ठहराया हो और मृत्यु दण्ड दिया हो, अथवा (ग) प्रमाणित किया हो कि मामला उच्चतम न्यायालय में अपील किए जाने लायक है । संसद् उच्चतम न्यायालय अपीलीय क्षेत्राधिकार (Appellate Jurisdiction) को बढ़ा सकती है । **दीवानी मामलों (Civil Cases) उच्च हाई कोर्ट न्यायालय** के किसी निर्णय की अपील उच्चतम **सुप्रीम कोर्ट न्यायालय** में हो सकती है यदि उच्च न्यायालय प्रमाणित करे कि विवाद-विषय की राशि का मूल्य 20,000 रु० से कम नहीं है अथवा अपील में कोई सारवान् विधि प्रश्न (Substantial point of law) अन्तर्गस्त नहीं है ।

उच्चतम न्यायालय का परामर्शीय क्षेत्राधिकार (Its advisory jurisdiction)—भारत का उच्चतम न्यायालय कतिपय परामर्शीय कृत्य भी करता है । राष्ट्रपति कानून के या सार्वजनिक महत्त्व के किसी भी प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त कर सकता है । इस क्षेत्राधिकार के अधीन राष्ट्रपति उन विवादों को भी उच्चतम न्यायालय के लिए सौंप सकता है जो पूर्वकालीन देशी राज्यों के साथ की गई सन्धियों और समझौतों से सम्बन्ध रखते हैं ।

उच्चतम न्यायालय के मूल अधिकार (The supreme court—its fundamental rights)—उच्चतम न्यायालय भारत के नागरिकों की स्वतन्त्रताओं और अधिकारों का रक्षक है । यदि किसी विधानमण्डल द्वारा पास किया गया कोई कानून उन मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है, जो संविधान ने जनता को प्रदान किये हैं, तो न्यायालय उनको व्यर्थ घोषित कर सकता है । निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) के खंड 14 के मामले में यह किया गया था । राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश (Ordinance) निकाल कर इस खंड को अधिनियम से हटा दिया । इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय मूल अधिकारों के भर्तन के लिए बन्दी प्रत्यक्षी-

करण (Habeas Corpus)¹ तथा इस प्रकार के अन्य लेख निकाल सकता है। इसके अतिरिक्त, भारत के उच्चतम न्यायालय को अमरीका के उच्चतम न्यायालय की भाँति ही विधान-मण्डलों द्वारा पास किये गये कानूनों का पुनरीक्षण करने और उन्हें यदि वे संविधान के किन्हीं उपबन्धों के प्रतिकूल हों, अवैध घोषित करने की शक्ति दी गई है। दूसरे शब्दों में, उच्चतम न्यायालय संविधान का अन्तिम अभिरक्षक और निर्वचक है। अमरीकी उच्चतम न्यायालय ने 'न्यायिक पुनरीक्षण' (Judicial Review) की शक्ति का इतना अधिक प्रयोग किया है कि वह विधानमण्डल का तृतीय सदन व शेष दो सदनों से अधिक शक्तिशाली हो गया है। अमरीकी उच्चतम न्यायालय की भाँति भारत के उच्चतम न्यायालय ने स्वयं विधानमण्डल बनाने की कोशिश नहीं की है। उसने कानून की व्याख्या रो ही सन्तोष किया है, कानून का निर्माण नहीं किया है।

उच्चतम न्यायालय की स्वतन्त्रता (Independence of the Supreme Court)—संविधान ने उच्चतम न्यायालय की निष्पक्षता और स्वतन्त्रता निश्चित करने व उसे कार्यपालिका या व्यवस्था के प्रभाव से दूर रखने की समुचित व्यवस्था कर दी है। न्यायाधीश जहाँ एक बार नियुक्त हुए, फिर उन्हें एक अत्यन्त कठिन प्रक्रिया के अलावा अन्य किसी रीति से अपदस्थ नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय का प्रशासनिक व्यय भारत की सचिव निधि (Consolidated Fund of India) पर भारित होता है। इसका अभिप्राय यह है कि न्यायाधीशों के वेतनों पर विधानमण्डल का मतदान नहीं होता।

अधिशासनिक और न्यायिक शक्तियों का सम्मिश्रण (Combination of executive and judicial powers)—भारतीय न्याय पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि जिना मजिस्ट्रेटों सब-डिवीजनल अधिकारियों और तहसीलदार जैसे कई पदाधिकारियों के हाथों में अधिशासनिक और न्यायिक शक्तियों का सम्मिश्रण होता है। जिला मजिस्ट्रेट इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। चूँकि वह जिले में राजस्व का संग्रह करने तथा शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए सबसे बड़ा अधिकारी होता है, अतः उसके लिए यह सर्वथा स्वाभाविक है कि वह कुछ व्यक्तियों

1. बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख इंग्लैण्ड में कानून के शासन (Rule of Law) का रक्षक है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है 'बन्दी को प्रत्यक्ष किया जाये'। यह इंग्लैण्ड के उच्च न्यायालय द्वारा निकाला गया एक आदेश होता है जिसमें कहा जाता है कि उस व्यक्ति को जिसे कार्यपालिका ने गिरफ्तार कर रखा है, उसके सामने उपस्थित किया जाये। इस लेख का उद्देश्य इस बात की परीक्षा करना होता है कि क्या व्यक्ति को वैध रीति से गिरफ्तार किया गया है। इस तरह, बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख व्यक्ति की स्वतन्त्रता का महत्वपूर्ण रक्षक है। भारत में पहले केवल कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के उच्च न्यायालय ही बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख निकाल सकते थे। नये संविधान ने उच्चतम न्यायालय को तथा समस्त उच्च न्यायालयों को ही यह शक्ति दी है।

को पसन्द और कुछ को नापसन्द करने लगता है । अपनी अधिशासनिक क्षमता में वहाँ जिले की पुलिस पर भी नियन्त्रण रखता है । पुनश्च: मजिस्ट्रेट के रूप में उसे विपुल शक्तियाँ प्राप्त हैं । इस प्रकार, वह न्यायाधीश और दंडक साथ-साथ है । वह ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध आसानी से कार्यवाही कर सकता है जिन्होंने उसे अधिशासनिक क्षमता में नाराज कर दिया हो । अब यदि मुकदमे की सुनवाई वह या अन्य ऐसा कोई व्यक्ति जिस पर वह आसानी से असर डालता है करता है, तो अभियुक्त व्यक्ति के साथ न्याय की बहुत कम सम्भावना रहती है । इस तरह, अधिशासनिक और न्यायिक शक्तियों का एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रीकरण श्रेष्ठ न्याय-व्यवस्था के प्रतिकूल है और इससे न्यायालयों की प्रतिष्ठा कम हो जाती है । भारतीय लोकमत ने इस व्यवस्था का सदैव विरोध किया है । अब चूंकि भारत स्वतन्त्र है, अतः यह आशा की जाती है कि यह ब्रुटि यथा शीघ्र दूर हो जायेगी । नये संविधान में कार्यपालिका को न्यायपालिका में अलग रखने की आवश्यकता स्वीकार कर ली गई है और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में इसकी चर्चा कर दी गई है । (अनुच्छेद 50) इस दिशा में पश्चिमी बंगाल और मद्रास ने कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये हैं ।

धीमा और व्ययसाध्य न्याय (Slow and expensive administration of justice)—दूसरे, भारत में न्याय का प्रशासन धीमा और व्ययसाध्य है । इसका कारण यह है कि प्रायः सभी तरह के मामलों में अपीलों के लिए काफी गुंजायश रहती है । उदाहरण के लिए यदि किसी दीवानी मामले में 20 000 रु० या इससे अधिक की राशि अन्तर्ग्रस्त है, तो दो अपीलें वैसी और एक अपील उच्चतम न्यायालय में हो सकती है । यह देश की एक प्रमुख आवश्यकता है कि न्याय का प्रशासन अधिक सत्वर और कम-खर्चीला हो ।

अष्टाचार और रिश्वत (Corruption and Bribery)—यहाँ यह कहना भी अप्रासंगिक न होगा कि भारत के निम्न न्यायालयों में अष्टाचार और रिश्वत बहुत चलती है । वास्तव में अष्टाचार की समस्या में केवल न्यायपालिका तक ही सीमित नहीं है । वह तो ब्रिटिश राज्य की एक ऐसी विरासत है जिसने देश के प्रगामन के प्रत्येक अंग को विकृत कर रखा है । इस बुराई को दूर करना काफी कठिन है, लेकिन इसे तो करना ही है ।

प्रश्न

1. राज्य के उच्चतम न्यायालय की न्यायिक प्रणाली का वर्णन करें ।
2. भारत में उच्चतम न्यायालय के अधिकार तथा शक्तियों का वर्णन करें ।
3. भारत में उच्चतम न्यायालय क्यों स्थापित किया गया ? इसकी बनावट, क्षेत्राधिकारों तथा शक्तियों का वर्णन करो ।

4. भारत के उच्चतम न्यायालय के प्रारम्भिक तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार में अन्तर वर्णन करो, और किस प्रकार उच्चतम न्यायालय नागरिक के अधिकारों की रक्षा करती है तथा सविधान की सुरक्षा करती है ?
5. इस न्यायिक प्रणाली में क्या-क्या मुख्य त्रुटियाँ हैं ?

Questions

1. Describe the judicial system of your State.
2. What are the powers and functions of a High Court in India ?
3. Why has the Supreme Court of India been established ? Give an account of its composition, powers and functions.
4. Distinguish between the original and appellate jurisdiction of the Supreme Court of India. How can the Supreme Court protect the fundamental rights of the people or defend the Constitution ?
5. What are the main defects in the judicial system of India ?

संघ और राज्यों के अधीन सेवार्ये

(Services under the Union and the States)

४६. लोक सेवार्ये का स्वरूप और महत्त्व (Character and Importance of Public Services)

मन्त्री और सेवार्ये (Ministers and the Services)—संसदीय शासन प्रणाली में, जिसे भारत में स्वीकार किया गया है, प्रशासन का अन्तिम उत्तरदायित्व जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों अर्थात् 'मन्त्रियों' के हाथों में रहता है। ये मन्त्री जनता द्वारा निर्वाचित विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होते हैं और इसलिए कहा जा सकता है कि परोक्ष रीति से जनता के प्रति ही उत्तरदायी होते हैं। इस तरह, यह निश्चित हो जाता है कि जनता अपने ऊपर अपने आप शासन करती है। लेकिन संघ में और राज्यों में दोनों ही स्थानों में मन्त्रि-परिपदों में केवल कुछ व्यक्ति ही होते हैं। उनके लिए यह असंभव है कि वे आधुनिक प्रशासन के विशाल और जटिल कार्य को व्यक्तिगत रूप से कर सकें। उन्हें अपने कार्य सम्पादन में ऐसे बहुत से स्त्री-पुरुषों से सहायता मिलती है जो 'लोक सेवार्ये' (Public Services) या, 'नौकरशाही' का निर्माण करते हैं। मन्त्री का मुख्य कार्य नीति की मोटी-मोटी रूप-रेखाएँ निश्चित करना और बड़े-बड़े निर्णयों को करना है। मन्त्री की नीति और निर्णयों को कार्यान्वित करना इन सेवार्ये का कार्य है। दूसरे शब्दों में मन्त्री निर्देश देता है, नियन्त्रण रखता है और अपने अधीनस्थ विभाग के कार्यकरण के लिए उत्तरदायी होता है। लेकिन, विभाग का वास्तविक कार्य सेवाएँ करती है। मन्त्री 'राजनीतिक' कार्यपालिका का निर्माण करते हैं। वे पहले राजनीतिज्ञ और बाद में प्रशासक होते हैं। अपने पदों पर जनता की इच्छा अर्थात् निर्वाचन के द्वारा पहुँच पाते हैं। निर्वाचन के बाद भी वे राजनीति के भवर जाल में फँसे रहते हैं। इसके विपरीत, लोक-सेवार्ये के सदस्य अ-राजनीतिक होते हैं। वे अपने मताधिकार के प्रयोग के अलावा राजनीति में कोई भाग नहीं लेते। वे किसी राजनीतिक दल के सदस्य नहीं होते। वे विधान-मण्डल की सदस्यता के लिए निर्वाचन में खड़े नहीं हो सकते। न उन्हें यही अधिकार है कि वे निर्वाचन में खड़े होने वाले अन्य प्रत्याशियों के पक्ष या विपक्ष में किसी प्रकार का प्रचार कर सकें। इन महत्वपूर्ण राजनीतिक विशेषाधिकारों से हाथ धोने के कारण लोक-सेवकों को पदावधि के स्थायित्व का लाभ रहता है। जहाँ वे एक बार नियुक्त हुए सदाचार पर्यन्त वे निवृत्ति-आयु आने तक अपने पद पर स्थिर रहते हैं। परिणामतः, जहाँ मन्त्रियों के भाग्य अपने दलों के साथ बनते-बिगड़ते रहते हैं, लोक-

सेवक जो भी दल सत्तारूढ़ हो, उसकी सेवा करने के लिए अपने पदों पर स्थित रहते हैं। इस अर्थ में वे स्थायी कार्यपालिका होते हैं।

अविशेषज्ञ और विशेषज्ञ (Amateurs and Experts)—इस सम्बन्ध में दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि मन्त्री अधिकार अविशेषज्ञ (Amateurs) होते हैं। उन्हें अपने अधीनस्थ विभागों की कोई जानकारी नहीं होती। हम ऐसे बहुत से दृष्टान्तों से परिचित हैं जब कि किसी वकील ने वित्त विभाग सम्हाला हो और विश्व-विद्यालय का कोई अध्यापक अचानक ही प्रतिरक्षा मन्त्री बन गया हो। जब ऐसे व्यक्ति मन्त्री बन जाते हैं, तब भी उन्हें इस बात का अवसर नहीं मिल पाता कि वे अपने विभाग की विशेष जानकारी प्राप्त करें। राजनीतिक नेता और विधानमण्डल के महत्त्वपूर्ण सदस्य होने के कारण उनका अधिकांश सदस्य तथा प्रशासनिक कार्यों में लग जाता है। परिणामतः, स्थायी लोक-सेवक प्रशासन को अपने विशेष ज्ञान और अनुभव से लाभान्वित करते हैं। इससे लोक-सेवकों का महत्त्व बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। यदि मन्त्री साधारण प्रतिभा का व्यक्ति होता है, तो वह अपने सेवकों के हाथों में खिलौना बन जाता है। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासन में लोक-सेवकों की कितनी महत्त्वपूर्ण स्थिति है और उनके चुनाव, प्रशिक्षण एवं नियंत्रण का प्रश्न कितना आवश्यक है।

४७. भारत में असेनिक सेवाओं का वर्गीकरण (Classification of Civil Services in India)

अखिल भारतीय और राज्य-सेवाएँ (All India and State Services)—भारत में असेनिक सेवाएँ दो प्रकार की हैं—(१) अखिल भारतीय सेवाएँ (All India Services) और (२) राज्य सेवाएँ (State Services)। अखिल भारतीय सेवाओं में वे अधिकारी शामिल हैं जो सघ-सरकार के अधिकार के अधीन भरती होते और कार्य करते हैं। इन सेवाओं के सदस्य ऊँचे से ऊँचे पद ग्रहण करते हैं। दूसरी श्रेणी में विभिन्न प्रकार की राज्य सेवाएँ हैं। राज्य सेवाओं के अधिकारियों की भरती राज्य लोक-सेवा आयोग के माध्यम से या अन्य प्रकार से करते हैं। वे सम्बद्ध राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में कार्य करते हैं।

४८. अखिल भारतीय सेवाओं की भरती (Recruitment of All Indian Services)

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् (Under British rule and since Independence)—ब्रिटिश शासन-काल में अखिल भारतीय सेवाओं में सुप्रसिद्ध 'इंडियन सिविल सर्विस' (भारतीय प्रशासन का फौलादी ढांचा), 'इंडियन पुलिस सर्विस', 'इंडियन मेडिकल सर्विस' और 'इंडियन फारेस्ट सर्विस' सम्मिलित थी। इन सेवाओं के लिए भरती करना भारत मन्त्री के हाथ में था। वह प्रतियोगी परीक्षाओं (Competitive Examinations) के आधार पर भरती करता था। इनसे कुछ नीचे दर्जे की 'इंडियन रेलवेज सर्विस', 'इंडियन पोस्ट्स एण्ड टेलीग्राफ्स सर्विस'

तथा 'इंडियन फारेस्ट सर्विस' थी। ये 'केन्द्रीय सेवाएँ' (Central Services) कहलाती थीं। इन सेवाओं के लिए नियक्तियाँ गवर्नर जनरल कुछ तो नाम-निर्देशन (Nomination) के द्वारा और कुछ प्रतियोगी परीक्षाओं (Competitive Examinations) के आधार पर संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार करता था। अब पुरानी आई. सी. एस. के लिए भरती समाप्त हो गई है। नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के लिए भरती संघ लोक सेवा आयोग की सिफारिशों के अनुसार करता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् पुरानी अखिल भारतीय सेवाओं का स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवाओं (Indian Administrative Services) ने ले लिया है। वे यह हैं—(1. Indian Foreign Service, Indian Audit and Accounts Service, Indian Defence Accounts Service, Indian Railway Accounts Service, Indian Customs and Excise Service, Indian Income-Tax Service (Class I), Transportation (Traffic) and Commercial Departments of the Superior Revenue Establishment of Indian Railways, Indian Postal Service (Class I), Military Lands and Cantonments Service (Class I & II), Central Engineering (Class I & II), Indian Railway Service of Engineers, Signal Engineering Department of the Superior Revenue Establishment of Indian Railways, Electrical Engineering Department of the Superior Revenue Establishment of Indian Railways, Mechanical Engineering and Transportation (Power) Department of the Superior Revenue Establishment of the Indian Railways, Telegraph Engineering Service (Class I), Telegraph Traffic Service (Class II), Military Engineering Service (Class I), Survey of India (Class I & II), Services and Central Secretariat Stenographers' Service.

भारत मन्त्री की सेवाओं के लिए विशेष गारन्टियाँ (Special guarantees to state secretary of states services)—भारत मन्त्री की सेवाओं (Secretary of State's Services) के कुछ सदस्य अब भी नौकरी में हैं। नये संविधान में उन्हें यह आश्वासन दिया गया है कि वे पहले जिन गारंटियों का उपभोग करते थे, वे उन्हें भविष्य में भी मिलती रहेंगी। इंडियन पुलिस सर्विस, इंडियन सिविल सर्विस और इंडियन मेडिकल सर्विस के सदस्यों से सम्बन्ध रखने वाले संविधान के ये उपबन्ध "जहाँ तक परिवर्तित परिस्थितियाँ अनुमति देती हैं, उन्हें वेतन, छुट्टी और पेन्शन के सहित सेवा की वही पुरानी शर्तें प्रदान करते हैं, जो संविधान के प्रारम्भ के पूर्व विद्यमान थी"।

४६. राज्य सेवाएँ (State Services)

राज्य सेवाओं का वर्गीकरण (Classification of State Services)—राज्य सेवाओं के दो भाग हैं—(1) राजपत्रित (Gazetted) और (2) अ-राजपत्रित या

अधीनस्थ (Non-Gazetted or Sub-ordinate)। राज्य सेवाओं में जो राजपत्रित पद हैं, उनके दो भाग और हैं—प्रथम श्रेणी (Class I) और द्वितीय श्रेणी (Class II)। छोटे पदों और नियमों में उल्लिखित अन्य पदों को छोड़कर शेष समस्त नियुक्तियाँ राज्यपाल या विभागीय अध्यक्ष प्रतियोगिता या चुनाव पर आधारित राज्य लोक सेवा आयोग (State Public Service Commission) की सिफारिशों के अनुसार करते हैं।

५०. लोक सेवा आयोग (Public Service Commission)

संघ लोक सेवा आयोग तथा राज्य लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission and State Public Service Commission)—भारत में लोक सेवाओं की भरती के लिए दो प्रकार के लोक सेवा आयोग (Public Service Commission) हैं—(1) संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commission) और (2) राज्य लोक सेवा आयोग (State Public Service Commission)। संघ लोक सेवा आयोग एक अध्यक्ष और ऐसे दूसरे सदस्यों से जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करता है, मिलकर बनता है। संविधान ने निश्चित किया है कि प्रत्येक राज्य के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा लेकिन यदि दो या अधिक राज्य चाहें, तो वे यह करार कर सकते हैं कि राज्यों के उस समूह के लिए एक ही लोक सेवा आयोग होगा। राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और दूसरे सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है, लेकिन यदि वह सयुक्त राज्य लोक सेवा आयोग है, तो अध्यक्ष और दूसरे सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। पंजाब का अपना एक पृथक् लोक सेवा आयोग है।

लोक सेवा आयोग के सदस्यों की योग्यताएँ और पदाविधि (Qualifications and Terms of Service)—चूँकि लोक सेवा आयोग का मुख्य कार्य लोक सेवाओं के लिए उचित व्यक्तियों का चुनाव करना है, अतः यह आवश्यक है कि उनके सदस्य प्रकण्ड विद्वान् और प्रगाढ़ अनुभवी हों। इस प्रयोजन के लिए संविधान ने निश्चित किया है कि प्रत्येक लोक सेवा आयोग के सदस्यों में से आधे ऐसे व्यक्ति होंगे जो अपनी नियुक्तियों की तारीख पर भारत सरकार या किसी राज्य सरकार के अधीन कम से कम दस वर्ष तक पद धारण कर चुके हैं। लोक सेवा आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति साधारणतया छ वर्ष के लिए होती है परन्तु किसी भी अवस्था में संघ लोक सेवा आयोग के सदस्य 65 वर्ष की आयु और सयुक्त तथा राज्य आयोग के सदस्य साठ वर्ष की आयु समाप्त होने के बाद अपने पद पर नहीं रहते। राष्ट्रपति आयोग के किसी सदस्य को उच्चतम न्यायालय द्वारा जाच करवा कर दुराचरण प्रमाणित होने पर अपदस्थ कर सकता है।

लोक सेवा आयोगों की सत्यनिष्ठा और स्वतन्त्रता (Integrity and Independence of Public Service Commissions)—यह अत्यन्त आवश्यक

है कि लोक सेवा आयोगों के सदस्यों में सत्यनिष्ठा, स्वतन्त्रता और निष्पक्षता पाई जाये। उनके सदस्य ईमानदारों और पक्षपात से ऊपर होने चाहिये। इसके लिए संविधान ने व्यवस्था की है कि इन आयोगों के समस्त व्यय जिनमें वेतन, भत्ते और पेंशने भी शामिल हैं, यथास्थिति संघ अथवा राज्यों की संचित निधियों में से दी जायेंगी। इसका अभिप्राय यह है कि आयोगों के सदस्यों की उपलब्धियाँ मत-निरपेक्ष (Non-Votable) होंगी। इसके अतिरिक्त, उन्हें सेवा की सुरक्षा दी गई है। आयोगों के सदस्य भ्रष्टाचार के शिकार न बन सकें, इसके लिए संविधान ने व्यवस्था की है कि वे अपनी सेवा-निवृत्ति के पश्चात् दूसरे आयोगों के सदस्य अथवा अध्यक्ष बनने के अलावा अन्य कोई सरकारी नौकरी न कर सकेंगे।

लोक सेवा आयोगों के कार्य (Functions of Public Service Commissions)—लोक सेवा आयोगों का मुख्य कार्य प्रतियोगी परीक्षाओं (Competitive Examinations) का संचालन करना और सरकारी पदों पर नियुक्ति के लिए प्रत्याशियों की सिफारिश करना है। संघ अथवा राज्य सरकार यथास्थिति, सरकारी सेवाओं की भरती, पदोन्नति और नियन्त्रण से सम्बद्ध रीतियों में, एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानान्तरण और असैनिक सेवाओं से सम्बन्ध रखने वाले अनुशासन विषयक समस्त मामलों में लोक सेवा आयोगों से परामर्श करती हैं। लोक सेवा आयोग सरकारी कर्मचारियों के हितों और अधिकारों की देखभाल करते हैं। असैनिक सेवाओं के सदस्य अपनी शिकायतों के निवारण के लिए उनके पास अपील कर सकते हैं। लोक सेवा आयोगों को **सेवाओं का संरक्षक** (Guardians of the services) ठीक ही कहा गया है।

लोक सेवा आयोगों की उपयोगिता (Utility of Public Service Commissions)—लोकतन्त्रात्मक राज्यों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है कि सरकारी सेवाओं के लिए नियुक्तियाँ लोक सेवा आयोगों के द्वारा होनी चाहिये। इस प्रथा से कई लाभ हैं। लोक सेवा आयोग स्वतन्त्र और निर्दल सस्थाएँ हैं। उनका उद्देश्य सरकारी सेवाओं को दलबन्दी के विषाक्त प्रभाव से पथक् रखना है। वे यह सुनिश्चित करते हैं कि सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर हो, न कि पक्षपात के आधार पर। लोक सेवाओं की ईमानदारी और सुचारुता कायम रखी जा सकती है क्योंकि लोक सेवा आयोग इस बात की व्यवस्था कर सकते हैं कि भरती, पदोन्नति और दण्ड के सम्बन्ध में लोक सेवकों के साथ न्यायानुकूल व्यवहार हो।

५१. भारत की विदेश सेवार्थ (Indian Foreign Services)

स्वतन्त्रता ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत के ऊपर कुछ नये उत्तरदायित्व आरोपित कर दिए हैं। अंग्रेजों के समय में भारत के वैदेशिक सम्बन्ध ब्रिटिश राजनयज्ञों (British Diplomats) द्वारा संचालित होते थे। यह सही है कि भारत लीग ऑफ नेशन्स (League of Nations) का और बाद में संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.)

का सदस्य था, और भारतीय प्रतिनिधि जब तब अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों (International Conferences) में भाग लेते थे। लेकिन, सुविज्ञात था कि भारत की विदेश नीति इंग्लैण्ड की विदेश नीति के साथ जुड़ी हुई है और विदेशों में भारतीय प्रतिनिधि जो कुछ बोलता था, वह ब्रिटिश सरकार की प्रतिध्वनि मात्र होता था। लेकिन 15 अगस्त, 1947 को भारत राष्ट्रों के समाज (Comity of Nations) में अपने अधिकार के बल पर शामिल हुआ। यद्यपि भारत राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) का सदस्य बना रहा, लेकिन इससे उसकी प्रभुसत्ता (Sovereignty) के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। फलतः, स्वतन्त्र भारत को दूसरे देशों में अपने हितों की रक्षा करने के लिए अपने राजनयज्ञ (Diplomats) भेजने पड़े। स्वतन्त्र भारत की अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत की वैदेशिक सेवाओं (Foreign Services of India) का द्रुत गति से विस्तार हुआ है। हमारे देश ने ससार के अधिकांश महत्वपूर्ण देशों में दूतावास (Legations) और वाणिज्य-दूतावास (Consulates) नियुक्त किये हैं।

उच्चतम राजनयज्ञ तथा विदेशी सेवाओं के अन्य सदस्य (Top ranking diplomats and other members of foreign services)—हमारी विदेश सेवाओं (Foreign Services) के शिखर पर उच्च राजनयज्ञ और वाणिज्य-अभिकर्ता (Consular Agents) हैं। राजदूत (Ambassadors), विशेष दूत (Envoys), प्रभारी अधिकारी (Charge-de-Affairs), महा-वाणिज्य दूत (Consul-Generals), वाणिज्य दूत (Consuls) और व्यापार आयुक्त (Trade Commissioners) आदि इसी श्रेणी में आते हैं। सरकार देश के प्रसिद्ध सार्वजनिक व्यक्तियों में से ही कुछ व्यक्तियों को इस पद पर नियुक्त करती है। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, डॉ० राधा-कृष्णन्, और सरदार के० एम० पणिकर आदि व्यक्ति इसके उदाहरण हैं। श्री वी० के० कृष्णा मेनन और वी० एन० राव जैसे पुरानी आई० सी० एस० (Indian Civil Service) के कुछ सदस्यों को भी उच्चतम राजनयिक पदों पर नियुक्त किया गया है। उच्चतम राजनयज्ञों (Top ranking diplomats) के नीचे जो हमारे दूतावासों के प्रधान होते हैं, विभिन्न श्रेणी के सचिव, परामर्शदाता, प्रेस, सांस्कृतिक और सैनिक सहचारी (Attaches), सार्वजनिक सम्पर्क अधिकारी (Public Relations Officer) आदि आते हैं। ये लोग संघ लोक सेवा आयोग (Union Public Service Commissions) द्वारा नियमित वैदेशिक सेवाओं (Regular Foreign Services) के लिए भरती किये जाते हैं और विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त विदेशों में भेजे जाते हैं।

प्रश्न

1. देश के प्रशासन में लोक-सेवाओं का क्या महत्त्व है ?
2. आप अखिल भारतीय सेवाओं से क्या अभिप्राय समझते हैं । इनकी भर्ती किस प्रकार होती है और इनको क्या हक हासिल है ?
3. भारत में लोक सेवा आयोग की रचना तथा उपयोगिता का संक्षिप्त वर्णन करें ।
4. भारत वैदेशिक सेवा क्या है ? इसका वर्णन करें ।

Questions

- 1 What is the place of public services in administration ?
2. What do you mean by All-India Services ? How are they recruited and what privileges do they enjoy ?
- 3 Give a brief account of the composition, and utility of Public Service Commission in India.
4. Write a notes on the Foreign Services of India

अध्याय ८

भारत की प्रतिरक्षा सेवाएँ

(India's Defence Services)

५२. भारत में प्रतिरक्षा का महत्त्व (Importance of Defence in India)

प्रतिरक्षा स्वतन्त्र भारत की सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है । देश की नवजात स्वतन्त्रता की न केवल बाहरी आक्रमण से ही रक्षा करनी है, प्रत्युत उसे अन्दर की विघटनकारी शक्तियों (Disruptive Forces) से भी बचाना है । स्वाधीन भारत को अपने विशाल भूमि और समुद्र सीमान्तों (Land and sea frontiers) की चौकसी रखनी है । ये सीमान्त पाँच देशों के सीमान्तों का स्पर्श करते हैं । वे देश हैं—पाकिस्तान, रूस, तिब्बत, चीन और बर्मा । भारत शान्तिप्रिय देश है । हमारे प्रधान मंत्री (Prime Minister) ने यह बार-बार कह दिया है कि उनकी विदेश नीति (Foreign Policy) का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सद्भावना (International peace and amity) के लिए कार्य करना और भारत को बड़े-बड़े देशों की गुटबन्दी (Power Blocks) से अलग रखना है । तथापि, इस नीति की अन्तर्निहित कठिनाइयों के बावजूद इस बात के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देते हैं कि भारत धीरे-धीरे आंग्ल-अमरीकी पक्ष (Anglo-American side) की ओर झुकता जा रहा है । यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यदि तीसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया, तो भारत उससे बिल्कुल अछूता रह सकेगा । इसके अतिरिक्त भारत की प्रतिरक्षा सम्बन्धी अपनी निजी समस्याएँ भी बहुत गम्भीर हैं । काश्मीर की समस्या का अभी तक समाधान नहीं हो सका है । यद्यपि भारत इस समस्या को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाना चाहता है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध की सम्भावना ही नहीं है । इससे यह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि भारत के लिए अपनी सशस्त्र सेनाओं को निरन्तर सावधान रखने की आवश्यकता है । यह भी आवश्यक हो जाता है कि भारत स्वयं को आधुनिक शस्त्रास्त्रों (Modern Armaments) से सुसज्जित रखे । यही कारण है कि आय का काफी भाग सेना पर खर्च हो रहा है यद्यपि इस समय भारत में शान्ति पुनर्निर्माण (Peaceful reconstruction) के कार्यों पर अधिक से अधिक धन खर्च करने की आवश्यकता है ।

५३. भारत की प्रतिरक्षा सेवाओं का संगठन (Organisation of India's Defence Services)

भारत की प्रतिरक्षा सेवाओं का संगठन बहुत कुछ वही है जैसा कि वह अंग्रेजों के शासनकाल में था । भारतीय सेना के तीन भाग (Wings) हैं—थलसेना (Army)

नौसेना (Navy) और वायुसेना (Airforce) भारतीय सेना के ये तीनों भाग अलग अलग कमानों (Commands) की अधीनता में हैं। अभी हाल में राष्ट्रीय छात्र सेना दल (National Cadet Corps), सहायक छात्र सेना दल (Auxiliary Cadet Corps), प्रादेशिक सेना (Territorial Army) और सहायक प्रादेशिक सेना (Auxiliary Territorial Army) या लोक सहायक सेना को देश की प्रतिरक्षा सेनाओं में सहायक सेनाओं के रूप में जोड़ दिया गया है।

अंग्रेजों के शासनकाल में प्रधान सेनापति (Commander-in-chief) गवर्नर जनरल की कार्यपालिका-परिषद् (Executive Council) का एक सदस्य होता था। वह सेना की नीति और प्रशासनिक नियन्त्रण दोनों के लिए उत्तरदायी होता था। स्वतन्त्रता के बाद यह व्यवस्था बिल्कुल बदल गई है। अब प्रतिरक्षा-सेवाएँ (Defence Services) प्रतिरक्षा मंत्री के अधिकार में हैं जो सेनाओं से सम्बन्ध रखने वाले सभी मामलों के लिए ससद् के प्रति उत्तरदायी है। जब 26 जनवरी, 1950 को नया संविधान लागू हुआ था, सेनाओं की सर्वोच्च कमान राष्ट्रपति में विहित की गई थी लेकिन उनके प्रशासनिक और संचालनात्मक नियन्त्रण (Operational Control) का उत्तरदायित्व प्रतिरक्षा मंत्रालय तथा तीनों सेनाओं के मुख्यालयों (Head Quarters) के अधिकार में बना रहा। एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि थल सेना, नौ सेना और वायु सेना के लिए एक अलग प्रधान सेनापति (Commander-in-chief) की नियुक्ति की गई है। अप्रैल 1955 के पश्चात् से इन तीनों सेनाओं के प्रधानों के नाम क्रमशः प्रधान सेनापति (Chief of the Army Staff) प्रधान नौ-सेनापति (Chief of the Naval Staff) और प्रधान वायु सेनापति (Chief of the Air Staff) हैं।

विभाजन के समय बहुत से लोगों को शंका थी कि अंग्रेज अधिकारियों के भारत से हटते ही भारत का प्रतिरक्षा-संगठन छिन्न-भिन्न हो जायेगा। लेकिन इस प्रकार की शंकायें निराधार सिद्ध हुई हैं। विभाजन के तुरन्त पश्चात् ही हमारी सेनाओं को दो महत्वपूर्ण कार्य करने पड़े थे। आन्तरिक शान्ति बनाये रखना और पाकिस्तान द्वारा प्रेरित एवं सहायताप्राप्त कबाइली आक्रमणकारियों से काश्मीर की रक्षा करना। जैसा कि हम को ज्ञात ही है, भारतीय सेनाओं ने इन समस्याओं का अत्यन्त योग्यतापूर्वक समाधान किया और अपने गौरव में चार चाँद लगाये। कुछ समय पूर्व भारत संयुक्त राष्ट्र संघ प्रत्यर्पण आयोग (United Nations Repatriation Commission) का अध्यक्ष निर्वाचित हुआ था। इस क्षमता में भारतीय सेनाओं ने चीनी और कोरियाई युद्धबन्धियों के प्रत्यर्पण (Repatriation) का, जो इन सैनिकों की इच्छानुसार हुआ था, निरीक्षण किया। भारतीय सेनाओं ने यह कार्य इतने कौशल के साथ किया कि इससे भारतीय सैनिकों की प्रतिष्ठा में अपार वृद्धि हुई। कोरिया की भाँति ही भारत हिन्द-चीन के लिए त्रि-राष्ट्र-निरीक्षण आयोग (Three-Nation-Supervisory Commission) का एक सदस्य चुना गया। इस युद्ध जर्जरित देश में शान्ति स्थापित करने के लिए भारतीय सैनिकों का पुनः आवाहन

हुआ। स्वेज नहर के संकट के समय मिस्र से इंग्लैण्ड और फ्रांस की सेनायें हटाने के लिए, संयुक्त राष्ट्र संघ की जो आपातकालीन सेनाएँ (United Nations Emergency Forces in Egypt) भेजी गई थीं, उसमें भारत की भी एक टुकड़ी शामिल थी। भारतीय सैनिकों ने यह सारा कार्य अतुल धैर्य एवं कौशल के साथ सम्पन्न किया।

५४. थल-सेना (Army)

इस वर्ष के बजट ने भारत की प्रतिरक्षा-सेवाओं (Defence Services) के लिए 2,52,70 लाख रुपये निश्चित किये हैं। अतः, यहाँ इन सेवाओं का जरा विस्तार से विवरण देना अप्रासंगिक न होगा। सेना तीन कमानों में बँटी हुई है—दक्षिणी कमान (Southern Command), पूर्वी कमान (Eastern Command) और पश्चिमी कमान (Western Command)। इनमें से प्रत्येक कमान लैफ्टिनेंट जनरल की श्रेणी के एक सेनाध्यक्ष (General Officer Commanding-in-Chief) के नियन्त्रण में रहती है। आगे कुछ क्षेत्रों (Areas) में बाँट दी जाती है। प्रत्येक क्षेत्र मेजर जनरल की श्रेणी के एक सेनाध्यक्ष के नियन्त्रण में रहता है। क्षेत्रों उप-क्षेत्र (Sub-areas) में बाँट दिये जाते हैं। प्रत्येक उप-क्षेत्र का प्रधान एक ब्रिगेडियर होता है।

थल-सेना का मुख्यालय (Army Headquarter) दिल्ली में है। वह प्रधान सेनापति की अधीनता में कार्य करता है। उसकी छः मुख्य शाखाएँ हैं : जनरल स्टाफ ब्राँच (General Staff Branch), एडजुटेंट जनरल स्टाफ ब्राँच (Adjutant General's Branch), क्वार्टर मास्टर जनरल स्टाफ ब्राँच (Quartermaster General's Branch), मास्टर जनरल ऑफ ऑर्डिनेंस ब्राँच (Master General of Ordnance's Branch), इंजीनियर-इन-चीफ ब्राँच (Engineer-in-chief's Branch) और मिलिटरी सेक्रेटरी ब्राँच (Military Secretary's Branch)।

जनरल स्टाफ ब्राँच में सैनिक कार्याहियों, सैनिक गुप्तचरों और सैनिक प्रशिक्षण आदि के कई निदेशालय (Directorates) हैं।

एडजुटेंट जनरल की शाखा में पाँच निदेशालय (Directorates) हैं—संगठन निदेशालय (Organisation Directorate), वैयक्तिक सेना निदेशालय (Personal Services Directorate), कर्मचारी-चुनाव निदेशालय (Selection of Personal Directorate), चिकित्सा-सेवा निदेशालय (Medical Services Directorate) और न्यायाधीश महाधिवक्ता निदेशालय (Judge Advocate General)।

क्वार्टर मास्टर जनरल के दो मुख्य निदेशालय (Directorates) हैं। एक निदेशालय तो देश के अन्दर और बाहर सैनिक कर्मचारियों और उनके सामने की रेल, समुद्र और वायु मार्गों द्वारा आने जाने की व्यवस्था करता है। दूसरा निदेशालय कर्मचारियों के लिए आवास की प्रबन्ध करता है। संभरण (Supply), परिवहन (Transport), अस्वों (Remounts), पशु (Veterinary) और फार्मों (Farms),

के निदेशालय (Directorates) भी क्वार्टर मास्टर जनरल (Quarter Master General) की अधीनता में है ।

मास्टर-जनरल ऑफ ऑर्डिनेंस (Master General of Ordnance) की अधीनता में दो प्रमुख विभाग हैं—ऑर्डिनेंस सर्विसेस का निदेशालय (Directorate of Ordnance Services) और विद्युत तथा यांत्रिक इंजीनियरों (Electrical and Mechanical Engineers) का निदेशालय । ऑर्डिनेंस कोर्प्स (Ordnance Corps) सेनाओं के लिए आवश्यक सभी प्रकार की प्रतिरक्षा-सामग्री का प्रबन्ध करती है । विद्युत और यांत्रिक इंजीनियरों के निदेशालय (The Electrical and Mechanical Engineers Directorate) का कार्य सेना के कार्य में आने वाली सभी प्रकार की यांत्रिक और विद्युत सामग्री की देखभाल रखना है जिसमें उसकी मरम्मत और निरीक्षण आदि भी शामिल है ।

प्रधान इंजीनियर (The Engineer-in-chief) इंजीनियर-वर्ग (Corps of Engineers) और सैनिक इंजीनियरी सेवा (Military Engineering Services) का प्रधान होता है । वह तीनों प्रधान सेनापतियों को इंजीनियरी से सम्बद्ध सभी मामलों पर जिनमें उनकी योजना और निर्माण भी शामिल है, सलाह देता है ।

सैनिक सचिव (The Military Secretary), अधिकारियों के व्यक्तिगत रिकार्ड रखता है । उनके पद-स्थापन (Posting) स्थानान्तरण (Transfer), पदोन्नति (Promotion), सेवा-निवृत्ति (Retirement) तथा उन्हें सम्मानसूचक पद (Honorary Ranks) देना भी उसी का काम है ।

५५. नौ-सेना (Navy)

हमारी नौ-सेना का विस्तार देश की आवश्यकताओं के अनुसार हुआ है । स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय नौ-सेना की प्रमुख विशेषता यह रही है कि उसका आधुनीकरण (Modernisation) बहुत तीव्र गति से हुआ है और उसके कर्मचारियों के प्रशिक्षण की बहुत अच्छी व्यवस्था हुई है ।

नौ-सेना का मुख्यालय दिल्ली में है । प्रधान नौ-सेनापति (Chief of the Naval Staff) की सहायता के लिए चार प्रमुख अधिकारी हैं । वे हैं : उप-प्रधान नौ-सेनापति (The Deputy Chief of the Naval Staff), सेविवृन्द प्रधान (The Chief of Personal), सज्जा प्रधान (The Chief of Material) और नौ-सेना उड़्डयन प्रधान (The Chief of Naval Aviation) । वह अपना कार्य चार संचालनात्मक और प्रशासनिक कमानों (Operational and Administrative Commands) के द्वारा करता है । इन कमानों में से एक तो समुद्र पर रहता है और तीन किनारे पर । वे हैं—(१) ध्वज अधिकारी (फ्लोटिला), भारतीय जहाजी बेड़ा, (२) कमांडोर-इन-चार्ज, बम्बई (Commander-in-charge, Bombay) (३) कमांडोर-इन-चार्ज, कोचीन और (४) नौ-सेना अधिकारी, विशाखापत्तनम् (Naval officer-in-charge, Vishakapatnam) ।

५६. वायु-सेना (Air Force)

प्रधान वायु सेनापति की सहायता के लिए तीन मुख्य अधिकारी हैं । ये तीन प्रमुख अधिकारी वायु सेना की तीन प्रमुख शाखाओं पर नियन्त्रण रखते हैं । ये अधिकारी हैं—उप-प्रधान वायु सेनापति (The Deputy Chief of the Air Staff), सेविवृन्द और संगठन प्रधान वायु अधिकारी (The Air Officer-in-charge Personal and Organisation) और तकनीकी तथा सामग्री व्यवस्था का प्रधान वायु अधिकारी (Air-officer-in-charge Technical and Equipment Services) । इन तीनों शाखाओं में से प्रत्येक के नियन्त्रण में कई-कई निदेशालय हैं ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् वायु सेना (Air Force) का पुर्नगठन हुआ है । इसके परिणामस्वरूप गत वर्ष कानपुर में एक साधारण कमान (Maintenance Command) की और स्थापना हुई है । वायुबल की दो शाखाओं का और निर्माण हुआ है । वे संचालनात्मक कमान (Operational Command) और प्रशिक्षण कमान (Training Command) हैं । वे क्रमशः पालम और बंगलौर में हैं ।

1952 में संसद् ने रिजर्व और ऑगजिलियरी एयर फोर्स एक्ट (Reserve and Auxiliary Air Force Act) पास किया था । इस अधिनियम के फलस्वरूप 1956 में तीन ऑगजिलियरी स्क्वैड्रन्स (Auxiliary Squadrons) की स्थापना की गई है । ये स्क्वैड्रन्स (Squadrons) क्रमशः दिल्ली, बम्बई और मद्रास में हैं । चौथा स्क्वैड्रन (Squadron) कलकत्ते में बन रहा है ।

वायु सेना राष्ट्रीय नेताओं और प्रमुख विदेशी अतिथियों की हवाई जहाजों से यात्रा की व्यवस्था करने के अलावा हवाई जहाजों द्वारा कोरियर्स (Courcers) का भी संचालन करती है । इसके द्वारा उसने देश के और इंग्लैंड तथा हिंदेशिया के महत्वपूर्ण वायुबल स्टेशनों (Air Force Stations) से सम्पर्क स्थापित कर दिया है । वायुबल ने 1956 में ल्हासा की यात्रा की थी और इस प्रकार तिब्बत के साथ सबसे पहली बार हवाई सम्पर्क जोड़ा ।

५७. प्रशिक्षण संस्थाएँ (Training Institutions)

भारत की थल सेना प्रशिक्षण के मामले में आत्मनिर्भर है । वायु-सेना और नौ-सेना इस उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हैं । तीनों सेनाओं के अधिकारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था निम्नलिखित संस्थाओं में है—

१. राष्ट्रीय प्रतिरक्षा अकादमी

(National Defence Academy)

राष्ट्रीय प्रतिरक्षा अकादमी (National Defence Academy) और जोइंट सर्विसेज विंग (Joint Services Wing) के मुख्यालय दिसम्बर, 1954 के अन्त में देहरादून से हटकर पूना के निकट खरकवसला चले गये । अकादमी में 1500

शिक्षार्थियों के रहने की व्यवस्था है । अकादमी में प्रवेश एक लिखित परीक्षा के आधार पर होता है । यह परीक्षा वर्ष में दो बार होती है और इसका संचालन संघ लोक सेवा आयोग (U. P. S. C.) करता है । परीक्षा देश के विभिन्न केन्द्रों में होती है ।

30 रुपये मास के जेब खर्च को छोड़कर शिक्षार्थियों का शेष सारा खर्च सरकार उठाती है ।

२. डिफेंस सर्विसेज स्टाफ कालिज

(Defence Services Staff College)

एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्था जहाँ सैनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है वेलिंगटन का डिफेंस सर्विसेज स्टाफ कालिज (Defence Services Staff College) है । यह संस्था अधिकारियों को इस तरह से प्रशिक्षित करती है जिससे कि वे दूसरी श्रेणी के पदों पर नियुक्त हो सकें और साथ ही कमान आदि के ऊँचे पद सम्हाल सकें । प्रति वर्ष तीनों सेनाओं के प्रायः 100 अधिकारियों को प्रशिक्षण मिलता है ।

३. सैनिक विद्यालय

(Army Schools)

विभिन्न शस्त्रास्त्रों में उच्च प्रशिक्षण देने के लिए थल सेना कई विद्यालय चलाती है । ये विद्यालय अहमदनगर, म्हू, देओलाली, जबलपुर, बरेली और मेरठ आदि में हैं ।

४. नौ-सेना प्रशिक्षण केन्द्र

(The Naval Training Centre)

प्रमुख नौ-सेना केन्द्र कोविन, विशाखापत्तनम् और वम्बई में हैं ।

५. वायु-सेना महाविद्यालय और विद्यालय

(Air Force College and Schools)

वायु सेना हवाई जहाज चलाने की शिक्षा देने के लिए दो महाविद्यालय चलाती है । पहला वायुबल महाविद्यालय बेगमपेट में है । यह विमान चालकों को प्रशिक्षण देता है । वायुबल का दूसरा महाविद्यालय जोधपुर में है । वह छात्र-विमान-चालकों को विमान चलाने का प्रशिक्षण देता है । यहाँ नेविगेटरों (Navigators) और जहाजी सिग्नलरों (Flight Signallers) की शिक्षा का भी प्रबन्ध है ।

कोडम्बेतूर का वायुबल महाविद्यालय विभिन्न भूमि कर्तव्यों (Ground Duties) के सम्बन्ध में अधिकारियों को प्रशिक्षण देता है । जलाहाली का तकनीकी

प्रशिक्षण महाविद्यालय (The Technical Training College at Jalahali) अधिकारियों को तकनीकी इंजीनियरी सिगनलों (Technical Engineering Signals), शस्त्रास्त्रों (Armaments) और विद्युत इंजीनियरी (Electrical Engineering) की शिक्षा देता है।

राष्ट्रीय छात्र सेना

(The National Cadet Corps)

राष्ट्रीय छात्र सेना (The National Cadet Corps) में स्कूलों और कालिजों के लड़के-लड़कियाँ शामिल हैं। सैनिक शिक्षण के परिणामस्वरूप वे अनुशासन सीखते हैं, नेतृत्व के गुणों का विकास करते हैं और जीवन का ज्यादा अच्छी तरह सामना कर सकते हैं। 1956 के अन्त में राष्ट्रीय छात्र सेना दल में 1,21,807 लड़के-लड़कियाँ प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

सहायक छात्र सेना

(Auxilliary Cadet Corps)

स्कूलों और कालिजों के जिन लड़के-लड़कियों को राष्ट्रीय छात्र सेना दल (National Cadet Corps) में प्रवेश नहीं मिल पाता, वे भी सैनिक शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी माँग को पूरा करने के लिए सहायक छात्र सेना (Auxilliary Cadet Corps) को प्रारम्भ किया गया है। इस सेना ने द्रुत गति से उन्नति की है। 1956 के अन्त में इसमें 5,60,000 लड़के-लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। यह सेना (Corps) देश के तरुणों को सहयोग, अनुशासन और देशभक्ति की शिक्षा देती है। यह सेना (Corps) संचालक, राष्ट्रीय छात्र सेना, प्रतिरक्षा मंत्रालय (Director, N. C. C., Ministry of Defence) की अधीनता में कार्य करती है।

प्रादेशिक सेना

(Territorial Army)

प्रादेशिक सेना (Territorial Army) का निर्माण अक्टूबर, 1949 में किया गया था। इसका उद्देश्य देश के तरुणों को खाली समय में सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर देना है। संकट के समय यह सेना देश के बहुत काम आ सकती है। यह नियमित सेना की अनुपूरक बन सकती है और आन्तरिक सुरक्षा का पूरा उत्तरदायित्व ले सकती है। प्रादेशिक सेना की सदस्यता का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि देश के बाहर जरूर जाना ही पड़े। 18 से 35 वर्ष तक की आयु का भारत का कोई भी समर्थ नागरिक प्रादेशिक सेना में शामिल हो सकता है। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षण है जो साल में तीस दिन तक चलता है। प्रशिक्षण प्राप्त करते समय या अन्य प्रकार से सेवायुक्त अधिकारी तथा अन्य श्रेणी के व्यक्ति वही वेतन तथा भत्ता प्राप्त करते हैं जो नियमित सेना (Regular Army) के तत्स्थानी पदों के व्यक्तियों को मिलता है।

लोक सहायक सेना (Lok Sahayak Sena)

सहायक प्रादेशिक सेना जिसे 1954 में राष्ट्रीय स्वयं सेवक सेना (National Volunteer Force) के रूप में पुनर्गठित किया गया था, अब लोक सहायक सेना (Lok Sahayak Sena) कहलाती है। इसका उद्देश्य 5 वर्षों में प्रायः 5,500,000 व्यक्तियों को सैनिक प्रशिक्षण देना है।

भूतपूर्व सरकारी कर्मचारियों (Ex-servicemen) को छोड़कर 18 से 40 वर्ष की आयु तक के शारीरिक दृष्टि से समर्थ सहायक सेना में शामिल हो सकते हैं। इस सेना की सदस्यता का यह परिणाम नहीं होता कि शिक्षण प्राप्त व्यक्तियों से सैनिक सेवा ली ही जाये। रंगरूटों को 30 दिन का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें निरक्षर व्यक्तियों को साक्षरता की भी शिक्षा दी जाती है।

प्रश्न

1. भारत की प्रतिरक्षा सेवाओं का संक्षिप्त वर्णन करें।
2. भारत की प्रतिरक्षा सेवाओं के संगठन में क्या अंग्रेजों के शासनकाल तथा आजकल में कुछ परिवर्तन हुआ? अगर ऐसा हुआ है तो इसे लिखें।
3. आजकल भारतीय सैनिकों को प्रशिक्षण देने के लिए कहाँ-कहाँ भारतीय सरकार ने संस्थाएँ खोल रखी हैं इनमें तीन का विस्तार से वर्णन करें।

Questions

1. Describe briefly the organisation of the Defence Services of India
2. In their any change in the organisation of Defence Services since the Britishers left India? If so gives its brief details.
3. Name the places where the Indian Government has opened Defence Academies for the training of soldier. Describe at least three of there.

ग्राम शासन और उसका संगठन

(Village Government and its Organisation)

५८. भारतीय ग्रामों के प्रकार (Types of Villages in India)

भारत को ग्रामों का देश कहा जा सकता है । निःसंदेह देश में कुछ बड़े-बड़े नगरों का विकास हो गया है, किन्तु अधिकांश जनसंख्या अब भी ग्रामों में निवास करती है । भारत में साढ़े पाँच लाख से अधिक ग्राम हैं, जब कि छोटे-बड़े नगरों की संख्या 2,400 के लगभग है । यह एक महत्वपूर्ण बात है । इसका अर्थ यह है कि देश की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में ग्रामों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है । या, यो कहिए कि सच्चा भारत गाँवों में ही मिलेगा । वस्तुतः ग्राम भारत के मेरुदण्ड हैं, और हमारे देश की समृद्धि भारी प्रमाण में उन पर ही निर्भर करती है ।

जमींदारी गाँव, रयतवारी गाँव तथा सहकारी गाँव (Zamindari Villages, Ryotwari Villages and Co-operative Villages)—भारतीय ग्राम तीन प्रकार के हैं । एक प्रकार के गाँव जमींदारी गाँव हैं । इनमें समस्त गाँव को जमींदार की सम्पत्ति माना जाता है । ग्राम का पूरा लगान निश्चित कर दिया जाता है और जमींदार उतने लगान का देनदार होता है । वह गाँव की भूमि किसानों को दे देता है और उनसे लगान वसूल करता है । इस प्रकार जमींदार किसानों और सरकार के बीच दलाल का काम करता है । वह अपनी सेवाओं के बदले में लगान का कुछ प्रतिशत प्राप्त करता है । बहुधा वह अनेक रूपों में किसानों से गैरकानूनी तौर पर नजराने आदि वसूल करता रहता है । भूतकाल में ऐसा बहुत अधिक होता रहा है । चूँकि जमींदारी-प्रथा का आधार जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण है, इसलिए उसे धीरे-धीरे मिटाया जा रहा है । अनेक प्रदेशों ने इस दिशा में सक्रिय कदम उठाकर जमींदारी का उन्मूलन करने के कानून बना लिए हैं । बिहार तथा उत्तर प्रदेश इस कार्य में सब प्रदेशों से आगे हैं । रयतवारी गाँवों में किसानों (रयत) और सरकार के बीच कोई मध्यवर्ती अभिकरण नहीं होता । किसान ही भूमि का मालिक होता है । वह जमीन को जोतता-बोता है और सीधे सरकार को लगान देता है । यह लगान उपज का 25 प्रतिशत से 33 प्रतिशत तक होता है । लगान का निर्धारण नियत अवधियों में होता रहता है । इस प्रकार के गाँव बम्बई, मद्रास और पंजाब में पाये जाते हैं । तीसरे प्रकार के गाँवों को संयुक्त या सहकारी गाँव कहा जाता है । इस प्रकार के गाँव बहुत कम हैं और केवल उत्तर प्रदेश में पाये जाते हैं । विभाजन के पूर्व पंजाब की नहरी बस्ती में भी इस प्रकार के गाँव थे । सहकारी गाँवों को ग्रामवासियों की

संयुक्त सम्पत्ति माना जाता है और वे व्यक्तिगत तथा संयुक्त रूप से उसका लगान पटाने के लिए जिम्मेदार होते हैं।

५६. भारतीय गाँवों की विशेषताएँ (Characteristics of Indian Villages)

उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक भारतीय गाँव न्यूनाधिक रूप में एक दूसरे से पृथक्, आत्मनिर्भर आर्थिक इकाई थे। उस समय तक यातायात-साधन और मार्ग बहुत दुर्गम और सकटजनक थे, इसलिए गाँव अपनी सब आवश्यकताएँ स्वयं ही पूर्ण कर लिया करते थे और दूसरे गाँवों से उनका प्रायः कोई सम्बन्ध नहीं था, कृषि-सम्बन्धी रायल कमीशन में प्रतिवेदन में निम्नलिखित शब्दों में ग्रामों की इस अवस्था का वर्णन किया गया है—

“प्रत्येक गाँव की प्रवृत्ति स्वात्म-निर्भर होने की है। प्रत्येक गाँव में ऐसे लोग पाये जाते हैं, जिनका भूमि पर स्थायी अधिकार है। यह अधिकारी या तो मालिक के रूप में है, या परम्परागत अधिकार प्राप्त लगानदार के रूप में। इनमें से कुछ अपनी सब भूमि जोतते हैं, अन्य अपनी कुछ या सब भूमि वार्षिक करार पर किसानों को लगान पर दे देते हैं। इनके नीचे के स्तर पर कृषि-मजदूर हैं। कुछ मजदूरों के पास लगान पर एक-दो खेत होते हैं, कुछ केवल कठिनाई आने पर खेतों में काम करते हैं। उनका मुख्य धन्धा चमड़े के जैसे काम पर सेवा-टहल करना होता है। बहुत ही छोटे गाँवों को छोड़कर शेष सबमें एक-दो कुशल कारीगर, बढ़ई और लोहार रहते हैं, जो सादे कृषि-औजारों, गाड़ियों तथा रट्ट आदि की मरम्मत करते हैं। एक दो दुकानें भी होती हैं, जिनमें गृहस्थी की आवश्यकता की वस्तुएँ मिल जाती हैं। ये दुकानदार लेन-देन करके अपनी आय बढ़ा लेते हैं।”

परन्तु बदलती हुई राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ ग्रामों की विलगता तथा आत्म-निर्भरता का अन्त कर रही हैं। यातायात के साधनों में द्रुत प्रगति ने उस आवरण को तोड़ दिया है, जो शताब्दियों से ग्रामों को एक दूसरे से पृथक् किये था। अब गाँवों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्ध बहुत बढ़ गए हैं। पड़ोस के गाँवों से उनका सामाजिक सम्बन्ध है, निकटतम रेलवे-स्टेशन, बन्दर-स्थान अथवा नगर से आर्थिक सम्बन्ध है। राजनीतिक दृष्टि से वे जिले के भाग बन गए हैं। तहसील तथा जिला-न्यायालयों के द्वारा राज्य और केन्द्रीय सरकार से मिल गए हैं। शिक्षा-प्रसार ने उनकी विलगता को दूर करने में बहुत सहायता पहुँचाई है। परन्तु यह स्मरणीय है कि यह सब परिवर्तन धीरे-धीरे हो रहा है और भारतीय ग्रामों का प्राचीन स्वरूप पूर्णतया लुप्त नहीं हुआ।

छोटे और बड़े नगरों की तुलना में ग्रामों का वातावरण सादगी तथा शान्ति से परिपूर्ण और आन्दोलनों से रहित है। शोर-गुल वहाँ नहीं है और न छल-छिद्र ही उतनी मात्रा में पाया जाता है। आधुनिक सभ्यता का रूप-रंग वहाँ शायद ही देखने को मिलता है। रेलवे-स्टेशन बहुत कम गाँवों में है। कभी-कभी इधर-उधर आती

जाती मोटरों या लारियाँ वहाँ की कच्ची सड़कों पर धूल उड़ाती अवश्य दृष्टिगत होती हैं। कहीं-कहीं बैटरी के रेडियो का संगीत भी कर्णगोचर हो जाता है। किन्तु समग्रतः भारतीय गाँवों का जीवन शान्तिमय और धूम-धाम से रहित है। राजनीतिक तूफान, जो शहरों को बहुधा विचलित करते रहते हैं, गाँवों तक कभी ही पहुँचते हैं। इस सस्वन्ध में भी प्राचीन रीति-नीति हटकर आधुनिक रीति-नीति के लिए स्थान प्रशस्त कर रही है, किन्तु इन सबकी गति बहुत मन्द है, जो प्रायः दिखलाई भी नहीं पड़ती। वहाँ का जीवन साधारणतः स्वरूप से प्रवहमान रहता है; केवल कभी-कभी आपसी झगड़ों या मेलों आदि की धूम-धाम से हलचल का परिचय मिलता है। वहाँ के निवासी सादा जीवन व्यतीत करते हैं। उनका भोजन और वस्त्र सभी सादा होता है। उनके घरों में आधुनिक सभ्यता के उपकरणों का दर्शन प्रायः नहीं होता।

प्राचीनता-प्रेम (Conservatism)—परिवर्तन की मंदता का मुख्य कारण भारतीय ग्राम-निवासियों का प्राचीनता-प्रेमी और रूढ़िवादी स्वभाव है। वे पुरानी प्रथाओं और परम्पराओं से इतने चिपटे हुए हैं कि परिवर्तन स्वीकार करना उनके लिए बहुत कठिन होता है। इसी कठिनता के कारण भारतीय ग्रामों ने देश के उत्थान-पतनमय इतिहास के वेगवान परिवर्तनों और राजनीतिक क्रान्तियों के बावजूद भारत की प्राचीन सभ्यता के मूलभूत तत्वों को सुरक्षित रखा है। भारतीय ग्राम-निवासी प्राचीन रीति-नीति के प्रेमी हैं और उनमें पश्चिमी विचारों तथा उत्साही सुधारकों के उपदेशों को स्वीकार करने की उत्सुकता नगर-निवासियों की अपेक्षा बहुत कम है। भारतीय ग्रामों के बारे में सर चार्ल्स मेकग्रॉफ ने लिखा है, “जहाँ कोई वस्तु स्थायी नहीं, वहाँ ये ग्राम स्थायी दिखलाई पड़ते हैं। राजवंश उलट-पुलट गए; क्रान्ति के बाद क्रान्ति हुई, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठे, सिक्ख और ब्रिटिश सब बारी-बारी से मालिक बने, परन्तु ग्राम-समाज (Village Self-Government) जैसा-का-तैसा बना है।” प्राचीन भारत में देश की अवस्था से ग्राम-समाज का उदय स्वाभाविक रूप से होता रहा। उनके अस्तित्व अथवा सगठन के स्वरूप का श्रेय शासकों को नहीं था। फलतः वे बहुत हद तक स्वशासन का उपयोग करते थे। केन्द्रीय शासन का अधिकार कर वसूल करने तक ही सीमित रहता, अपनी शेष व्यवस्था ग्राम ही करते थे। गाँवों की प्रवृत्तियों का नियन्त्रण और उनकी भलाई के कार्य करने वाली संस्था पंचायत कहलाती थी और यह परम्परागत होती थी। केन्द्रीय सरकार के पंचायत-कार्य में हस्तक्षेप करने की न तो इच्छा रखती थी और न उसके पास ऐसा करने के साधन ही होते थे। परन्तु ब्रिटिश काल की अति केन्द्रीकृत शासन-प्रणाली के अन्तर्गत इसमें परिवर्तन हो गया। पंचायतों का महत्व कम होने लगा। नये ब्रिटिश न्यायालयों ने उनके न्याय के अधिकार अपहृत (Withdraw) कर लिए। यद्यपि वे धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में सक्रिय योग प्रदान करती रहीं, फिर भी उनके हाथ में प्रशासनिक अधिकार नहीं रहे।

इस परिवर्तन के अनेक कटु परिणाम हुए। अतएव लार्ड रिपन के काल से उन्हें पुनरुज्जीवित करने के प्रयत्न आरम्भ किए गए। सब प्रान्तों में पंचायत-कानून

पास किये गए । परन्तु इस कार्य की गति तब तक अत्यन्त मन्द रही, जब तक कि देश के अधिकांश प्रान्तों में काँग्रेस का शासन स्थापित नहीं हो गया । काँग्रेस के प्रचार में पंचायती राज्य की पुनः स्थापना पर बहुत जोर दिया जाता था । फलतः, काँग्रेसी सरकारों ने प्रगति का वेग बढ़ाने के लिए पुराने पंचायत-कानूनों में संशोधन किये, या उनके स्थान पर दूसरे कानून बनाये । उत्तर प्रदेश में गाँव दुरुस्त 1848 बिल के अन्तर्गत पंचायतो को न्याय तथा प्रशासन के व्यापक अधिकार प्रदान किये गए हैं । और पंजाब ने भी उत्तर प्रदेश की पंचायत योजना के अधार पर 1950 एक ऐसी ही योजना बनाई है ।

कदाचित् वर्तमान भारतीय ग्रामों के सबसे निराशाजनक पहलू दरिद्रता तथा अशिक्षा के हैं । कृषि सदैव से भारत का मुख्य व्यवसाय रही है । किन्तु कुटीर-उद्योगों के नष्ट हो जाने के कारण इस पर अत्यधिक भार पड़ता गया । इसके कारण अब खेतों के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े हो गए हैं और उपज घट गई है । किसानों की औसत आय बहुत कम है । दरिद्रता ग्रामवासियों की पिछड़ी हुई स्थिति तथा अशिक्षा का कारण और परिणाम दोनों ही बन गई । हाल में सभी लोगो ने ग्रामों के सुधार की आवश्यकता महसूस की है । समस्त राज्यों में गाँवों की अशिक्षा का निवारण करने और ग्रामवासियों के रहन-सहन में सुधार करने की योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं ।

६०. भारतीय गाँवों का प्रशासन (Administration of the Indian Village)

गाँव भारतीय प्रशासन की मूलभूत इकाई है । पंजाब में ग्रामों के समूह को 'जैल' में संगठित किया गया है । बहुत से 'जैलो' के मिलने से तहसील बनती है । उनके ऊपर जिला है, जो अनेक तहसीलों को मिलाकर बनाया जाता है । अनेक जिलों के मिलने से राज्य बनता है, जो भारतीय गणराज्य का सबसे बड़ा प्रशासनिक उप-खण्ड है । इस प्रकार हमारे देश की प्रशासनिक पिरामिड में ग्राम का स्थान नीव पर है ।

गाँव के मुख्य कर्मचारी (Chief Village Functionaries)—ग्राम का दैनिक प्रशासन चार कर्मचारियों के हाथों में होता है, वे हैं लम्बरदार, पटवारी, जैलदार, और चौकीदार । इनके कर्तव्यों का विवरण इस प्रकार है—

लम्बरदार (Lamberdar)—प्रत्येक ग्राम में कम-से-कम एक लम्बरदार होता है, जो उसका मुख्य कार्यपालक अधिकारी है । भारत के विभिन्न प्रान्तों में उसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है । उत्तर भारत में उसे लम्बरदार या मुखिया कहा जाता है । बम्बई, हैदराबाद, मध्य प्रदेश, आदि दक्षिणी प्रदेशों में उसे पटेल और मद्रास में रेड्डी कहा जाता है । साधारणतः, 50 से 100 घरों तक के छोटे गाँव में एक लम्बरदार होता है । बड़े गाँवों में कई-कई लम्बरदार होते हैं, जो 'आला लम्बरदार' या 'सफेदपोश' के आधीन काम करते हैं ।

पंजाब में लम्बरदार को नियुक्त या पृथक् करने का अधिकार जिलाधिकारी को होता है । उसकी नियुक्ति करने में जिन बातों पर विचार किया जाता है, उनमें से कुछ ये हैं—उसकी सामाजिक स्थिति, परम्परागत अधिकार, परिवार द्वारा सरकार की की हुई सेवा-सहायता सम्पत्ति आदि । एक बार नियुक्त हो जाने के बाद जिलाधिकारी की अनुमति के बिना लम्बरदार अपने पद का त्याग नहीं कर सकता । यदि वह अपने कर्तव्य की उपेक्षा करे, अपनी सम्पत्ति खो दे, गाँव में आदतन अनुपस्थित रहे, या एक वर्ष अथवा अधिक के कारावास का दण्ड पाये तो उसे बरखास्त किया जा सकता है । उसे पारिश्रमिक के रूप में गाँव की आय का 5 प्रतिशत भाग दिया जाता है ।

लम्बरदार का मुख्य कर्तव्य गाँव से लगान वसूल करना और उसे जिले के खजाने में जमा करना है । गाँव में शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए उसे कुछ कानूनी अधिकार प्राप्त होते हैं । अनेक गाँवों में वही ग्राम-पंचायतों की बैठकों का अध्यक्ष बनाया जाता है । वह गाँव से एकत्रित कतिपय निधियों का प्रबन्ध भी करता है । वह फसल के निरीक्षण, गाँव की सीमा के अन्दर जमीन के उत्तराधिकारी कोई परिवर्तन आदि के रेकार्ड करने और जमीन के बन्दोबस्त के समय अधिकारों या रिकार्ड तैयार करने में राज व विभाग के अधिकारियों की सहायता करता है । वह सार्वजनिक भूमि तथा इमारतों पर गैरकानूनी कब्जा और उनके उपयोग के बारे में उच्च अधिकारियों को सूचनाएँ देता है पुलिस को गाँव के गुण्डों आदि की सूचना और अपराधों की जाँच में सहायता देना भी उसका काम है । गाँव में जो जन्म और मृत्युएँ होती हैं, उनकी सूचना भी वह पुलिस को देता है ।

पटवारी (Patwari)—को गाँव वाले सबसे महत्वपूर्ण ग्राम-कर्मचारी मानते हैं । वह राजस्व-प्रणाली का मेरुदण्ड है और इस हैसियत से उसे जो नगण्य वेतन मिलता है, वह निश्चय ही उसके कार्य के महत्व के अनुरूप नहीं होता । हर गाँव में एक-एक पटवारी नियुक्त कर देना सम्भव नहीं है । साधारणतः प्रत्येक तहसील को 2-2, 4-4 गाँवों के अनेक हल्को में बाँट दिया है और प्रत्येक हल्के के लिए एक-एक पटवारी नियुक्त कर दिया है । पटवारी कानूनगो के अधीन होता है और एक कानूनगो अनेक पटवारियों के काम की देख-रेख तथा अनुबन्ध करता है । पटवारी की नियुक्ति प्रतियोगिता परीक्षा लेकर राजस्व सहायक (Revenue Assistant) करता है और उसे हल्के का काम सौंपने के पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता है । उसे प्रतिमास 50 रुपये के करीब निश्चित वेतन दिया जाता है । पटवारी का मुख्य काम खेतों तथा फसलों का लेखा और अपने हल्के के भूस्वामियों की सूची रखना होता है । वह वार्षिक लेखा तैयार करता है, जिसे जमाबन्दी कहा जाता है । वह बैनंदिनी या रोजनामचा रखता है, जिसमें गाँवों में प्रतिदिन की घटित होने वाली सब महत्वपूर्ण घटनाओं का विवरण होता है । उदाहरणार्थ, वह वर्षा से गाँव में सर्वे के चिन्हों के लगाये जाने या मिटने, ओलों, बाढ़ों, या टिड्डियों से होने वाली फसलों की हानि और सरकारी अफसरों के

ग्राने-जाने आदि का लेखा रखता है । उसकी दैनंदिनी बहुत महत्त्वपूर्ण वस्तु मानी जाती है । राजस्व-विभाग के अधिकारियों के लिए वह जानकारी का खजाना ही है ।

उसके दूसरे कर्तव्य भी होते हैं । वह खेतों के नक्शे बनाता, तथा उनका संशोधन करता है, और भूमि का विभाजन तथा हस्तान्तरण तकावी, राजस्व तथा अन्य मूँगतानों की नियमित रिपोर्ट रखता है । कृषि-संकट के निवारण में उसकी पूरी सहायता प्राप्त की जाती है । उसका एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य ग्राम-पंचायतों, जिला बोर्ड, राज्य और संघ के चुनाव के लिए निर्वाचक-सूची बनाना भी होता है ।

चौकीदार (Chaukidar)—गाँव का तीसरा कर्मचारी है । उसकी नियुक्ति जिला-अधिकारी की सम्मति से लम्बरदार करता है । उसका वेतन उसके हल्के से सब घरों के निवासियों पर लगाये गए 'चौकीदारा' कर में दिया जाता है । उसका वेतन बहुत ही कम होता है, इसलिए उसे खेती, दुकानदारी या पशु-पालन द्वारा और आय कर लेने की अनुमति प्राप्त होती है । साधारणतः, एक गाँव के 50 से 100 मकानों तक के लिए एक चौकीदार होता है । यदि किसी गाँव में 5 या 5 से अधिक चौकीदार हों तो उनमें से एक को दफेदार या मुख्य चौकीदार बना दिया जाता है । चौकीदार लम्बरदार के विभिन्न कार्यों में उसकी मदद करता है । उसका मुख्य काम पहरे का है । वह गाँव में शान्ति तथा व्यवस्था कायम रखने में लम्बरदार को सहायता पहुँचाता है । अपराधों की सूचना देना भी उसका काम है । वह संदिग्ध (Suspected) अपराधियों को गिरफ्तार कर सकता है । अपराधियों का पता लगाने और उनकी जाँच करने में उसकी सहायता ली जाती है । उसे पखवारे में एक बार निकट के पुलिस-थाने में हाजिरी देनी पड़ती है । वह इस बीच गाँव में हुए जन्म-मरण की सूचना पुलिस को देता है ।

जैलदार (Zaildar)—चालीस या पचास गाँवों का एक जैल होता है, जिसका अधिकारी जैलदार कहलाता है । दक्षिण के मराठी प्रदेशों में इस अधिकारी को देशमुख कहा जाता है । जैलदार उस जैल के लम्बरदारों में से चुना जाता है । वह बहुत महत्त्व और प्रभाव वाला व्यक्ति होता है । उसके पारिश्रमिक की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं । कुछ स्थानों में उसे जैलदारी कर की आय प्राप्त होती है । कहीं-कहीं उसे उसके जैल से एकत्रित राजस्व का एक प्रतिशत दिया जाता है । जैलदार एक महत्त्वपूर्ण ग्राम-अधिकारी है । वह अपने जैल की भलाई के लिए उत्तरदायी होता है । वह अपने जैल के सब लम्बरदारों तथा पटवारियों के काम का निरीक्षण करता है और इस सम्बन्ध में ऊँचे अधिकारियों को नियमित रिपोर्ट देता है । जिले के राजस्व-प्रशासन में उसका स्थान बहुत महत्त्व का है । वह अपने जैल में राजस्व-अधिकारियों को पैमाइश (Survey), फसल-निरीक्षण, लेखा तैयार करने और लेखा-निर्धारण के कार्य में सहायता करता है । अपने हल्के में वह सड़कों को अच्छी अवस्था में रखने, प्राथमिक शालाओं के सुचारु संचालन और अकाल-सहायता-कार्य के लिए भी जिम्मेदार होता है । अपराधों की जाँच करने और अपराधियों को गिरफ्तार कराने में पुलिस को सहायता देना और सरकारी अफसरों के जैल का दौरा करने पर उनके साथ रहना भी उसका

काम है। इस प्रकार वह जेल में जनता तथा सरकार के सम्बन्धों में एक कड़ी का काम करता है।

पंजाब में जब काँग्रेस सत्तारूढ़ हुई, उस समय जेलदारी-प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया था। सरकार ने जनता की भावनाओं को संतुष्ट करने के लिए यह कार्यवाई की थी। परन्तु बाद में महसूस किया गया कि इस प्रथा को तोड़ देने से सरकार के हाथ से एक ऐसा माध्यम चला गया, जो दूर-दूर के गाँवों की अवस्था की सूचना जिला-अधिकारियों को दिया करता था। ये जेलदार समाज-विरोधी तत्त्वों को भी गिरफ्तार करने में पुलिस की सहायता किया करते थे। फलतः, पंजाब-सरकार ने एक नये नाम से इस प्रथा को पुनः स्थापित कर दिया। अब उन्हें 'सेवाराम' कहा जायगा।

प्रश्न

1. "भारत ग्रामों का देश है"—इसकी मीमांसा कीजिए और भारतीय ग्रामों के विभिन्न प्रकारों पर टिप्पणी लिखिए।
2. भारतीय गाँवों की मुख्य विशेषताएँ बताइए।
3. पंजाब के ग्रामों के मुख्य कर्मचारियों के कर्तव्यों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
4. संक्षेप में टिप्पणियाँ लिखिए—पटवारी, लम्बरदार और जेलदार।
5. आप अपने गाँवों को सुन्दर तथा स्वस्थ बनाने के लिये क्या करेंगे?

Questions

1. "Rural India lives in villages". Discuss this statement and write a short note on the different types of villages found in India.
2. Describe briefly the main features of a typical village in India.
3. Describe briefly the duties of the chief functionaries of a village in the Punjab.
4. Write short notes on (a) The Village Patwari, (b) The Headman and (c) The Zaildar.
5. What would you do to make your town or village more healthy and beautiful?

अध्याय १०

जिले का प्रशासन

(District Administration)

६१. भारत के मुख्य प्रशासनिक विभाग (Chief Administrative Divisions of India)

भारत एक विशाल देश है। उसे महादेश कहा जा सकता है। अंग्रेजों ने भारत में फूट कायम रखकर अपना शासन कायम रखने के लिए इसे 'देश' अथवा 'महादेश' न कहकर 'उप-महाखंड' (Sub-Continent) नाम देना लाभप्रद समझा। यदि 'उप-महाखंड' से भारत की केवल विशालता और स्मृद्धि का ही परिचय दिया गया होता तो वह नाम गौरव का हो जाता। किन्तु वास्तविक बात भिन्न है। उन्होंने इस नाम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारत एक राष्ट्र नहीं, वरन् अनेक राष्ट्रों का समूह है। इस प्रकार इस नाम से विलगता की भावनाएँ उत्पन्न करने तथा उन्हें स्थायी रखने का प्रयत्न किया गया, जो भारत के लिए हितकर नहीं है।

प्रान्त और राज्य (Provinces or States)—किसी भी अवस्था में, इतने विशाल देश का शासन एक केन्द्र से करना संभव नहीं है। अतएव प्रशासनिक दक्षता के लिए ब्रिटिश शासकों ने देश को अनेक प्रान्तों में विभाजित कर दिया। विभाजन के पूर्व के ब्रिटिश शासनाधीन भारत में गवर्नरों के ग्यारह और चीफ कमिश्नरों के पाँच प्रान्त थे। परन्तु प्रान्तों तथा अधिक छोटे विभागों में देश का बटवारा करके ब्रिटेन ने कोई नया काम नहीं किया। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में भी प्रायः इसी प्रकार के विभाग थे। उदाहरण के लिए अकबर के शासनकाल में देश अनेक 'सूबों' में विभाजित था और ये सूबे ब्रिटिश कालीन प्रान्तों के समान थे। प्रत्येक सूबे के भी अनेक छोटे विभाग कर दिए गए थे, जिन्हें सरकार कहा जाता था। ये वर्तमान जिलों के स्थान पर थे।

नये संविधान के आरम्भ होने से भारत एक राज्य-संघ बन गया है। पहले जो प्रान्त थे वे अब भारतीय राज्य-संघ के स्वशासित घटक बन गए हैं। अब उन्हें 'राज्य' (State) कहा जाता है। यही 'राज्य' पुराने देशी राज्यों और राज्यों के संघों के लिए भी प्रयुक्त होता है। इस समय भारतीय संघ में 15 राज्य हैं और 6 टैरीटोरिज (Territories)।

जिला और कमिश्नरी (Districts and Commissionaries)—ब्रिटिश भारत के प्रत्येक प्रान्त (अब राज्य) को अनेक कमिश्नरियों में और प्रत्येक कमिश्नरी को अनेक जिलों में विभक्त किया गया था। केवल मद्रास और उड़ीसा में कमिश्नरियाँ नहीं थीं। जिले में कई तहसीलें होती थीं, जिन्हें अनेक राज्यों में तालुका कहा जाता था। ये

विभाग अब भी जारी हैं। किन्तु अधिकतर प्रदेशों या राज्यों में कमिश्नरियों को तोड़ दिया गया है।

हमारे देश में जिले को सबसे महत्वपूर्ण प्रशासनिक इकाई माना गया है। वास्तव में वह हमारी प्रशासनिक शृङ्खला में सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। जिले की स्थापना का मुख्य हेतु राजस्व वसूल करना तथा कानून और व्यवस्था की रक्षा करना है। परन्तु अन्य सब प्रवृत्तियाँ भी जिले के केन्द्र में ही विकसित होती हैं। इस प्रकार जिला राजस्व-प्रशासन, दीवानी और फौजदारी न्यायालयों, शिक्षा, लोक-स्वास्थ्य तथा सफाई और ग्राम-विकास आदि की दृष्टि से एक पूर्ण इकाई होता है।

६२. कमिश्नर (Commissioner)

कमिश्नर के अधिकार और कर्तव्य (Powers and duties of a commissioner) कमिश्नर के क्षेत्र (कमिश्नरी या डिवीजन) में साधारणतः 7-8 जिले होते हैं। कमिश्नर जिला-अधिकारी (क्लेक्टर या डिप्टी कमिश्नर) तथा राज्य के प्रमुख के बीच मध्यवर्ती का कार्य करता है। वह अपने अधीनस्थ जिला-अधिकारियों के काम में अनुबंध स्थापित करता है और इस बात के लिए उत्तरदायी होता है कि उसके अधीनस्थ सब जिला-अधिकारी एक ही तरीके से सरकार की नीति को कार्यान्वित करें। इस प्रकार उसे अपने क्षेत्र के प्रशासन पर देख-रेख करने का सामान्य अधिकार होता है। मुख्यतः वह राजस्व (रेवेन्यू) अधिकारी होता है और जिला-अधिकारी के निर्णयों की अपील सुनता है। किन्तु दीवानी और फौजदारी मामलों में उसे कोई अधिकार नहीं होता। कुछ अन्य अधिकार भी उसे होते हैं। क्षेत्र की म्युनिसिपल कमेटियों, जिला-बोर्डों और ग्राम-पंचायतों के काम की देख-रेख करना और उन पर नियन्त्रण रखना उसका ही काम है। स्थानिक संस्थाओं को उसके ही मार्ग-दर्शन के अन्तर्गत अपना बजट और कार्यक्रम तैयार करना पड़ता है। बाढ़ और अकाल-जैसे प्राकृतिक संकटों के समय वह बहुत सहायता कर सकता है। “प्रान्तीय (राज्य की) सरकार ग्रामों से सम्बन्ध रखने वाले वित्तीय कानून बनाने में उसके परामर्श को बहुमूल्य समझती है। सिंचाई की योजनाओं, सड़कों तथा अन्य निर्माण-कार्यों (Development Works) के स्वीकार किये जाने के पूर्व उसके प्रतिवेदन (रिपोर्ट) की आवश्यकता होती है।”

आलोचना (Criticism of the office)—कमिश्नर के पद की बहुत आलोचनाएँ (Criticism) हुई हैं। लोगों का मत है कि यह पद व्यर्थ और शासन का व्यय-भार बढ़ाने वाला मात्र है। यदि इसे तोड़ दिया जाय तो प्रशासनिक दक्षता पर कोई बुरा प्रभाव न पड़ेगा। उल्टे व्यय में कमी हो जायगी। मद्रास और उड़ीसा में पहले से ही यह पद नहीं है। अन्य स्थानों पर भी जब कोई बात बिगड़ जाती है तो उसका उत्तरदायित्व डिप्टी कमिश्नर पर ही मढ़ा जाता है, फिर इसकी आवश्यकता क्या है? इसी आलोचना से प्रेरित होकर अधिकांश राज्यों में अब कमिश्नर का पद तोड़ दिया गया है।

६३. जिला-अधिकारी (District Officer)

भारत में जिला राज्यों की मुख्य प्रशासनिक इकाई है। उसके अधिकारी को कलेक्टर (जैसे मध्य-प्रदेश में) या डिप्टी कमिश्नर (जैसे पंजाब में) कहा जाता है। यह अधिकारी जिले के समस्त प्रशासन का उत्तरदायी होता है। विभाजन के पश्चात् पंजाब में केवल 13 जिले रह गए थे, अब पंप्सू के मिलने से फिर बढ़ गये हैं। जिला-अधिकारी, अपने पद के अनुसार, जिले के सब विषयों पर नियंत्रण रखता है। साधारणतः वह भारतीय प्रशासन सेवा (पहले की इण्डियन सिविल सर्विस) का सदस्य होता है। परन्तु प्रादेशिक प्रशासनिक सेवा के पुराने अधिकारी भी इस पद पर नियुक्त कर दिए जाते हैं। जिला-अधिकारी को उसके कर्तव्य-पालन में बहुत-से अधीनस्थ अधिकारियों की सहायता प्राप्त होती है।

जिला-अधिकारी के कर्तव्य (The Duties of the District Officer)—जिला-अधिकारी के कर्तव्य बहुविध होते हैं। वह जिले के प्रशासन का मेरुदण्ड (Back-bone) है और जिले के प्रशासन की सब शाखाओं के सुचारु संचालन के लिए जिम्मेदार होता है। उसे वह धुरी कहा जा सकता है, जिसके आस-पास जिले का समस्त शासन घूमता रहता है। डिप्टी कमिश्नर की स्थिति द्वैध होती है। वह कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट दोनों होता है। कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर की हैसियत से वह जिले से राजस्व विभाग का मुखिया होता है। वह लगान, उत्पादन कर तथा अन्य करों की-वसूली के लिए जिम्मेदार होता है। वह सरकारी सम्पत्ति और कोर्ट ऑफ वार्ड (Court of Wards) के अन्तर्गत सम्पत्ति की व्यवस्था करता है। वह जिले का रजिस्ट्रार भी होता है। इस हैसियत में वह भूमि का लेखा (Land Record) और फसलों आदि के उत्पादन का हिसाब रखता है। वह सम्पत्ति-विभाजन और खेतों के हस्तान्तर के पंजीकरण (Registration) पर नियंत्रण रखता है। वह मादक वस्तुओं (आबकारी) की दुकानों का नीलाम करना और शराब, अफीम, गाँजा और भंग-जैसे मादक पदार्थों की बिक्री के लिए लाइसेंस देता है। अकाल में सहायता करना, किसानों को ऋण दिलाना, ग्राम पुनर्रचना और सिचाई आदि की जिम्मेदारी भी उस पर ही रहती है।

जिला-अधिकारी जिला-मजिस्ट्रेट (District Magistrate) भी होता है। न्यायाधिकारी की हैसियत से उसे प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश का अधिकार होता है। फौजदारी मुकदमों में उसे मुकदमा और अपील दोनों सुनने का अधिकार होता है। वह दूसरी और तीसरी श्रेणी के न्यायाधीशों के निर्णयों की अपील सुनता है। वह जिले के मजिस्ट्रेटों में, जिनमें अवैतनिक (Honorary) मजिस्ट्रेट भी सम्मिलित हैं, प्रमुख होता है और अन्य मजिस्ट्रेटों के काम का निरीक्षण करता है। परन्तु जिला मजिस्ट्रेट की हैसियत से उसके कार्य-पालक कर्तव्य बहुत अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें ही उनका अधिकांश समय और शक्ति लगती है। वह जिले में शान्ति और व्यवस्था (Law and Order) का जिम्मेदार होता है। इस हैसियत से वह जिले के पुलिस

बल की सहायता ले सकता है। पुलिस सुपरिंटेंडेंट उसके आदेशों के अनुसार कार्य करता है और उसे जिला-अधिकारी को अपने जिले की शान्ति-व्यवस्था-सम्बन्धी स्थिति से अवगत रखना पड़ता है। जिला मजिस्ट्रेट ही सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों, मेलों और उपद्रवों आदि का प्रबन्ध करता है, जिला-अधिकारी जिले की स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं के कार्य पर भी न्यूनाधिक रूप में देख-रेख तथा नियन्त्रण रखता है। ये संस्थाएँ म्यूनिसिपैलिटियाँ, जिला-बोर्ड और ग्राम-पंचायत आदि हैं। पलांडे (Palande) के शब्दों में, “यह देखना भी इसका कर्तव्य है कि स्थानिक संस्थाएँ सफाई के मामलों में—विशेषतः संक्रामक रोगों (Infections diseases) के फैलने पर—उचित कार्रवाईयें करती हैं।”

जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उतने में ही जिला-अधिकारी के कर्तव्य पूरे नहीं हो जाते। न्यूनाधिक रूप में वह जिले के प्रशासन की अन्य सब शाखाओं पर भी नियन्त्रण रखता है, यद्यपि सब शाखाएँ सीधी उसकी अधीनता में नहीं होतीं। वह जिले की जेलों, सुधार-गृहों (Reformatories), पागलखानों और अनाथालयों या गरीब घरों के काम की भी देख-रेख करता है। इसके अतिरिक्त जिले के सब विभागीय प्रमुखों—एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, सिविल सर्जन, फारेस्ट-अफसर, स्वास्थ्य-अफसर, जिला-शिक्षा इन्स्पेक्टर आदि—को अपने विभागों के कार्य से उसे परिचित रखना पड़ता है।

६४. जिला-अधिकारी को न्याय और कार्य-पालन के अधिकार (Combination of Executive and Judicial Powers in the District Officers)

जिला-अधिकारी के पद की विशेषताओं में एक यह है कि उसे न्याय तथा कार्य-पालन दोनों के अधिकार होते हैं। वह जिले में शासन-व्यवस्था कायम रखने के लिए जिम्मेदार है। पुलिस का प्रमुख होने के नाते वह अपने कार्यपालक अधिकार से किसी भी ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी और उस पर मुकदमा चलाने का आदेश दे सकता है, जो फौजदारी कानून को भंग करने का अपराधी हो या जिसकी प्रवृत्तियों से सार्वजनिक शान्ति के विक्षुब्ध होने की सम्भावना हो। न्यायपालक-अधिकार से वह उस मुकदमे को जिले के किसी भी मजिस्ट्रेट को सौंप सकता है, या स्वयं भी सुन सकता है। इस प्रकार जिला-अधिकारी अभियोक्ता और न्यायाधीश दोनों का काम करता है। यह अधिकार पृथक्करण-सम्बन्धी प्रसिद्ध सिद्धान्त के भंग (A violation of the principle of separation of powers) का ज्वलन्त उदाहरण है। इस सिद्धान्त के अनुसार, एक ही व्यक्ति को न्याय और कार्य-पालन दोनों के अधिकार सौंप देने से न्याय नहीं हो सकता और न स्वतन्त्रता का ही संरक्षण हो सकता है। उदाहरण के लिए कोई जिला-अधिकारी किसी ऐसे व्यक्ति पर भूठे अपराध पर मुकदमा चलाने का आदेश दे सकता है, जिसके साथ उसका व्यक्तिगत द्वेष हो। फिर वह स्वयं मुकदमा सुनकर अपने रोष के उस निर्दोष शिकार को अधिकतम दण्ड दे सकता है। इस प्रकार अपने द्वैध अधिकार के बल पर वह उत्पीड़क की पूर्ण हिंसा

के साथ व्यवहार कर सकता है। यह भारतीय प्रशासन-प्रणाली की एक असंगत वस्तु है। देश का राष्ट्रवादी लोक मत सदैव इसका विरोधी रहा है। 1989 में कुछ प्रमुख न्याय-अधिकारियों ने ब्रिटेन के भारत-मन्त्री को एक जोरदार पत्र लिखकर इस प्रथा का विरोध किया था। 40 वर्ष बाद उनके उस विचार का साइमन कमीशन ने समर्थन किया। ब्रिटिश शासनकाल में कुछ लोग द्वैध अधिकार-प्रणाली (Arguments in Favour of Status quo) के समर्थक थे। वे तीन कारण बताया करते। पहला कारण यह बताया जाता है कि भारत में अब तक अनुचित कार्य कराने वाले को दण्ड दिलाने के पक्ष में पर्याप्त लोकमत का निर्माण नहीं हुआ। दूसरा कारण यदि जिला-अधिकारी का न्याय-पालक अधिकार छीन लिया गया तो उसकी सत्ता तथा प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचने का भय है। फलतः, वह अभी के समान प्रभावशाली तरीके पर शासन-व्यवस्था की रक्षा नहीं कर सकेगा। तीसरे, दोनों अधिकारों को पृथक् करने से खर्च बहुत बढ़ जायगा, क्योंकि इसके लिए दोहरे अधिकारी रखने पड़ेंगे।

पृथक्करण के पक्ष में तर्क (The case for separation of powers)—परन्तु स्पष्ट है कि ये तर्क निराधार हैं। उलटे, जिला-मजिस्ट्रेट से न्यायालय का अधिकार अलग कर देने के लिए साफ कारण मौजूद हैं। पहले तो दोनों अधिकारों को एक ही व्यक्ति के हाथ में सौंपना कार्य के स्वरूप की ही दृष्टि से अनुचित है। उनके लिए दो भिन्न प्रकारों की मानसिक तैयारी और दृष्टिकोण की आवश्यकता है। यह दोनों किसी एक ही अधिकारी में एक साथ नहीं हो सकते। दूसरे, दोनों अधिकारों के एक ही व्यक्ति को प्रदान कर दिए जाने से बहुधा अत्याचार एवं उत्पीड़न को अवसर प्राप्त होता है। न्यायपालक और कार्यपालक दोनों की हैसियत होने के कारण जिला-अधिकारी बहुधा व्यक्तियों तथा संस्थाओं के साथ संघर्ष में फँस जाता है। जिला-मजिस्ट्रेट की हैसियत से उसे उनके विरुद्ध अपने न्यायाधिकारों को दुरुपयोग करने का लोभ हो सकता है। उसके व्यक्तिगत राग-द्वेष से उसकी न्याय-बुद्धि दब सकती है। इस प्रकार वर्तमान व्यवस्था जिला-अफसर को न्याय और कार्यपालक दोनों बनाकर अनेक अन्यायों की मूल बन जाती है। वह अभियोक्ता (Prosecutor) और न्यायाधीश दोनों होता है। साथ ही, जनता को प्रशासन पर शंका तथा अविश्वास की दृष्टि रखने का अवसर मिलता है। इसलिए, निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि जिला-अधिकारी न्याय का अधिकार त्याग दे और केवल प्रशासन में अपना ध्यान जगाये तो उसकी प्रतिष्ठा घटेगी नहीं, बल्कि बढ़ेगी। जहाँ तक आर्थिक कठिनाई का प्रश्न है, वह आवश्यक सुधार के मार्ग में आड़े नहीं आनी चाहिए। अब भारतीय गणराज्य के संविधान में इन दोनों अधिकारों के पृथक्करण का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है, अतएव आशा है कि जल्द या देरी से यह न्यायपूर्ण सुधार अवश्य हो जायगा। मद्रास में इसके लिए कदम उठाये जा चुके हैं और दूसरे प्रदेश भी जल्दी ही इस ओर ध्यान देंगे।

६५. जिला-अधिकारी का महत्त्व (The Importance of the District Officer)

जिला-अधिकारी को भारतीय नौकरशाही का सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी बताया गया है, और यह उचित ही है। जिला हमारे देश की प्रशासन-शृङ्खला में एक अति महत्त्वपूर्ण कड़ी (The Pivot of the District Administration) है और जिले के प्रशासन में जिला-अधिकारी का स्थान केन्द्रीय है। जिले की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ उसके ही आस-पास होती हैं और उसकी सत्ता तथा प्रभाव व्यापक होता है। उसके अधिकार और कर्त्तव्य इतने विविध (Varied Duties) होते हैं कि “उसके ही हाथों में जिले के प्रशासन के समस्त सूत्र एकत्रित हो जाते हैं।” वह जिले के प्रायः सब सरकारी विभागों की देख-रेख और नियन्त्रण करता है। इसे पुलिस, न्यायपालिका, जेल, राजस्व, प्रशासन, शिक्षा, लोक-स्वास्थ्य तथा सफाई और स्थानिक राजस्व सस्थाओं आदि से सम्बन्धित अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। बहुमुखी प्रतिभा (Versatile Ability) न होने पर कोई जिला-अधिकारी अपने कर्त्तव्यों का पालन उचित रीति से नहीं कर सकता। सर फिलिप हंटर ने अपने काल के जिला-अधिकारियों का जो विलक्षण वर्णन किया था, वह आज भी बहुत-कुछ सही उतरता है, यद्यपि अब बहुत से परिवर्तन हो गए हैं। इस वर्णन के अनुसार, “जिला-अधिकारी एक राजस्व अधिकारी है, जिसकी जिम्मेदारी राजस्व वसूल करना है। वह राजस्व और फौजदारी मामलों का प्रथम श्रेणी का न्यायाधीश भी है, जिसे मौलिक तथा अपील-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त होते हैं। पुलिस, जेल, शिक्षा, म्युनिसिपैलिटियाँ, सड़कें, सफाई, अस्पताल, स्थानिक कर और राजस्व उसके लिए दैनिक चिन्तन के विषय होते हैं। उससे जनता के सार्वजनिक जीवन और देश के प्रत्येक प्राकृतिक पहलू से परिचित रहने की अपेक्षा की जाती है। उसे वकील, अकाउण्टेंट, वित्तशास्त्री, और राज्य के कागजात को तुरन्त लिख सकने वाला होना चाहिए। उसे कृषि, राजनीति और इंजीनियरिंग का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए।”

जनता और सरकार के बीच सम्पर्क-स्थापक (The Chief link between the People and the Government)—जिला-अधिकारी जिले में सरकार का मुख्य प्रतिनिधि है। वह अपने जिले की जनता तथा सरकार के बीच सम्पर्क का माध्यम है। वह प्रतिदिन जनता के सम्पर्क में रहता है, इसलिए उसकी स्थिति और समस्याओं के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान रखता है। इनकी सूचना वह सरकार को देता है। “जिला-अधिकारी जिले में प्रादेशिक सरकार की आँखें, कान, मुख, और हाथ है।” ब्रिटिश-काल में वह दरबार करता था, जिसमें जिले के धनी-मानी लोग एकत्रित होते थे। वह उपाधियों और जागीरों के लिए लोगों की सिफारिश करता था। संक्षेप में वह जिले का ‘नवाब’ (Grand Mughal) था। स्वतन्त्रता के बाद इसकी शान कुछ कम हो गई है। परन्तु अब भी उसका महत्त्व बहुत है। स्थानिक अधिकारी होने के कारण उसे जिले के काम-काज में थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता और पहल करने का

अधिकार होता है। स्वाभाविक है कि जनता उसे राज्य का प्रतिनिधि, 'सरकार' या राज्य के अधिकार के प्रतीक के रूप में पहचानती है। बाढ़, दुष्काल, टिड्डियों के आक्रमण और अन्य प्राकृतिक उत्पातों के समय मार्ग-दर्शन तथा सेवा-सहायता के लिए जनता उसकी ओर ही देखती है। साधारण और विशेषतः ग्रामीण जनता जिला-अधिकारी को अब भी 'माई-बाप' ही समझती है।

६६. स्वतन्त्रता के बाद स्थिति में परिवर्तन (The change in the District Officer's Position brought about by Independence)

ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रिटिश शासनकाल में जिला-अधिकारी (Real Ruler) असली शासक माना जाता था। जनता उसकी ही सत्ता को प्रत्यक्ष रूप में महसूस करती थी। गवर्नर तथा गवर्नर-जनरल-जैसे उच्चतर अधिकारी जनसाधारण की पहुँच और पुकार के लिए बहुत दूर के लोग थे। वे ऊँचे-ऊँचे शासन-अधिकारों पर अवश्य आसीन रहते थे, किन्तु जनता उनका अनुभव प्रायः नहीं के समान करती थी। वह उनके अस्तित्व को महसूस नहीं करती थी। परन्तु जिला-अधिकारी का प्रभाव उन्हें कदम-कदम पर दिखलाई पड़ता था। वह ब्रिटिश सरकार की शक्ति का प्रतीक था। जनता उसके पास ही अपने दुखड़े रोने और अपनी शिकायतें दूर कराने के लिए जाती थी। उसी से संकट में त्राण और कष्ट में न्याय की वह आशा करती थी। जिला-अधिकारी उसके जिले का सच्चा शासक था।

उस समय जिला-अधिकारी की विशेषता यह थी कि वह जनता से बहुत दूर और अलग रहता था। वह जनता का 'माई-बाप' और शासक था, परन्तु उसमें से एक नहीं था। वह उससे अलग और उससे ऊपर रहता था। वह एक ऐसा राजा था, जिसके पास हाथ जोड़कर और श्वास रोककर जाना पड़ता था। जिला-अधिकारियों को जनता से अलग रहने की शिक्षा दी जाती थी, जिससे वे जनता पर अपना आतंक कायम रख सकें। औसत दर्जे के जिला-अधिकारी का लक्ष्य जनता का प्रेम प्राप्त करने की अपेक्षा उस पर आतंक कायम रखना अधिक होता था। ऐसा माना जाता था कि इससे वह कठोरतापूर्वक शासन करने, शासन-व्यवस्था की रक्षा करने और ब्रिटिश राज्य की सत्ता को अक्षुण्ण रखने में समर्थ होगा।

स्वतन्त्रता के उदय के बाद से जिला-अधिकारी की स्थिति में स्पष्ट अन्तर हो गया है। सैद्धान्तिक दृष्टि से उसके अधिकारों में कोई कमी नहीं हुई। फिर भी सामान्य वातावरण में क्रान्ति हो गई है और जिला-अधिकारियों को अपने-आप में परिवर्तन करना पड़ा है। ब्रिटिश काल में उसके आस-पास शानो-शीकत का जो नजारा रहता था, वह न्यूनाधिक रूप में विलुप्त हो गया है। स्वतन्त्र भारत में सरकारी नौकरों को जनता का सेवक माना जाता है, शासक (Servant and not the ruler) नहीं। श्री जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था कि मैं भारत का प्रथम मन्त्री ही नहीं, प्रथम सेवक भी हूँ। प्रधान मन्त्री का यह रुख होने के कारण

जिला-अधिकारी को अपने ऊँचे आसन से नीचे उतरना पड़ा है और 'बड़े साहब की मनोवृत्ति' छोड़नी पड़ी है।

इस परिवर्तन के फलस्वरूप वह खाई अब कम चौड़ी होने लगी है, जो जनता तथा जिला-अधिकारी के बीच में पड़कर दोनों को पृथक् रखती थी। फिर भी इस तथ्य का एकदम साधारणीकरण करना सम्भव नहीं है। यह बात केवल इस हद तक कही जा सकती है कि औसत दर्जे का जिला-अधिकारी अब जनता को समझकर उसके साथ व्यवहार करने का प्रयत्न करता है। पहले की अपेक्षा अब अधिक सरलता से जनता उसके पास जा सकती है। अब वह ब्रिटिश नौकरशाही के समान अहंकार से काम नहीं लेता। अब वह एक लोकप्रिय सरकार का अंग है, विदेशी सरकार के दमन का पुर्जा नहीं, जिसके द्वारा वह जनता पर आतंक छाये रखती थी। अधिकांश जिला-अधिकारी अब महसूस करने लगे हैं कि वे जनता के सेवक हैं और अब उनके काम का निर्णय उनके अधिकार के आधार पर नहीं, सेवा के आधार पर किया जाता है। इस परिवर्तन का मुख्य कारण यह है कि स्वतन्त्रता के उदय के साथ सत्ता नौकरशाही के हाथ से जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में चली गई है। जो मन्त्री अब केन्द्र तथा राज्यों के शासन का नियन्त्रण करते हैं, वे लोकप्रिय शासक और जनता के लोग हैं। वे जनता से शक्ति प्राप्त करते हैं और अन्ततः उसी के प्रति उत्तरदायी हैं।

जिला-अधिकारी और विधान सभा-सदस्य (The District Officer and the M. L. A.)—चुने हुए प्रतिनिधियों का महत्व स्थायी अधिकारियों से अधिक है, इसे जिले के डिप्टी कमिश्नर तथा विधान-सभा-सदस्य की स्थिति में तुलना करने से जाना जा सकता है। अब सरकार तथा जनता के बीच सम्बन्ध जोड़ने का बहुत-कुछ दायित्व डिप्टी कमिश्नर से हटकर विधान-सभा-सदस्य के ऊपर पहुँच गया है। अब जनता अपनी शिकायतें लेकर उसके पास ही जाती है, और जिला-अधिकारी के विरुद्ध भी उससे ही शिकायत करती है। जिला-अधिकारी को विधान-सभा-सदस्य की बात सुननी पड़ती है, क्योंकि सदस्य सीधे मन्त्रियों के पास पहुँच सकते हैं। जिला-अधिकारियों ने अनेक बार शिकायतें की हैं कि विधान-सभा के सदस्य, विशेषतः वे जो शासक दल के सदस्य हैं, शासन कार्य में बहुत अधिक हस्तक्षेप करते हैं। कुछ मामलों में यह शिकायत उचित भी थी। जिला-अधिकारी को जिले के प्रशासन का दायित्व वहन करना पड़ता है, विधान-सभा-सदस्य केवल आलोचना और दोषावेषण करता है। विधान-सभा-सदस्य पर उत्तरदायित्व नहीं होता, किन्तु उसे अधिकार और अग्रत्यक्ष प्रभाव का बल रहता है।

६७. जिला-प्रशासन का संगठन (The Organisation of District Administration)

हमें ज्ञात हो गया है कि भारतीय प्रशासन की इकाई जिला है और उसका कार्य-पालक जिला-अधिकारी होता है, जिसे प्रान्त-भेद के अनुसार डिप्टी कमिश्नर या कलक्टर कहते हैं। वह अपने निश्चित कार्यों के अतिरिक्त समस्त जिले के

प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। जिले के स्थान में अन्य विभागों का केन्द्र भी रहता है, जो जिले के अन्दर कार्य करते हैं। इन विभागों के प्रमुख—जैसे, पुलिस सुपरिटेण्डेंट, सिविल सर्जन, दौरा जज, एक्जीक्यूटिव इंजीनियर आदि—अपने-अपने विभागों के उच्चाधिकारियों के अधीन काम करते हैं, किन्तु जिला-अधिकारी इनके विभागों का भी निरीक्षण और कुछ हद तक उनकी नीतियों को प्रभावित करता है। वह सब विभागों के काम में अनुबन्ध भी स्थापित करता है। इन सब अधिकारियों की तुलना इतने सूत्रों से ही की जा सकती है, जो जनता का सम्बन्ध सरकार के साथ जोड़ते हैं। जिला-अधिकारी इन्हें मदद करने या इनके और जनता के बीच मध्यस्थता करने को सदैव उपस्थित रहता है। अब हम इन सब अधिकारियों के, जो जिले के प्रशासन में सहायता पहुँचाते हैं, कर्तव्यों पर विचार करेंगे।

तहसीलदार व सब-डिवीजनल अफसर (Tehsildar and Sub-divisional Officer)—प्रत्येक जिले के कई-कई छोटे भाग कर दिये गए हैं, जिन्हें पंजाब में तहसील और अन्य राज्यों में तहसील या तालुका कहते हैं। अधिक महत्त्व की तहसीलों को सब-डिवीजन का ऊँचा दर्जा दे दिया गया है। तहसील का अधिकारी तहसीलदार और सब-डिवीजन का अधिकारी सब-डिवीजनल अफसर कहलाता है। जिला-अधिकारी के समान इन दोनों अधिकारियों को भी कार्य-पालक और न्याय-पालक के अधिकार होते हैं। ये मजिस्ट्रेट भी होते हैं और राजस्व अधिकारी भी। अपने-अपने क्षेत्र में इनका वही स्थान होता है, जो जिले में जिला-अधिकारी का होता है। वे जिला-अधिकारी के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में काम करते हैं।

पुलिस सुपरिटेण्डेंट (Police Superintendent)—जिले की पुलिस का अधिकारी पुलिस सुपरिटेण्डेंट होता है। वह शासन-व्यवस्था की रक्षा में जिला-अधिकारी को सहायता पहुँचाता है। अपने विभागीय कामों में वह जिला-अधिकारी के नियन्त्रण से मुक्त होता है और पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल के अधीन काम करता है। परन्तु जिले की शासन-व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में इसे जिला-अधिकारी के आदेशों का पालन करना पड़ता है। इसके नीचे एक या अधिक डिप्टी सुपरिटेण्डेंट और इन्स्पेक्टर तथा सब इन्स्पेक्टर होते हैं। (See chapter on police & jails)

जिला और दौरा जज (District and Session Judge)—यह जिले के न्याय-विभाग का प्रमुख होता है। वह जिले का सबसे बड़ा न्यायाधीश है और उसे मुकदमा तथा अपील दोनों की सुनवाई करने का अधिकार होता है। वह अपने जिले के छोटे न्यायाधीशों के निर्णयों के विरुद्ध फौजदारी तथा दीवानी दोनों प्रकारों के मामलों की अपील सुनता है। उसे हत्या के मूल मुकदमों को सुनने का अधिकार होता है। ये मुकदमे पहले दर्जे के मजिस्ट्रेट उसके पास भेजते हैं। वह जो मृत्यु-दण्ड देता है उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय (High Court) द्वारा होनी आवश्यक होती है। वह कुछ प्रशासनिक कार्य भी करता है, जैसे—जिले की छोटी अदालतों के निरीक्षण का कार्य।

सिविल सर्जन और स्वास्थ्य-अधिकारी (The Civil Surgeon and the District Health Officer)—प्रत्येक जिले में कई-कई सरकारी अस्पताल होते हैं। इनका अधिकारी सिविल सर्जन होता है, जो लोक-स्वास्थ्य तथा सफाई से सम्बन्धित विषयों में जिला-अधिकारी को परामर्श देता है। सिविल सर्जन के अतिरिक्त म्युनिसिपैलिटियों के स्थानिक-स्वास्थ्य-अधिकारी और जिला-बोर्डों के जिला स्वास्थ्य अधिकारी भी होते हैं, जो अपने-अपने शहरी और देहाती क्षेत्रों में लोक-स्वास्थ्य तथा सफाई के लिए जिम्मेदार रहते हैं। प्रत्येक जिले में एक कृषि-अधिकारी (Extra Assistant Director of Agriculture) भी होता है। इसका मुख्य काम किसानों में कृषि के सम्बन्धी तरीकों का प्रचार करना होता है। उसके अधिकार में एक नमूने का खेत (Model Farm) होता है। उसमें नये तरीकों का प्रयोग और अनुसंधान का कार्य किया जाता है। इस कार्य का महत्त्व हमारे जैसे कृषि-प्रधान देश में बहुत अधिक है। एकजीव्यूटिव इंजीनियर जिले के इंजीनियरिंग कार्य का प्रमुख होता है। उसके विभाग (P. W. D.) पर सरकारी इमारतें, सडकें, पुल, तालाब और कुएँ आदि बनाने तथा उनको संभालने की जिम्मेदारी होती है। पंजाब में नहरों से सम्बन्ध रखने वाला इंजीनियरिंग विभाग पृथक है। उसका अधिकारी नहर-इंजीनियर होता है।

प्रत्येक जिले में एक-एक जिला स्कूल इन्स्पेक्टर भी होता है। वह जिले की मैट्रिक तक की शालाओं के काम का निरीक्षण करता है। वह शालाओं को आर्थिक सहायता देने के बारे में सिफारिशें भी करता है। वह जिला-अधिकारी के सामान्य निर्देशों के अनुसार जिले में शिक्षा-प्रचार का काम करता है। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ पदाधिकारी, जैसे आय-कर अधिकारी, जिला-शहर में अपना मुख्य दफ्तर रखते हैं। दूसरे विश्व-युद्ध के बाद कुछ नये विभाग खोले गए हैं, जिनके प्रतिनिधि हर जिले में नियुक्त किये गए हैं। उदाहरणार्थ (Public Relation Officer) जो लोगों से सम्पर्क रखता है तथा राज्य में जो लोक-निर्माण कार्य होते हैं, लोगों को बताता रहता है। जिला सप्लाय पदाधिकारी जिले के राशन-विभाग का भार वहन करते हैं। हर जिले में एक नौकरी दिलाऊ दफ्तर भी है जो एम्प्लायमेंट एक्सचेंज अफसर के अधिकार में होता है। यह विभाग नौकरी खोजने वालों के नाम दर्ज करता है और उचित रिक्त स्थानों पर उनकी नियुक्ति करता है।

प्रश्न

1. भारत में जिला-अधिकारी के कर्त्तव्य क्या हैं ?
2. 'जिले के सब सूत्र जिला-अधिकारी के हाथों में एकत्रित हैं'—मीमांसा कीजिए।
3. 'जिला-अधिकारी भारत के वास्तविक शासक हैं'—मीमांसा कीजिए। इस कथन का क्या अर्थ है कि जिला-अधिकारी भारतीय प्रशासन की धुरी है ?

4. अपने जिला-प्रशासन का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।
5. स्वतन्त्रता के पश्चात् जिला-अधिकारियों के रुख में क्या परिवर्तन हुआ है ?
6. कार्य-पालक और न्याय-पालक-अधिकार जिला-अधिकारी के हाथों में किस हद तक केन्द्रित हैं ? यह योग कहाँ तक उचित है ?
7. "जिला-प्रशासन सरकार का एक आवश्यक अंग है ।" बताइये कि भारत में जिले का प्रशासन किस प्रकार होता है ?
8. अपने राज्य के जिला-अधिकारी के स्थान और अधिकारों की विवेचना कीजिए । अन्य जिला-पदाधिकारियों के साथ उनका सम्बन्ध क्या है ?

Questions

1. What are the functions of the District Officer in India ?
2. At the present all strings of the district are gathered together in the hands of the Deputy Commissioner. Discuss
3. "District Officers are the real rulers of India". Discuss. What is meant by saying that the District Officer is the pivot of Indian Administration ?
4. Describe briefly the administration frame work of a district in your state and make suggestions for its improvement.
5. Analyse carefully the position and powers of the Deputy Commissioner. What change do you notice in his tone since the establishment of Free India ?
6. To what extent are executive and judicial functions concentrated in the head of a district in India and how far this combination of these two functions justifiable ?
7. "The District Administration constitutes an essential part of the Government" Show how the administration of a district in India is carried on.
8. Critically examine the position and powers of the Deputy Commissioner in your province. Study his relations with other principal officers of the District.

ग्रामों तथा नगरों का स्थानिक स्वशासन

(Local Government—~~Local and Urban~~)

Rural and Urban.

६८. स्थानिक स्वराज्य क्या है ? (What is Local Self-Government ?)

स्थानिक स्वराज्य का अर्थ ग्रामों तथा नगरों के सार्वजनिक कार्यों का प्रबन्ध उनके चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा किया जाना होता है। यह प्रबन्ध ग्राम-पंचायतों, म्युनिसिपल कमेटियों और जिला-बोर्डों द्वारा होता है। इन संस्थाओं को स्थानिक स्वराज्य संस्थाएँ कहते हैं और इनका संगठन सम्बन्धित क्षेत्रों के चुने हुए प्रतिनिधियों से होता है। इनका काम अपने क्षेत्र में ऐसे कामों की व्यवस्था करना है, जिनका सम्बन्ध वहाँ की जनता के दैनिक जीवन से रहता हो। उन्हें राज्य तथा केन्द्र सरकार के नियन्त्रण से बहुत कुछ स्वतन्त्रता होती है। सारांशतः, इन स्थानिक संस्थाओं द्वारा जनता अपने स्थानिक कार्यों में अपना शासन स्वयं करती है। भारत में स्थानिक शासन (Local Government) और स्थानिक स्वराज्य (Local Self-Government) में भेद है। पश्चिमी देशों में स्थानिक शासन का प्रयोग छोटे-छोटे क्षेत्रों के शासन-म्युनिसिपैलिटी आदि के लिए होता है। भारत में राज्य-प्रदेश के शासन को स्थानिक शासन कहा जाता है, जो कि केन्द्रीय शासन से भिन्न होता है। अतएव दोनों का भेद स्पष्ट करने के लिए म्युनिसिपैलिटियों, ग्राम-पंचायतों और जिला-बोर्डों आदि के शासन को स्थानिक स्वराज्य (Local Self-Government) कहा जाता है।

स्थानिक जनता द्वारा शासन—स्थानिक स्वराज्य और राज्य या केन्द्र के शासन का भेद समझने के लिए दो बातें स्मरण रखना आवश्यक है। स्थानिक स्वराज्य के क्षेत्र में ये विषय होते हैं—स्वास्थ्य और सफाई, शुद्ध पानी की व्यवस्था, सार्वजनिक सड़कों तथा गलियों का प्रबन्ध, सफाई और उनमें प्रकाश रखना, नालियों का प्रबन्ध, अशुद्ध खाद्य-वस्तुओं की बिक्री को रोकना, बिजली की व्यवस्था, बाग, पुस्तकालय, संग्रहालय तथा प्राथमिक शालाएँ स्थापित करना और चलाना आदि। ये विषय मुख्यतः स्थानिक लाभ के हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इनका महत्त्व नहीं है (These matters are primarily of a local interest but this does not mean they are unimportant)। वास्तव में जनता के दैनिक जीवन से इनका इतना गहरा सम्बन्ध है कि इनके सुप्रबन्ध पर ही उसका बहुत-कुछ सुख और हित निर्भर करता है। इन विषयों को स्थानिक जनता के प्रबन्ध पर ही छोड़ देना वांछनीय है, क्योंकि वह अपने क्षेत्र की परिस्थितियों और आवश्यकताओं से अवगत रहती है।

एक क्षेत्र की आवश्यकताएँ और परिस्थितियाँ दूसरे क्षेत्र से भिन्न होती हैं, अतएव दैनिक जीवन के इन मामलों को राज्य सरकार अथवा केन्द्र सरकार भली भाँति निबटा नहीं सकती, क्योंकि उसे सब काम भिन्न-भिन्न अधिकारियों के द्वारा कराना पड़ता है, और वे सदैव सब क्षेत्रों की विशेष परिस्थितियों से परिचित नहीं रह सकते।

कार्य की स्वतन्त्रता—दूसरे, स्थानिक संस्थाओं को उनके काम-काज में पर्याप्त स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन्हें राज्य और केन्द्र की सरकार के अनावश्यक हस्तक्षेप से मुक्त रहकर अपना कार्य कर सकना चाहिए। राज्य की सरकार उनके काम की देख-रेख करेगी और उस पर सामान्य नियन्त्रण रखेगी, किन्तु उसे उनके दैनिक कार्य की बारीकियों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

६६. स्थानिक स्वराज्य का महत्त्व (The Importance of Local Self-Government)

देश के नागरिक जीवन में स्थानिक स्वराज्य का महत्त्व बहुत होता है। स्वशासित स्थानीय संस्थाएँ प्रजातन्त्रीय शासन का एक मूलभूत अंग हैं। प्रथमतः, उनसे सामुदायिक जीवन के सर्वोत्तम लाभ (Important Contribution to Public Welfare) प्राप्त होते हैं। यदि शासन का ध्येय जनता का नैतिक, भौतिक और मानसिक कल्याण (To achieve physical, mental and moral welfare) करना हो, तो स्थानिक स्वराज्य संस्थाएँ दूध घी तथा अन्य खाद्य-पदार्थों की शुद्धता की व्यवस्था करके, बिजली तथा शुद्ध पानी उपलब्ध कराके, सड़कों तथा गलियों को साफ रखके, नालियों की व्यवस्था करके, शालाएँ, पुस्तकालय, उद्यान और अस्पताल आदि खोलकर इस ध्येय की पूर्ति में बहुत बड़ा योग प्रदान कर सकती हैं। दूसरे, वे प्रशासन में दक्षता तथा वित्त-व्ययिता सुरक्षित (Efficiency and economy of administration) करती हैं। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों का बहुत-कुछ शासन भार अपने ऊपर लेकर वे दक्षता में मदद पहुँचाती हैं। स्थानिक काम-काज ऐसे लोगों के हाथों में पहुँच जाता है, जो उससे पूर्णतया परिचित होते हैं और उसे दक्षतापूर्वक निभा सकते हैं। इससे प्रादेशिक तथा केन्द्रीय सरकार की शक्ति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों के लिए बच जाती है। साथ ही, वे शासन-व्यय में बहुत कमी कर देती हैं, क्योंकि उनके कारण सरकार को व्यय-साध्य नीकरशाही का प्रबन्ध करने की आवश्यकता नहीं होती। तीसरे, स्थानिक स्वराज्य नागरिक शिक्षा की सबसे बड़ी शाला (Greatest School of Citizenship) है। अपना काम-काज स्वयं करने का अवसर देकर स्थानिक स्वराज्य स्थानीय जनता में शासन-सम्बन्धी बातों की अभिरुचि तथा उत्तरदायित्व की भावना जाग्रत करता है। उससे लोगों को एक-दूसरे पर विश्वास और पारस्परिक सेवा की भावना से सेवा करने तथा, इस प्रकार, अपने नगर या जिले के हितों के सामने अपने व्यक्तिगत हितों को गौण मानने की शिक्षा मिलती है। उससे राजनीतिज्ञों और जन-सेवकों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

स्थानिक संस्थाएँ अधिक लोगों को शासन-कला से परिचित कराती हैं। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे भारत के कुछ अन्यतम राजनीतिक नेताओं ने शासन-कार्य की प्राथमिक शिक्षा म्युनिसिपैलिटियों के अध्यक्षों के रूप में ही प्राप्त की। लास्की (Prof. Laski) के कथनानुसार, “कदाचित् स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं से सरकार के अन्य सब विभागों की अपेक्षा अधिक शिक्षा मिलती है।” वे नागरिकों को सुविज्ञ बनाकर और उनमें अधिकारों तथा कर्तव्यों की भावना जाग्रत करके प्रजातन्त्र की सफलता में सहायता पहुँचाती हैं। डी टोकीविले के शब्दों में, “नागरिकों की स्थानिक सभाओं में ही स्वतन्त्र राष्ट्रों की सफलता निहित है। नगर की सभाओं की स्वतन्त्रता के लिए वही महत्त्व है, जो विज्ञान के लिए प्राथमिक शालाओं का होता है। उनसे स्वतन्त्रता जनता की पहुँच में आ जाती है, जनता को शिक्षा मिलती है कि उसका उपयोग कैसे किया जाय। राष्ट्र स्वतन्त्र शासन प्रणाली स्थापित कर सकता है, किन्तु नागरिक (Municipal) संस्थाओं की भावना विकसित किए बिना वह स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत नहीं कर सकता।”

७०. भारत में स्थानिक स्वराज्य की संस्थाएँ (Institutions of Local Self-Government)

भारत की विभिन्न स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं को दो मुख्य वर्गों—शहराती और देहाती—में विभक्त किया जा सकता है। देहाती संस्थाएँ देहातों के स्थानिक हितों का साधन करती हैं। पंजाब में देहाती स्थानिक संस्थाएँ दो प्रकार की हैं, जिला बोर्ड और ग्राम पंचायतें। दूसरे वर्ग में नगरों के स्थानिक काम-काज की व्यवस्था करने वाली संस्थाओं का समावेश है। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता—जैसे बहुत बड़े नगरों में इन्हें कारपोरेशन, अन्य बड़े नगरों में म्युनिसिपल कमेटी और छावनियों के क्षेत्रों में कन्टूनमेंट बोर्ड कहा जाता है। इनके अलावा 5,000 से 10,000 तक की आबादी के नगरों तथा उप-नगरों में नोटीफाइड एरिया कमेटियों (Notified Area Committees) और 10,000 से 20,000 तक की जनसंख्या वाले नगरों में टाउन एरिया (Town Area) या छोटी नगर कमेटियों की स्थापना की जाती है। नगर की आयोजित रचना और उसकी सफाई आदि में सुधार करने के लिए इम्प्रूवमेंट ट्रस्टों (Improvement Trusts) की भी स्थापना कुछ नगरों में की गई है। बम्बई, मद्रास और कलकत्ता—जैसे बड़े-बड़े बन्दर-स्थानों में जहाज-घाट क्षेत्रों की व्यवस्था के लिए पोर्ट-ट्रस्टों (Port-Trusts) होते हैं।

भारत में स्थानिक स्वराज्य का इतिहास

(History of Local Self-Government in India)

७१. प्राचीन भारत में स्थानिक स्वराज्य (Local Self-Government in Ancient India)

भारत में स्थानिक स्वराज्य पश्चिम की देन नहीं है। हमारे देश में स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं का अस्तित्व अति प्राचीन काल से रहा है। इनका उल्लेख रामायण,

जातक-कथाओं तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है । कोटिल्य ने अपने ग्रन्थ-शास्त्र में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल के नागरिक (Municipal) शासन का वर्णन किया है । प्राचीन काल में भारतीय ग्रामों को स्वशासन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था । उनका शासन पंचायतों के हाथ में रहता था, जिन्हें शासन तथा न्याय के व्यापक (यद्यपि अलिखित) अधिकार प्राप्त होते थे । ये पंचायतें ग्रामों की सफाई, स्थानिक सड़कों और नहरों की व्यवस्था और मन्दिरों आदि धार्मिक स्थानों के प्रबन्ध के लिए जिम्मेदार होती थी । जब सड़को तथा तालाबों की मरम्मत आवश्यक होती थी, तब ग्राम पंचायतें अपने गाँवों की सब गाड़ियों, बैलों और जन-शक्ति का उपयोग कर सकती थी । वे न्यायालयों का काम भी करती थीं । उन्हें दीवानी और फौजदारी मुकदमों सुनने का अधिकार होता था । ये पंचायतें प्रजातन्त्रात्मक होती थी और गाँवों की समस्त जनता मिलकर इनका चुनाव करती थी ।

सर चार्ल्स मेटकाल (Sir Charles Metcalfe) ने प्राचीन भारत के ग्राम-स्वराज्य का वर्णन इन शब्दों में किया है—“गाँव छोटे-छोटे गणराज्य (Republics) थे । वे लगभग सभी बातों में स्वतन्त्र थे और वैदेशिक मामलों में भी प्रायः स्वतन्त्र थे । ग्राम-समाजों के इस संघ ने ही, जिसकी प्रत्येक इकाई एक स्वतन्त्र राज्य थी, भारत-राष्ट्र का संरक्षण किया है । भारतीयों की बहुत कुछ स्वतन्त्रता का कारण भी यही है । बड़े-बड़े साम्राज्यों का उदय और अस्त हुआ, विजेता आये और गये, किन्तु ग्रामों का वास्तविक जीवन सदा शान्त और अविचलित गति से जारी रहा । कोई भी राजा या सम्राट रहा हो, ग्राम्य भारत का अपना जीवन सदा सुरक्षित रहा और वह अपना शासन स्वयं करता रहा ।”

प्राचीन भारत के नगरों में भी स्थानिक स्वराज्य का प्रचार था । चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहे हुए यूनानी राजदूत मेगस्थनीज के लेखों से हमें मालूम होता है कि मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र में एक जन-निर्वाचित म्युनिसिपल कमेटी थी । वह 6 पृथक् समितियों द्वारा नगर का प्रबन्ध करती थी । प्रत्येक समिति का काम पृथक् था । इन प्रादेशिक नगर-पालिकाओं (Municipal Committees) और ग्राम-पंचायतों के अतिरिक्त भारत में जातीय पंचायतें भी थी । इन संस्थाओं के सदस्य विभिन्न जातियों के लोग होते थे । ये सहकारी सभाओं (Trade Unions) का काम करती थी । ये अपने सदस्यों के सामाजिक तथा आर्थिक हितों का साधन करती थीं और अनैतिकता तथा जाति के नियमों को तोड़ने पर दण्ड दिया करती थी । जाति-पंचायतें अब भी जारी हैं । चमार, भंगी, धोबी आदि जातियों में उनका प्रचार विशेष रूप से है । अब ये पंचायतें जाति के छोटे-छोटे झगड़े निबटाती हैं । ये अपराध करने वालों को अर्थ-दण्ड दे सकती हैं । उन्हें जाति को भोज देने का आदेश भी दे सकती हैं । गम्भीर मामलों में ये अपराधियों का बहिष्कार करने या उन्हें जाति से निकाल देने का दण्ड भी दे सकती हैं ।

७२. मुसलमानों के काल में स्थानिक स्वराज्य (Local Self-Government during the Muslim Period)

मुसलमान शासकों ने भारत में स्थानिक स्वराज्य के विकास में प्रोत्साहन नहीं दिया । और न ही उन्होंने प्रचलित व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयत्न किया । वे शहरी प्रवृत्तियों के लोग थे और उन्होंने भारतीय ग्रामों में बहने वाली धाराओं को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं समझी । फलतः, स्थानिक स्वराज्य-संस्थाएँ पूर्ववत् अपना काम-काज चलाती रहीं । तथापि नगरों में उनकी अधोगति हुई, क्योंकि वहाँ का नागरिक प्रशासन केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि कोतवाल को सौंप दिया गया था ।

७३. ब्रिटिश काल में स्थानिक स्वराज्य (Self-Government under the British)

ब्रिटिश शासन का पहला दौर भारत की स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं का संहारक (Warrant of Death) सिद्ध हुआ । नये शासकों ने केन्द्रीभूत शासन की नीति प्रचलित की । सम्पूर्ण सत्ता केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को सौंप दी गई और वह उमका प्रयोग सुसंगठित नौकरशाही के द्वारा करने लगी । फलतः, नगरों और ग्रामों की स्वशासित संस्थाओं का अधःपतन हो गया । परन्तु क्रियात्मक अनुभव ने शीघ्र ही शासकों को सिखा दिया कि इस विशाल देश में पूर्ण केन्द्रीकृत शासन सम्भव नहीं है । अतएव १९वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से स्थानिक स्वराज्य की प्रणाली को पुनरुज्जीवित (The Revival in Urban Areas) करने के प्रयत्न किए जाने लगे । स्वभावतः, ही नागरिक स्थानिक स्वराज्य की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया गया । सबसे पहले कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के प्रेसीडेन्सी नगरों (Presidency Towns) में नागरिक (Municipal) शासन स्थापित करने के प्रयत्न किए गए । १६८७ में शाही फरमान के द्वारा मद्रास में म्युनिसिपल कारपोरेशन की स्थापना की जा चुकी थी । १७२६ में बम्बई तथा कलकत्ता में पृथक् कानूनों के द्वारा इस सिद्धान्त को लागू किया गया और वहाँ मेयर के कार्यालय स्थापित किए गए । इसके पश्चात् १८४२, १८५० और १८५७ में अनेक कानून बनाये गए, जिनके द्वारा समस्त भारत के नगरों में म्युनिसिपल कमेटियों की स्थापना और उनके सदस्यों की नियुक्ति की व्यवस्था हुई । इन कानूनों के अनुसार अनेक नगरों में म्युनिसिपल कमेटियों की स्थापना हो गई; किन्तु इस कार्य में दो भारी बाधाएँ थी । प्रथम तो यह कि कानूनों के द्वारा म्युनिसिपल कमेटियों की स्थापना अनिवार्य नहीं की गई थी, अतएव इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई । अनेक नगर म्युनिसिपल शासन से वंचित रह गए । दूसरे, इन कानूनों के द्वारा चुनाव का सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया गया । इसलिए जो भी कमेटियाँ स्थापित हुईं उनके सदस्य नामजद (Nominated) ही किए गए ।

चुनाव का आरम्भ (Introduction of Elections by Lord Mayo)—
लार्ड मेयो के वाइसराय रहते समय एक नया पहलू आरम्भ हुआ । १८७० के एक प्रस्ताव

में उन्होंने चुनाव-प्रणाली आरम्भ करने पर जोर दिया। फलतः, उस समय जो म्युनिसिपल कमेटियाँ मौजूद थीं उनके कुछ स्थान चुनाव के लिए खुल गए। उदाहरण के लिये कलकत्ता-कारपोरेशन के दो-तिहाई और बम्बई तथा मद्रास कारपोरेशन के आधे-आधे सदस्यों का चुनाव करना निश्चित किया गया। परन्तु बम्बई-कारपोरेशन को छोड़कर शेष सब संस्थाओं के अध्यक्षों की नामजदगी सरकार ने अपने हाथ में सुरक्षित रखी। लार्ड रिपन के कार्य-काल में इस दिशा में और उन्नति हुई। इस उन्नति के इतिहास में इस वाइसराय का 1882 का प्रस्ताव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसे भारतीय स्थानिक स्वराज्य का "Magna Carta" कहा जाता है। प्रस्ताव में कहा गया था : "यह प्रस्ताव मुख्यतः प्रशासन में सुधार के लिए पेश नहीं किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य लोक-शिक्षा और राजनीतिक शिक्षा है।" यह उल्लेखनीय है कि प्रस्ताव का वास्तविक उद्देश्य जनता की आत्म-सहायता की शक्ति विकसित करना था। इसमें स्थानिक स्वराज्य की प्रगति की सिफारिश जनता को राजनीतिक और शासनिक प्रशिक्षण देने के लिए की गई थी। लार्ड रिपन (Lord Ripon) के इस प्रस्ताव के फलस्वरूप चुनाव का सिद्धान्त, जो मद्रास, बम्बई और कलकत्ता-कारपोरेशन में पहले ही लागू कर दिया गया था, दूसरी म्युनिसिपल सभाओं पर भी लागू कर दिया गया। म्युनिसिपैलिटियों को बहुसंख्यक सदस्यों और अध्यक्ष का भी चुनाव करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। 1907 में विकेन्द्रीकरण का आयोग (Decentralisation Commission) ने देहाती क्षेत्रों में स्थानिक स्वराज्य की कुछ सिफारिशें कीं। इन सिफारिशों को 1915 के एक प्रस्ताव में शामिल कर दिया गया। इस प्रस्ताव द्वारा जिला बोर्डों में चुने हुए सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और उन्हें अध्यक्ष का चुनाव करने का अधिकार भी दिया गया। ग्राम-पंचायतों के अधिकार भी बढ़ा दिये गए। परन्तु लार्ड रिपन के बाद स्थानिक स्वराज्य के क्षेत्र में जो प्रगति हुई वह नगण्य-सी थी। बाद में 1919 के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों (Montagu Chelmsford Reforms) तक कोई बड़ा सुधार नहीं हुआ। 1917 में लार्ड चेम्सफोर्ड ने स्थानिक स्वराज्य में विकास की सिफारिश इस रूप में की कि उससे जनता धीरे-धीरे अपना शासन आप करने की ओर बढ़ेगी, क्योंकि इसे ही भारत में ब्रिटिश शासन का लक्ष्य बनाया जाता था। इन नये सुधारों के अनुसार स्थानिक स्वराज्य को एक हस्तान्तरित विषय मान लिया गया, और उसे प्रांतीय सरकारों के प्रति उत्तरदायी एक-एक मन्त्री को सौंप दिया गया। इसके पश्चात् विभिन्न प्रांतों में स्थानिक स्वराज्य को प्रजातन्त्रीय बनाने के कानून स्वीकृत किये गए। मताधिकार में बहुत-कुछ वृद्धि कर दी गई और शहराती तथा देहाती स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई।

1935 के भारत-शासन-विधान से देश में प्रांतीय स्वराज्य का आरम्भ हुआ और उससे स्थानिक स्वराज्य के विकास को नया बल मिला। उदाहरण के लिए, बम्बई में म्युनिसिपल चुनावों के लिए बालिग मताधिकार जारी कर दिया गया और सदस्यों को नामजद करने की पद्धति बन्द कर दी गई। ब्रिटिश शासन के अन्त के

बाद देहाती क्षेत्रों में स्थानिक स्वराज्य के विकास के लिए और भी बड़े कदम उठाये गए हैं। विभिन्न राज्यों की कांग्रेस सरकार ग्राम-स्वराज्य को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार गाँव हुक्मत (या पंचायत राज्य) विधेयक, 1948 को स्वीकार करके इस दिशा में सबसे आगे बढ़ गई है। इस और कई अन्य राज्यों ने भी कदम उठाया है, जिनमें पंजाब भी सम्मिलित है।

नगरों में स्थानिक स्वराज्य

(Local Self-Government—Urban)

नगर-पालिकाएँ—मद्रास, बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली को और 9 नगरों को छोड़कर, जहाँ का नागरिक प्रशासन कारपोरेशन के द्वारा होता है, भारत के अन्य प्रधान नगरों का स्थानिक शासन म्युनिसिपल कमेटीयों या बोर्डों के हाथ में है। अविभाजित भारत में कुल 785 म्युनिसिपल कमेटीयाँ थी।

७४. पंजाब में म्युनिसिपल कमेटीयाँ (Municipalities in the Punjab)

पंजाब में म्युनिसिपैलिटीयों के सदस्यों की सख्या स्थान-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न है। पंजाब में 1956 में 140 नगरपालिकाएँ 35 नगरसमितियाँ और 7 कन्टूनमेण्ट बोर्ड हैं। इनके करीबन 3000 निर्वाचित सदस्य हैं, जिनमें 300 से ऊपर अनुसूचित जाति के होते हैं। हर म्युनिसिपल कमेटी की सदस्य-संख्या का निर्धारण राज्य-सरकार करती है। अब सब सदस्य निर्वाचित ही होते हैं। अभी हाल तक म्युनिसिपल चुनावों का मताधिकार शिक्षा, सम्पत्ति और मकान के किराये के आधार पर प्राप्त होता था। परन्तु नये संविधान से प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मताधिकार मिल गया है, और चुनाव सयुक्त पद्धति से होंगे। पंजाब-सरकार के एक परिपत्र से हरिजनों को छोड़कर सब अल्पसंख्यकों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की पद्धति भी उठा दी है। म्युनिसिपैलिटीयों का चुनाव तीन वर्ष में एक बार होता है। सदस्यों को कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता। उन्हें 'म्युनिसिपल कमिश्नर' या 'सिटी फादर्स' कहा जाता है।

पदाधिकारी व कर्मचारी (Office bearers and Officers of a Municipality)—प्रत्येक म्युनिसिपल कमेटी का एक अध्यक्ष, एक बड़ा (Senior) उपाध्यक्ष और एक छोटा (Junior) उपाध्यक्ष होता है। इनका चुनाव सब सदस्य मिलकर करते हैं और उनका निर्णय प्रथम श्रेणी की कमेटीयों के सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा और द्वितीय श्रेणी की कमेटीयों के सम्बन्ध में कमिश्नर द्वारा स्वीकार किया जाना आवश्यक होता है। इस स्वीकृति के बाद ही चुनाव पक्का होता है। सरकार के स्वीकार कर लेने पर अध्यक्ष को वेतन दिया जा सकता है। अध्यक्ष और उपाध्यक्षों की समिति म्युनिसिपैलिटी की कार्यसमिति होती है। इन अधिकारियों

लगाया जाता है, जिन्हें भूमि का लगान नहीं देना पड़ता, किन्तु जिनकी आय निश्चित प्रमाण से अधिक होती है। इन सबके अलावा स्थानिक कर भी होते हैं। भूमि पर भी सरकारी लगान के अतिरिक्त कुछ कर लगाया जाता है। यह कर लगान के सवा छ. प्रतिशत अर्थात् सोलहवें भाग से अधिक नहीं होता।

व्यय (Expenditure)—इन साधनों से प्राप्त आय का उपयोग पहले बताये हुए कामों में किया जाता है। कर्मचारियों का वेतन भी इससे ही चुकाया जाता है। शिक्षा, सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा, चिकित्सा-सहायता, सड़कों-पुलों, तथा सार्वजनिक इमारतों का निर्माण तथा संरक्षण—ये व्यय के कुछ मुख्य विषय हैं। जिला बोर्डों की आय उनके व्यापक कार्य की दृष्टि से बहुत कम होती है। अतएव यह आवश्यक है कि इन्हें सरकार की ओर से अधिक सहायता प्राप्त हो और दूसरी ओर वे दुग्ध-शालाओं आदर्श कृषि-क्षेत्र, पशुओं के प्रदर्शन तथा मेलों और अतिथि-शालाओं आदि के निर्माण आदि का काम जारी करके या उनमें वृद्धि करके अपनी आय बढ़ावें।

सरकारी नियंत्रण (Government Control)—जिला बोर्डों के सम्बन्ध में यह शिकायत म्युनिमिपैलिटियों से भी अधिक है कि सरकार इन पर बहुत कड़ा नियन्त्रण रखती है। पंजाब में अधिकतर जिला बोर्डों के अध्यक्ष डिप्टी कमिश्नर होते आये हैं। इससे स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं की स्वतन्त्रता बहुत सीमित हो जाती है। डिप्टी कमिश्नर के अध्यक्ष रहने पर नामजद सदस्य आँखें मूँद कर उसकी हाँ में हाँ मिला देते हैं। अनेक निर्वाचित सदस्य भी उसके सामने डर जाते हैं और अपने विचार दृढ़तापूर्वक व्यक्त नहीं करते। आनन्द का विषय यह है कि नये नियमों के अनुसार इस स्थिति के अन्त होने की पूरी आशा है। बजट भी कमिश्नर की देख-रेख में बनाया जाता है और सरकारी आडीटर प्रति वर्ष आय-व्यय की जाँच करता है। कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर को जिला बोर्डों के हिसाब-किताब, कागजात तथा अचल सम्पत्ति को अपनी अच्छानुसार जाँचने का अधिकार होता है। अन्त में भ्रष्टाचार, कर्तव्य की उपेक्षा, अदक्षता अथवा सत्ता के दुरुपयोग का अपराधी पाने पर सरकार जिला बोर्डों को भंग करके उनका काम-काज अपने अधिकार में ले सकती है।

८६. ग्राम पंचायतें (Village Panchayats)

हम प्राचीन तथा मध्यकाल में भारत में ग्राम-पंचायतों के अस्तित्व का विवरण जान चुके हैं। जनता के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में उनका बहुत महत्व था। उनका स्वरूप एक प्रकार के छोटे-छोटे गणराज्यों का था और उन्हें सेना-भरती तथा कर-संग्रह के अतिरिक्त अन्य विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता होती थी। उनको व्यापक अधिकार होते थे और वे गाँवों के सब भूगडों को—जिनमें सामाजिक तथा कानूनी भूगडें भी शामिल होते थे—स्वतन्त्रतापूर्वक निबटा देती थी। ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक काल में उनका विसर्जन (Decay of Panchayats under British Rule) प्रारम्भ हुआ। यातायात के साधनों के विकास से ग्रामों की राजनीतिक विलगता तथा आत्मनिर्भरता का अन्त हो गया और प्रशासन तथा न्याय के क्षेत्रों में सरकार ने

केन्द्रीयकरण की जो नीति अपनाई, उसने ग्राम-पंचायतों की स्वतन्त्रता पर घातक प्रहार किया।

पुनः प्रतिष्ठा (Their Revival)—तथापि, अन्त में यह अनुभव किया गया कि ग्राम-पंचायतों के अग्र पतन से देश के नागरिक जीवन को गम्भीर क्षति पहुँचती है। लार्ड रिपन के वाइसराय होने पर उन्हें पुनरुज्जीवित करने के प्रयत्न किये गए। 1908 में विकेन्द्रीकरण कमीशन ने फिर से उन्हें स्थापित करने तथा उनको स्थानिक स्वराज्य का आधार बनाने की जोरदार सिफारिश की। अनेक प्रादेशिक सरकारों ने उस सिफारिश को स्वीकार कर लिया। फलतः, प्रायः सभी प्रदेशों की विधान परिषदों (Legislative Councils) ने पंचायत कानून बना लिए। पंजाब इस विषय में सबसे आगे रहा और वहाँ 1912 में एक पंचायत कानून बनाया गया। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रान्तों ने 1920 तथा आगे के वर्षों में पंजाब का अनुसरण किया।

इन कानूनों के अनुसार, किसी एक गाँव या एक ग्राम-समूह के बालिग पुरुष (स्त्रियाँ नहीं) अपने ग्राम या ग्राम-समूह के लिए ग्राम पंचायत का निर्माण करते थे। मतदान हाथ ऊपर उठाकर किया जाता था। इन कानूनों के अन्तर्गत, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश को छोड़कर शेष प्रदेशों में प्रगति बहुत मन्द रही। 1935 के भारतीय शासन विधान के अनुसार प्रादेशिक स्वराज्य की स्थापना हो जाने पर इस दिशा में अधिक सक्रिय ध्यान दिया गया। पंजाब में 1939 में एक नया कानून बनाकर ग्राम पंचायतों का काम एक डायरेक्टर के सुपुर्द कर दिया गया। इसका उद्देश्य पुरानी पंचायतों और यथासम्भव पुराने ग्राम-स्वराज्य की पुनः प्रतिष्ठा करना था। वर्तमान विभाजित पंजाब में 1939 के उसी कानून के अनुसार ग्राम-पंचायतों की व्यवस्था होती है, परन्तु सरकार एक नया कानून बनाने का विचार कर रही है।

संघटन (Composition)—वर्तमान कानून के अनुसार जिला-अधिकारी को अपने जिले के ग्रामो या ग्राम-समूह में ग्राम पंचायतों की स्थापना करने का अधिकार है। 'पंचायत' का वास्तविक अर्थ पाँच व्यक्तियों (पंचों) की परिषद् है। परन्तु अतीत में इसका कुछ भी अर्थ रहा हो, अब पंचायतों की सदस्य-संख्या वह नहीं रही। 1939 के कानून के अनुसार पंजाब में बनी हुई ग्राम-पंचायतों में 3 से 8 तक निर्वाचित सदस्य होते हैं, जिन्हें पंच कहा जाता है। जिला अधिकारी इनमें से सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति को अध्यक्ष या सरपंच नामजद कर देता है। पंचायत की कार्यावधि एक वर्ष की होती है। कभी-कभी उसमें एक नायब सरपंच (उपाध्यक्ष) भी होता है।

ग्राम-पंचायत के कामों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है—(1) प्रशासनिक कार्य (Administrative Functions), (2) न्याय-सम्बन्धी कार्य (Judicial Functions) और (3) सामाजिक तथा आर्थिक कार्य (Social and Economic Functions)।

ग्राम-पंचायत के प्रशासनिक (Administrative) कार्य ये हैं—ग्राम के मागों, पुलों, नालियों, तालाबों तथा कुओं का निर्माण, सार-सम्भाल और मरम्मत। पंचायत

इमशान भूमि की व्यवस्था के लिए भी जिम्मेदार होती है। जिला बोर्डों के निश्चित कार्यों में सहयोग देना भी उनका कर्तव्य होता है। सरकारी कर्मचारियों को ग्राम में अपने कर्तव्य पूर्ण करने में तथा पुलिस को अपराधों आदि की जाँच-करने में मदद करना भी उनका कार्य होता है। ये सब ग्राम-पंचायतों के अनिवार्य कर्तव्य हैं।

न्याय के अधिकार (Judicial)—न्यायाधिकारी के रूप में ग्राम-पंचायतें छोटे-छोटे दीवानी तथा फौजदारी के मुकदमे सुन सकती हैं। वे ठेके की देनदारी तथा अचल सम्पत्ति पर अनुचित रूप से अधिकार किया जाने के कारण होने वाली क्षति के दीवानी मुकदमे सुन सकती हैं। किन्तु इनकी रकम 50 रुपये तक ही हो सकती है। वे छोटी-छोटी शराबतों, मारपीट, या सफाई के कानून के भंग के छोटे-छोटे फौजदारी मुकदमे भी सुन सकती हैं और यद्यपि कारावास का दण्ड नहीं दे सकतीं, फिर भी 25 रुपयों तक जुर्माना कर सकती हैं। पंचायतों में मुकदमा दर्ज कराने के लिए आठ आने से एक रुपया तक का शुल्क देना पड़ता है। वकील पंचायतों में पैरवी नहीं कर सकता। उनका निर्णय साधारणतः अन्तिम होता है, किन्तु जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति से उसकी अदालत में उसके विरुद्ध अपील की जा सकती है।

सार्वजनिक आर्थिक कर्तव्य (Social Economic Functions)—ग्राम पंचायतें ग्राम के सार्वजनिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक कार्य भी करती हैं किन्तु ये ऐच्छिक होते हैं। इनमें सफाई, लोक-स्वास्थ्य, पानी की पूर्ति और सार्वजनिक उत्सवों में होने वाले व्यय आदि पर देख-रेख रखने की अपेक्षा की जाती है। जहाँ सम्भव हो, उन्हें प्राथमिक शिक्षा, पुस्तकालयों, खेल के मैदानों और पशुओं तथा कृषि की उन्नति के प्रयत्न भी करने चाहिए। उन्हें ग्राम की सड़कों पर वस्तियाँ तथा वृक्ष लगाने तथा स्कूलों व यात्रियों के लिए भवन बनवाने और उनकी रक्षा करने का अधिकार भी है। परन्तु ये सब कार्य करने की अपेक्षा उनमें तभी की जाती है जब कि उनके पास पर्याप्त कोष हो।

आय के साधन (Income)—पंचायतों की आय के मुख्य साधन ये हैं : (1) मुकदमों का शुल्क, (2) जुर्मानों का रुपया, (3) जिला बोर्ड आदि से सहायता, (4) दान आदि और (5) पशुओं के गोबर आदि की बिक्री। पंचायतों को अपने ग्राम या ग्रामों पर पंचायत कर लगाने का भी अधिकार है, परन्तु यह अधिकार पञ्जाब में कहीं व्यवहृत नहीं किया गया। स्पष्ट है कि पंचायतों की आय उनके काम के लिए पर्याप्त नहीं होती, इसीलिए अब तक वे बहुत सफलता प्राप्त नहीं कर सकी।

८७. पंचायत-प्रणाली की त्रुटियाँ (Defects in the Panchayat System)

ब्रिटिश शासनकाल में ग्राम-पंचायतों की जो प्रणाली आरम्भ की गई वह अपने ध्येय—अर्थात्, प्राचीन काल के समान स्वतन्त्र ग्राम-समाजों की स्थापना करने में सफल नहीं हुई। उत्तर प्रदेश को छोड़कर, जहाँ गत वर्षों में ग्राम-पंचायत के कार्य में द्रुत गति से प्रगति हुई है, अन्य प्रदेशों में उनका काम बहुत निराशाजनक रहा है।

कुछ आलोचकों का कहना तो यहाँ तक है कि यह प्रणाली एक भारी अन्धाधुन्धी सिद्ध हुई है। पंजाब में हर गाँव में पंचायत स्थापित करना सम्भव नहीं हुआ। जो पंचायतें स्थापित भी हुईं, उन्हें कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। उनसे स्थानिक संस्थाओं के कार्य में जनता की अभिरुचि जाग्रत करना सम्भव नहीं हुआ।

इस प्रणाली से जो आशाएँ उत्पन्न हुई थी, वे पूर्ण क्यों नहीं हो सकी? इसके अनेक कारण हैं। पहले तो, आधुनिक पंचायतों की नीव जनता की परम्पराओं पर नहीं डाली गई। वह जनता की प्रवृत्तियों से विकसित नहीं हुई, वरन् ऊपर से थोप दी गई। दूसरे, वर्तमान रूप में ग्राम-पंचायतों को बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। उन्हें निरन्तर जिला-अधिकारियों के नियन्त्रण में काम करना पड़ता है और ये अधिकारी उसके दैनिक काम में बराबर हस्तक्षेप करते रहते हैं। तीसरे, उनके पास धन का अभाव सदैव बना रहता है। अपनी नगण्य आय से वे कोई राष्ट्रनिर्माण-कार्य नहीं कर सकती और न जनता की आवश्यक सुख-सुविधा के ही पर्याप्त कार्य कर सकती है। चौथा किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण ग्रामीण जनता की अशिक्षा, अनुदारता और पिछड़ापन है। स्थानिक स्वराज्य की सफलता के लिए कुछ न्यूनतम शिक्षा की आवश्यकता तो है ही। भारत में अधिकतर लोग अशिक्षित हैं। वे सार्वजनिक कार्यों के प्रति उदासीन रहते हैं और सामान्य हित की प्रवृत्तियों में कोई रस नहीं लेते। अपनी अनुदारता के कारण वे जाति-पाँति की जैसी हानिकारक संस्थाओं से चिपटे रहते हैं और यह लोकतन्त्र के विरुद्ध पड़ता है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने पंचायत प्रणाली की मन्द प्रगति पर अनेक वर्ष पूर्व एक स्मृति-पत्र तैयार किया था। उससे उसके कुछ मुख्य कारणों पर अच्छा पकाश पड़ता है। स्मृति पत्र का एक अंश यह है :

‘बहुधा आवश्यक बुद्धि, प्रामाणिकता और चरित्र-बल वाले लोग उपलब्ध नहीं होते, या होते हैं तो एक ही परिवार के होते हैं। इससे सुसंतुलित पंचायत बनाने में बाधा पड़ती है। बहुत से ग्राम पूर्णतया उदासीन हैं। फिर, अनुभव से मालूम होता है कि किसी शक्तिशाली जमींदार आदि का प्रभाव होने पर पंचायतें शायद ही उन्नति करती हैं, क्योंकि किसान अपने झगड़े उसके पास ही ले जाते हैं। अन्ततः, योग्य व्यक्तित्व के सरपंच के चुनाव में बहुत कठिनाई होती है, जब कि पंचायत की सफलता उसके व्यक्तित्व पर ही निर्भर करती है। दूर के गाँवों में साधारण नियमों को समझने और साधारण रजिस्टर रख सकने योग्य शिक्षा वाले सरपंचों को प्राप्त करना संभव नहीं हुआ। कुछ स्थानों में गाँवों की बढ़ती हुई गुटबन्दी के प्रभाव और जातीय तथा माम्प्रदायिक झगड़ों के कारण भी पंचायतों के काम में बहुत बाधा पड़ी है।’

८८. पंचायत-प्रणाली के सुधार के उपाय (Suggestions for the Reforms of Panchayat System)

वर्तमान पंचायत-प्रणाली में अविलम्ब और क्रांतिकारी सुधार की आवश्यकता है। सबसे अधिक आवश्यकता यह है कि पंचायतों को लोकतंत्रीय तथा लोकप्रिय स्वरूप

प्रदान किया जाये। यदि पंचायतों में ग्राम-जनता की सक्रिय अभिरुचि जाग्रत की जानी है तो उसे यह महसूस कराना आवश्यक है कि पंचायतें उसकी ही बनाई हुई संस्थाएँ हैं, उन्हें ऊपर से थोप नहीं दिया गया है। इसी अवस्था में पंचायतें लोकहित के प्रभावकारी उपकरणों का रूप प्राप्त कर सकती हैं। सरपंचों को नामजद करने की प्रथा तोड़ दी जानी चाहिए। उनका जनता द्वारा चुनाव होना चाहिए और उनकी कार्यावधि दो वर्ष के लगभग कर दी जानी चाहिए। चुनाव सार्वजनीन वयस्क मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। दूसरे, पंचायतों को स्थानिक कार्यों में अब से अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। जिला अधिकारियों का हस्तक्षेप अधिक से अधिक घटा देना चाहिए। तीसरे, पंचायतों के अधिकारों और आय के साधनों में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए। जिला बोर्डों तथा सरकार के अनुदान और सहायता-मात्र से काम नहीं चल सकता। उन्हें अपनी आय बढ़ाने के लिए अन्य स्थानिक साधनों के उपयोग का अधिकार होना चाहिए। चौथे, ऊपर जो कमियाँ और कठिनाइयाँ बताई गई हैं, उनमें से अधिकांश का मूल कारण शिक्षा और नागरिक भावना का अभाव है; अतएव शिक्षा प्रचार के उपाय किए जाने चाहिए। इससे न केवल उनकी उदासीनता का अंत होगा, वरन् नागरिक भावना के विकास और स्थानिक स्वराज्य की सफलता का मार्ग भी प्रशस्त होगा। पाँचवे, सामाजिक बुराइयों को नष्ट करने के लिए, जिनके कारण ग्रामों में प्रजातंत्रीय वातावरण के विकास में बाधा पड़ती है, जोरदार आन्दोलन छेड़ा जाना चाहिए। जब तक जाति-प्रथा, अस्पृश्यता, स्त्रियों को सार्वजनिक कार्यों से वंचित रखने और साम्प्रदायिकता की जैसी सामाजिक बुराइयाँ मिटा नहीं दी जाती तब तक जनता में नागरिक भावना के विकसित होने की आशा नहीं की जा सकती। छोटे, वर्तमान परिस्थितियों में प्रत्येक ग्राम में ग्राम-पंचायत स्थापित करना न तो व्यावहारिक है और न वांछनीय ही। इसमें मितव्ययिता का प्रश्न तो है ही, साथ ही यह भी कठिनाई है कि एक-एक गाँव में पंचायत की स्थापना करने से उस पर स्थानिक स्पर्धाओं का बहुत दुष्प्रभाव पड़ता है। अतएव अधिक अच्छा होगा कि आस-पास के कई गाँवों को मिलाकर उन सबकी एक पंचायत बनाई जाये और किसी एक गाँव से एक या दो से अधिक सदस्य न चुने जाये। इससे व्यय घटेगा और पंचायतें स्थानिक स्पर्धा की शिकार न होंगी। इसके अतिरिक्त इससे छोटे-छोटे गाँवों तक प्रजातन्त्र का प्रचार हो जायेगा और उनमें सर्वसामान्यहित की जाग्रति फैलेगी।

८६. उत्तर प्रदेश में पंचायत-राज्य (Panchayat Raj in U. P.)

उत्तर प्रदेश में गाँव हुकूमत अधिनियम (1948) के जारी होने के बाद से पंचायतों का अच्छा प्रयोग किया जा रहा है। उसके परिणाम के समाचार बहुत उत्साहप्रद हैं। नये कानून से प्रदेश के गाँवों में नया जीवन-सा आ गया है। इस कानून के अनुसार एक हजार या इससे अधिक जनसंख्या के प्रत्येक ग्राम या ग्राम-समूह में एक-एक गाँव-सभा स्थापित की गई है। इन पंचायतों के दो प्रकार हैं—

प्रशासनिक और न्यायदायी (अदालती)। इन्हें व्यापक अधिकार दिये गये हैं। प्रशासनिक पंचायतों के चुनाव वयस्क मताधिकार और संयुक्त निर्वाचन-पद्धति के आधार पर किये जाते हैं। गाँव-सभा में उस समूह के सभी वयस्क पुरुष सम्मिलित हैं।

प्रशासनिक पंचायतें गाँव-सभा की कार्यपालिका का काम करती हैं। सभापति और उपसभापति के अतिरिक्त उसमें 30 से 51 तक सदस्य होते हैं। ये सदस्य 3 वर्ष के लिए चुने जाते हैं, और प्रति वर्ष एक-तिहाई सदस्य निवृत्त होते हैं। हर गाँव-सभा के क्षेत्र में अदालती पंचायत कायम नहीं की जाती। एक जिले के हर हल्के (सकिल) के लिए एक अदालती पंचायत होती है। उत्तर प्रदेश में 35,000 गाँव-सभाएँ और 8,100 पंचायती अदालतें हैं।

कहा जाता है कि पंचायत-प्रणाली अच्छी तरह चल रही है। गाँवों में सड़क, तालाब, कुएँ, आदि के निर्माण, व्यापक रोगों का निरोध, शिक्षा या बिक्रिस्ता सम्बन्धी सुविधाओं का प्रबन्ध करना, आदि कई बटुमून्य सेवार्ये इनके द्वारा हो रही हैं। आशा की जाती है कि पंचायत-राज्य की स्थापना उसको इतने अधिकार दिये जाने से, एक सच्चा प्रजातन्त्रात्मक शासन—जिसमें केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण का उचित सामंजस्य होगा—स्थापित हो जायगा।

६०. पंजाब में पंचायती-राज्य (Panchayat Raj in the Punjab)

1950 में पंजाब ने एक पंचायत-राज-योजना उत्तर प्रदेश के आधार पर बनाई। उसका लक्ष्य समस्त गाँवों को पंचायती-राज के अन्तर्गत करना था। उसके अनुसार हर गाँव के लिए अलग-अलग या सामूहिक रूप से एक पंचायत होगी और पंचायतों के अधिकार बहुत बढ़ा दिये जायेंगे। इस आन्दोलन ने काफी प्रगति कर ली है। केवल 1951 में ही 1156 पंचायतों की स्थापना हुई और 1956-57 तक 22041 गाँवों में 10901 पंचायतें, तथा 378 अदालती पंचायतों की स्थापना हो चुकी है। (See Art. 89 above)। यह एक प्रसन्नता की बात है कि 65593 पंच और सरपंच जो निर्वाचित हो चुके हैं—उनमें से 8192 पंच, 311 सरपंच दलित जातियों से हैं। इन पंचायतों के कारण हजारों लड़ाई भगड़ों का गाँव में ही निपटारा हो जाता है, जिसके फलस्वरूप ग्रामीण जनता के लाखों रुपये जो कि वकीलों की जेब में जाया करते थे, बच गये। ग्राम-पंचायतों ने ग्राम के सार्वजनिक तथा आर्थिक जीवन में बड़ा परिवर्तन ला दिया है। 1955-1956 में इन पंचायतों ने अपने सरोत्रों से 105 लाख की आय की। इनकी प्रेरणा से जनता ने लगभग 15 लाख रुपये का स्वेच्छु श्रमदान दिया। इन रुपये से 1863 पाठशालाओं की इमारत बनाई तथा मरम्मत की गई, 670 पुस्तकालायें तथा वाचनालय खोले गये। 200 लैम्प गलियों में लगवाये। 800 लाख वर्ग गज गली-कूचों की जमीन पर फर्श लगवाया। 140914 गढ़े गोबर से भरवाये। 1264 कुएँ तथा बौली, 427 पंचायतघर तथा धर्मशाला, 432930 गज नाली मरम्मत तथा बनवाई गई। 42 नई डिस्पैन्सरियाँ खोली और 501570 वृक्ष और 502 रेडियो सैट लगवाये। यह कोई कम काम नहीं। अगर इसी तरह पंचायतें काम करती रहीं तो

यह गाँवों की जीवनी में बड़ा भारी परिवर्तन ला देंगी। ज्यादा प्रसन्नता की बात तो यह है कि लोगों के हृदय में भी एक नया उल्लास उत्पन्न हो गया है। अब लोग स्वयं चाहते हैं कि उनका गाँव साफ और सुथरा हो। जिन गाँवों में बिजली आ गयी है वहाँ तो कई जगह शहरों जैसी सफाई रहने लग पड़ी है।

स्थानिक स्वराज्य की समस्याएँ (Problems of Local Self-Government)

६२. स्थानिक स्वराज्य का मूल्य निरूपण (Estimate of the Working of Local Bodies)

एकदम यह कह देना कि भारत में स्थानिक स्वराज्य बिल्कुल असफल हो गया है, अतिशयोक्ति होगी। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं के कार्यक्रम में पर्याप्त सफलता नहीं मिली—ब्रिटिश शासनकाल में दो मुख्य उद्देश्यों से स्थानिक स्वराज्य का सूत्रपात किया गया था। पहला तो यह कि आपने मामलों को भली जानने वाली जनता के हाथ में स्थानिक काम-काज सौंप देने से वहाँ के प्रशासन में दक्षता आ जायेगी। दूसरे, इसमें जनता को अच्छी नागरिकता और स्वराज्य-संचालन की शिक्षा मिलेगी। अवश्य ही इन दोनों लक्ष्यों की सिद्धि में हमें बहुत सफलता नहीं मिली। जहाँ तक स्थानिक प्रशासन का सम्बन्ध है, हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ जिला बोर्ड और पंचायतें हमारे नगरों तथा गाँवों को हरा-भरा स्वास्थ्य, सुख और सामान्यहित प्रसारित करने वाले केन्द्र नहीं बना सकी। अधिकतर स्थानिक स्वराज्य-संस्थाएँ जनता को उपयोगी सुविधाएँ प्रदान करने में असमर्थ रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इनकी सफलता बहुत निराशाजनक रही है। सफाई और आरोग्य की व्यवस्था भी अच्छी नहीं हो पाई। प्रसूतिका-गृहों और बाल-मंगल केन्द्रों का तो प्रायः बिल्कुल ही अभाव है। भारत में प्रति वर्ष लगभग 20% बच्चे एक वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व ही चल बसते हैं। 20,000 के लगभग स्त्रियाँ बच्चों के पैदा होने में काल-कवलित हो जाती हैं। ये अंक हमारे देश के स्थानिक स्वराज्य के लिए कलंकस्वरूप हैं। अधिकतर नगरों में सड़कों, पानी और बिजली की अवस्था दयनीय है। बहुत कम स्थानिक स्वराज्य-संस्थाएँ इनसे अधिक लोक-हितकारी कार्य करने की ओर ध्यान देती हैं।

जनता में नागरिक चेतना फैलाने और आस-पास की नागरिक प्रवृत्तियों में जनता की शक्ति बढ़ाने के दूसरे उद्देश्य में भी हमारी स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं को बहुत सफलता नहीं मिली। जहाँ तक चुनावों में अभिरुचि जाग्रत करने का सम्बन्ध है, वे इससे अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकी कि जनता कभी-कभी जोश में आ जाये और कुछ लोग आधे मन से अपना मत दे आये। उलटे जाति तथा सम्प्रदायगत संकीर्णता में वृद्धि ही हुई है। संक्षेप में हमारे स्थानिक स्वराज्य के काम पर अदक्षता

दुरभिसंधियों और भ्रष्टाचार का कलक है। तुलना करने से मालूम होता है कि भारत में स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं को जो सफलता प्राप्त हुई है, वह पश्चिमी देशों में प्राप्त की गई सफलता से बहुत कम है। पश्चिमी देशों की स्थानिक स्वराज्य-संस्थाएँ जनता के हित के लिए नये-नये प्रयोग करती हैं। जनता की ज्ञान-वृद्धि के लिए वे देहाती क्षेत्रों में चलते-फिरते पुस्तकालय, सग्रहालय और स्थायी पुस्तकालय स्थापित करती हैं। वे प्रत्येक ग्राम में रेडियो रखती हैं और स्वास्थ्य आदि की शिक्षा का प्रचार करने के लिए फिल्मों का प्रयोग करती हैं। बहुधा आस-पाम की स्थानिक स्वराज्य-संस्थाएँ जनता को कम खर्च पर ये सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अपने साधनों को एकत्रित कर लेती हैं, बिजली तथा पानी की पूर्ति के लिए वे आपरा में मिल-जुलकर कर्मचारी नियुक्त कर लेती हैं, जिससे व्यय में बहुत कमी हो जाती है। इन सुविधाओं के लिए मिले-जुले प्रयत्न किये जाते हैं। भारत में ऐसे सहकारी प्रयत्नों का पूर्ण अभाव है।

६३. स्थानीय संस्थाओं की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें (Conditions Necessary for the success of Local Institutions)

भारत में स्थानीय स्वशासन के विविध पक्षों का विवेचन करते समय यह प्रश्न स्वभावतः उठ खड़ा होता है कि यहाँ स्थानीय स्वशासन को पूर्ण सफलता क्यों नहीं मिल सकी है? इसका उत्तर यह है कि स्थानीय संस्थाओं की सफलता के लिए जो शर्तें आवश्यक होनी हैं, उनमें से अधिकांश भारत में नहीं हैं। आइये, हम इन शर्तों का विश्लेषण करें और देखें कि वे भारत में कहाँ तक पाई जाती हैं?

प्रबुद्ध नागरिकता (Intelligent Citizenship)—मनरो (Munro) के अनुसार देश में स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government) के सफल संचालन के लिए पहली आवश्यक शर्त प्रबुद्ध नागरिकता (Intelligent Citizenship) है। जब तक जनता के अन्दर सजग, प्रबुद्ध और सक्रिय नागरिकता की भावना नहीं है, जब तक वह अपने अधिकारों और कर्तव्यों को ठीक से नहीं समझती और जब तक वह आलस्य एवं सकीर्णता से मक्त नहीं है, तब तक स्थानीय संस्थाएँ (Local Institutions) वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त कर सकती। भारत में जनसाधारण बहुत दीर्घमूर्ती है और वह नागरिक मामलों में सक्रिय रुचि नहीं लेता। निर्वाचनों में लोग योग्यतम उम्मीदवारों (Candidates) को अपना मत नहीं देते। वे धर्म जाति-बिरादरी और साम्प्रदायिकता की भावना से प्रभावित हो जाते हैं। जातिवाद (Casteism) और साम्प्रदायिकता (Communalism) भारतीय नागरिकता के सबसे बड़े कलक हैं। इसका परिणाम यह होता है कि स्थानीय संस्थाओं (Local bodies) में अयोग्य और बेईमान व्यक्तियों का प्रभाव हो जाता है। ये लोग स्थानीय संस्थाओं में जनता के कल्याण के लिए नहीं जाते। इन लोगों का मुख्य उद्देश्य अपनी स्थिति से अनुचित लाभ उठाना होता है। यही कारण है कि हमारे देश की स्थानीय संस्थाओं (Local Institutions) में षड्यंत्र, पक्षपात, भ्रष्टाचार और पद-लोलुपता का

प्राबल्य है। भारत में प्रबुद्ध और सजग निर्वाचकों तथा सत्यनिष्ठ और निस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं की कमी है।

वास्तविक स्वायत्तता का अभाव (Absence of real autonomy)—स्थानीय प्रशासन (Local administration) की सफलता के लिए एक अन्य आवश्यक बात यह है कि स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। अपने मामलों का प्रबन्ध करने में उन्हें अधिक से अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए और सरकार का उनके ऊपर कम से कम नियन्त्रण रहना चाहिए। सरकार को तो स्थानीय संस्थाओं पर सामान्य निर्देशन (General direction) रखना चाहिए और उनके कार्यों में समन्वय स्थापित रखना चाहिए। दुर्भाग्य से भारत में यह स्थिति नहीं है। हमारी स्थानीय संस्थायें (Local bodies) स्वशासी संस्थायें (Self-Governing bodies) नहीं हैं। उनके ऊपर सरकार का कठोर नियन्त्रण रहता है। डिवीजनल कमिश्नर (Divisional Commissioner) और जिला-अधिकारी उनके दिन प्रतिदिन के कार्यों में निरन्तर बाधा डालते रहते हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, नगरपालिकाओं और जिला-बोर्डों के बजटों के ऊपर कमिश्नर की स्वीकृति आवश्यक होती है। स्थानीय संस्थाओं के सदस्यों को जनता चुनती है। ये सदस्य जनता के प्रति उत्तरदायी भी होते हैं। लेकिन सरकार का अत्यधिक नियन्त्रण उनके इस उत्तरदायित्व पर कुठाराघात करता है। इससे स्थानीय संस्थाओं में पहल करने की प्रेरणा नहीं रहती और उनका लोकतन्त्रात्मक संचालन असम्भव हो जाता है।

धन का अभाव (Paucity of Funds)—स्थानीय प्रशासन की कार्यक्षमता (Efficiency) के लिए चौथी आवश्यक शर्त यह है कि स्थानीय संस्थाओं के पास अपने कृत्यों का समुचित रीति से सम्पादन करने के लिए पर्याप्त धनराशि होनी चाहिए। यह सर्वविदित है कि हमारी स्थानीय संस्थाओं के पास धन की बहुत कमी रहती है। सरकार स्थानीय संस्थाओं को जो सहायता-अनुदान (Grants-in-aid) देती है, वे बहुत कम होते हैं। स्थानीय संस्थाओं के ससाधन इतने उच्च हैं कि वे जनता की आवश्यक सुविधाओं का भी प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसका परिणाम यह होता है कि स्थानीय संस्थाएँ अपने आवश्यक कार्यों को भी पूरा नहीं कर पाती और सफाई, शिक्षा तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य की दशा बहुत खराब रहती है।

विभिन्न कार्यों के ऊपर धन का अनुचित वितरण (Improper distribution of funds over various functions)—स्थानीय स्वशासन (Local self-government) की कार्यक्षमता और सफलता के लिए चौथी आवश्यक शर्त यह है कि स्थानीय संस्थाओं को अपनी आय विभिन्न कार्यों के ऊपर समुचित रीति से वितरित करनी चाहिए जो काम अधिक आवश्यक हों उनके ऊपर अधिक धन खर्च करना चाहिए और जो काम कम आवश्यक हों, उनके ऊपर कम धन खर्च करना चाहिए। इस दृष्टि से शिक्षा (Education), सफाई (Sanitation) और चिकित्सा सहायता (Medical Relief) के ऊपर सबसे ज्यादा खर्च होना चाहिए। प्रशासन और कर्मचारियों के वेतनादि पर इतना खर्च नहीं होना चाहिए जिससे कि समस्त आप

ही समाप्त हो जाएँ। भारत में धन का गलत ढंग से वितरण स्थानीय प्रशासन (Local Administration) की सबसे प्रमुख दुर्बलताओं में से एक है और इसकी वजह से धन के अभाव की त्रुटि और भी अधिक हो जाती है। अक्सर देखने में यह आता है कि राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यों (Nation Building Functions) पर बहुत कम खर्च होता है और इस्टेब्लिशमेंट (Establishment) अधिकांश धन आप ही हड़प लेता है।

६३. सुधार के लिए सुझाव (Suggestions for Improvement)

अशिक्षा का निवारण (Liquidation of Illiteracy)—भारत की स्थानीय संस्थाओं की जिन दुर्बलताओं का ऊपर सकेत किया गया है, उनसे यह स्पष्ट है कि भारत में स्थानीय संस्थाओं में सुधार करने की तीव्र आवश्यकता है। जैसा कि हम बार-बार ऊपर कह चुके हैं, भारत में स्थानीय स्वशासन की असफलता का प्रमुख कारण जनता की अशिक्षा है। यदि हम भारत में स्थानीय संस्थाओं (Local Bodies) को सफल बनाना चाहते हैं, तो यह अतीव आवश्यक है कि शिक्षा का तीव्र गति से प्रसार हो। जो हमारे राष्ट्र के भाग्य-विधाता हैं, उन्हें समस्त स्त्री-पुरुषों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। स्वतन्त्र भारत की जनता अपनी राष्ट्रीय सरकार से कम-से-कम यह तो आशा कर ही सकती है। शिक्षा का व्यापक प्रसार भारत में स्थानीय स्वशासन (Local Self-Government) के एक नए युग का सूत्रपात करेगा। वह जनता की दीर्घसूत्रता और उसके संकुचित एवं साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को दूर कर उसमें स्वस्थ नागरिक भावना का विकास करेगा।

स्थानीय संस्थाओं को अधिक स्वायत्तता मिलनी चाहिए (Local bodies should be given greater autonomy)—दूसरे, इस बात की भी प्रबल आवश्यकता है कि स्थानीय संस्थाओं को अधिक शक्तियाँ एवं स्वायत्तता दी जाए और उन्हें अधिक लोकतन्त्रात्मक बनाया जाए। उन्हें अपने क्षेत्र में अधिक-से-अधिक पहल का अवसर देना चाहिए। राज्य सरकार अपने कमिश्नरों और जिला अधिकारियों द्वारा उनके ऊपर जो नियन्त्रण रखती है, उसमें काफी कमी हो जानी चाहिए। हो सकता है कि सरकारी हस्तक्षेप में कमी हो जाये और अपनी शक्तियाँ बढ़ जाने के कारण स्थानीय संस्थाएँ प्रारम्भ में कुछ गलतियाँ करें, लेकिन लोकतन्त्र की यह अनिवार्य शर्त है कि जनता को अपनी भूलों द्वारा सीखने का अवसर मिलना चाहिए।

आर्थिक स्थिति में सुधार (Their finances should be improved)—तीसरे, स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार होना चाहिए जिससे वे सार्वजनिक कल्याण (Public Welfare) की अभिवृद्धि के लिए उपयोगी और रचनात्मक कार्य कर सकें। उन्हें सहायता-अनुदान (Grants-in-aid) भी काफी मिलने चाहिए। सरकार को राजस्व के कुछ और व्यापक साधन उन्हें दे देने चाहिए। उन्हें इस बात का प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे म्युनिसिपल वाणिज्य कर सकें और

आयप्रद सार्वजनिक उपयोग सेवाओं (Public Utility Services) को व्यापक पैमाने पर चला सकें।

धन का उचित उपयोग (Proper use of finances)—स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय स्रोतों को बढ़ाने से भी ज्यादा जरूरी यह है कि स्थानीय संस्थाओं के पास जितना धन है, वे उसको ही विभिन्न कार्यों के ऊपर ठीक से बाँटें।

स्थानीय संस्थाओं के पुनर्गठन की आवश्यकता (The need for the re-orientation of Local Bodies)—चौथे, हमारी स्थानीय संस्थाओं का सगठन और संविधान इस तरह से बदल दिया जाना चाहिए जिससे कि वे प्राचीन भारत की स्थानीय स्वशासन की परम्पराओं में आ सकें। स्थानीय संस्थाएँ हमारे देश की परम्पराओं के अनुकूल होनी चाहिए। स्थानीय स्वशासन की प्रेरणा-शक्ति नीचे से अर्थात् स्वयं जनता से आनी चाहिए। दुर्भाग्यवश, आज भारत में जो स्थानीय संस्थायें हैं, वे जनता की पहल का परिणाम नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, वे स्वदेशी (indigenous) नहीं हैं। वे पश्चिम की नकल हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें ऊपर से लादा गया है। जनता उनमें कोई रुचि नहीं लेती।

प्रश्न

1. स्थानिक स्वराज्य का क्या अर्थ है ? भारत में उसका क्या महत्त्व है ?
2. आधुनिक भारत में स्थानिक स्वराज्य के आरम्भ तथा विकास का वर्णन कीजिए।
3. भारत की मुख्य स्थानिक स्वराज्य-संस्थाओं के नाम बता कर उनमें से किसी एक के कर्तव्यों का वर्णन कीजिए।
4. अपने प्रदेश की म्युनिसिपैलिटियों के संघटन और कर्तव्यों का वर्णन कीजिए। सरकार उन पर क्या नियन्त्रण रखती है ?
5. भारतीय म्युनिसिपैलिटियों के आय-व्यय की मुख्य मदें बताइये। क्या म्युनिसिपैलिटियों के पास पर्याप्त धन होता है और वे उसका उपयोग उचित रूप से करती हैं ?
6. कारपोरेशन, टाउन एरिया कमेटी, नोटीफाइड एरिया कमेटी, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, कण्टूनमेन्ट बोर्ड और पोर्टेन्ट्रस्ट पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
7. भारत के ग्रामों में स्थानिक स्वराज्य के प्रसार के लिए क्या कार्रवाईयाँ की गई हैं ?
8. ग्राम-पंचायतों के विकास का इतिहास और उनके संघटन तथा कर्तव्यों का वर्णन कीजिए। ग्राम-प्रशासन में पंचायतों का क्या स्थान है ? क्या आप अपने प्रदेश की पंचायतों के काम से सन्तुष्ट हैं ? यदि नहीं तो आप कौन से सुधार सुझाएंगे ?

9. पंजाब के जिला बोर्डों के कार्य का वर्णन कीजिए । जिला बोर्डों पर सरकार का कैसा और कितना नियन्त्रण रहता है ? जिला बोर्ड की आय के साधन बताइए । उनकी मुख्य मदें क्या हैं ?
10. अपने गाँव तथा शहरों के स्थानिक स्वराज्य के मुख्य कार्य और कठिनाइयों की भीमांसा करो । (P. U. 1958)
11. क्या आप चाहते हैं कि आपकी नगरपालिकाओं का चुनाव दलों के आधार पर होना चाहिए ? (P. U. 1958)

Questions

1. What do you understand by Local Self-Government ? What is its importance in India ?
2. Trace the rise and growth of Local Self-Government in modern India
3. Mention the principal institutions of Local Self-Government in India and the functions of any one of them
4. Describe the composition and functions of a Municipality in your state. What is the extent of the control exercised on Municipalities by the Government ?
5. What are the main sources of revenue and heads of expenditure of Indian Municipalities ? Do you think Municipalities have adequate funds or that they spend them properly ?
6. Write short notes on Corporations, Town Area Committees, Notified Area Committees, Improvement Trusts, Cantonment Boards and Port Trusts.
7. What steps have been taken in the direction of the development of Local Self-Government in rural areas in India ?
8. Trace the development of village Panchayats and describe their composition and functions. What part do they play in the administration of the village ? Are you satisfied with their working in the villages of your state ? If not, what reforms would you suggest ?
9. Discuss the working of a typical District Board in the Punjab. What is its composition, powers and functions ? What is the extent and nature of Government control over them ? What are its sources of revenue ? On what activities are the revenue mainly spent ?
10. Write a critical note on the working and difficulties of Local Self-Government in your villages and cities. (P. U. 1958)
11. Do you hold the view that the municipal election should be conducted on party lines ? (P. U. 1958)

सार्वजनिक वित्त (Public Finance)

६४. भारत राज्य का लोक वित्त (Public Finance in India)

रूपये पर ही राज्य का सारा चक्र चलता है—रूपये को इकट्ठा करना और उसको देश के हेतु तथा विधिपूर्वक व्यय करना सार्वजनिक वित्त का मुख्य उद्देश्य है—जैसे एक स्त्री अपने घर की आमदनी को देखभाल करके खर्च करती है। उसी तरह ही राज्य भी रूपये का प्रयोग करते हैं। एक राज्य की कार्यक्षमता तथा उपयोगिता इसी बात से प्रकट होती है कि वह लोगों से इकट्ठा किए हुए धन को किस ढंग से देश के कल्याण के शीर्षकों में बटवारा करती है और फिजूल खर्ची से बचती है।

सार्वजनिक वित्त (Public Finance) का एक और पहलू भी है जो एक संघीय संविधान से खास महत्त्व रखता है। संघ राज्यों का ऐसा समूह है जो अपने-अपने स्थानों में बहुत प्रकार से स्वतन्त्र है, और हर एक राज्य की स्वतन्त्रता ज्यादा तौर पर इस बात पर निर्भर है कि वह यहाँ तक हो सके, अपने ही राज्य से इकट्ठा किए हुए धन पर अपना राज्य चलाए और उसको ज्यादातर केन्द्रीय सरकार की उदारता पर ही ना रहना पड़े। हर एक केन्द्रीय सरकार इसी लिए राजस्व के स्रोतों को भी इसी तरह केन्द्र और राज्यों में बाँटती है—जैसे उसने विधायी (Legislature) तथा प्रशासकीय (Administrative) अधिकारों का बटवारा किया है—भारत के नए संविधान के अधीन भी ऐसा किया गया है, और भारत सरकार के 1935 के अधिनियम का ज्यादातर अनुकरण किया जाता है।

आय-व्यय का बजट (Budget)—हर एक वित्तीय वर्ष के आरम्भ में यानी अप्रैल से पहले केन्द्रीय सरकार तथा अन्य संघीय राज्य अपना बजट बनाते हैं और अपने-अपने राज्य की विधान सभाओं के सामने पेश करते हैं। बजट में आने वाले वर्ष की आंकी हुई (Estimated) आमदनी तथा खर्च का वर्णन होता है।

६५. संघीय सरकार की आमदनी के प्रमुख साधन (Sources of Revenue of the Central Government)

संविधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार की आमदनी के मुख्य साधन ये हैं—

1. सीमा शुल्क (Customs)—भारतीय सरकार को सबसे अधिक आमदनी इस कर से है। यह भारत से विदेशों में जाने वाली वस्तुओं और विदेशों से भारत आने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता है। जैसे जूट के बने सामान, सूती कपड़े, काली मिर्च, चाय इत्यादि। आयात शुल्क विदेशी सब वस्तुओं पर लगाया जाता है। इसका मुख्य

कारण एक और भी है कि अपने देश की बनी हुई वस्तुएँ बाजार में सस्ती बिकें। इस साल इस स्रोत 170 करोड़ रुपये की संभावना है।

2. **आय कर (Income-Tax)**—सरकार का दूसरा मुख्य स्रोत यह है। यह कर पहले हर उस व्यक्ति पर लगाया जाता था। जिस की वार्षिक आमदनी 4200 रुपये से अधिक हो। अब इसको घटा कर 3000 रुपया कर दी है। जिन व्यक्तियों की वार्षिक आमदनी 25000 रुपये से अधिक होती है एक और भी टैक्स जिसको अधि-कर (Super-Tax) कहते हैं, देना पड़ता है। इस साल इन करों से 84.7 करोड़ रुपये की संभावना है।

3. **आय कर (Corporation-Tax)**—सरकार कम्पनियों के मुनाफों पर भी कर लगाती है, जिसको हम निगम या कारपोरेशन टैक्स कहते हैं। अनुमान किया जाता है कि इस साल 55.5 करोड़ रुपये की आय इस स्रोत से होगी।

4. **उत्पादन शुल्क (Excise Duty)**—यह कर भारत में तैयार होने वाली कुछ वस्तुओं पर लगाया जाता है जैसे वस्त्र, विशेषतया बढिया वस्त्र, वनस्पति घी, चाय, कॉफी, चीनी, दिया सलाई, सिगरेट, स्प्रिट इत्यादि। इस वर्ष इस कर से 304.8 करोड़ रुपये के लगभग आमदनी होगी।

5. **जायदाद तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी शुल्क (Estate Duty)**—यह कर पहली दफा 15 अक्टूबर 1953 से जारी किया गया, यह उन लोगों पर लगाया जाता है जो नई सम्पत्तियों के उत्तराधिकारी बनते हैं। वह सम्पत्तियाँ जिनका मूल्य 50,000 रुपये से कम न हो। इससे सरकार को इस वर्ष 25.2 करोड़ रुपये मिलने की संभावना है। इस वर्ष दो और नये कर भी लगे हैं। जिन्हें उपहार तथा व्यय कर कहते हैं इन से 6 करोड़ रुपये की आशा है।

6. **अफीम पर कर (Opium Tax)**—इस कर से सरकार को लगभग 2.9 करोड़ रुपये की आय में होगी।

7. **डाक, तार और रेल से आय (Revenue from Post and Telegraph Net)**—केन्द्रीय सरकार की इस वर्ष रेल की आमदनी में अपना हिस्सा लगभग 6.3 करोड़ रुपये का मिलेगा और डाक और तार 2.3 करोड़ रुपया मिलने का अनुमान लगाया जाता है।

8. **नोट व मुद्रा पर शुल्क (Currency and Mint)**—नोट और रुपये बनाने का एकाधिकार रिजर्व बैंक को मिला हुआ है, और इसका सारा लाभ केन्द्रीय सरकार को जाता है। केन्द्रीय सरकार का टकसालों पर भी पूरा अधिकार है। इनकी भी सारी आय सरकार को मिलती है। इस वर्ष (1958-1959) में 36.5 करोड़ रुपये की आमदनी की आशा है।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार के आय के अन्य भी कई छोटे-छोटे स्रोत (Other Sources of Income) हैं। जैसे कृषि-भूमि के उत्तराधिकार पर शुल्क, मकानों जमीनों पर कर, भंग धतूरा आदि पर कर, बिजली से पर्याप्त होने वाली आय, समाचार पत्रों में छपने वाले विज्ञापनों पर कर, कुछ सवारियों पर

कर, यात्रियों पर कर, चुगी, विभिन्न पेशों पर कर, टिकटों पर शुल्क, भोज की तथा मनोविनोद की वस्तुओं पर कर इत्यादि। इन स्रोतों से केन्द्रीय सरकार को इस साल 25 करोड़ रुपये की आय का अनुमान किया जाता है।

६६. केन्द्रीय सरकार के मुख्य व्यय (Expenditure of the Central Government)

1. **प्रतिरक्षा सेवायें (Defence Services)**—भारत सरकार को सबसे अधिक व्यय प्रतिरक्षा सेवाओं पर करना पड़ता है। 1958-1959 के वर्ष के बजट में कुल व्यय का अनुमान 769 करोड़ रुपये का है जिसमें 278.1 करोड़ रुपया प्रतिरक्षा सेवाओं के लिए रखा गया है। यह खर्च सरकार की अपनी आय का लगभग 34 प्रतिशत है। यह व्यय भारत जैसे देश के लिए बहुत अधिक है। सरकार इससे बहुत-सा रुपया स्वास्थ्य तथा शिक्षा आदि के क्षेत्रों में लगा सकती है, परन्तु संसार में अन्य देशों को शास्त्रों से सुसज्जित होते हुए देखकर भारत को भी अपनी प्रतिरक्षा सेवाओं का खर्च बढ़ाना पड़ रहा है। इसमें बहुत सच्चाई भी है, भारत तथा पाकिस्तान में कश्मीर के मामले पर एक-मत नहीं है। युद्ध की सभावना किसी समय भी हो सकती है।

2. **नागरिक प्रशासन (Civil Administration)**—भारत सरकार का दूसरा व्यय का मद नागरिक प्रशासन है। प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए सहस्रों कर्मचारियों के रखने की आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार का खर्च इस मद पर बहुत अधिक बढ़ गया है क्योंकि कई नये विभाग खोले गए हैं तथा कर्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि हुई है। स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार का व्यय बढ़ने का एक और कारण भी है। सरकार ने विदेशों से कूटनीतिक, सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों की स्थापना की है। इस हेतु अनेक दूतों को विदेशों में रखना पड़ता है। इस वर्ष इस मद पर लगभग 200.4 करोड़ रुपया खर्चने की सभावना है, जो कि हमारी कुल आमदनी का लगभग 24 प्रतिशत है। अग्रेजों के होते हुए भी इस खर्च के विरुद्ध बड़ी ऊँची आवाज उठाई जाती थी, और लोक मत अब भी यही है। परन्तु फिर भी इस व्यय को कम किया जा सकता है पर देश में बेरोजगारी देखते हुए सरकार इसको कम करने में ज्यादा हाथ नहीं उठाती।

ऋण सेवाएँ (Debt Services)—स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने देश की उन्नति के लिए बहुत कार्य किया है। प्रत्येक राज्य में ग्रामों के उत्थान के लिए सामुदायिक योजनाएँ चलाई जा रही हैं। कई स्थानों पर बाँध बांधे जा रहे हैं। जिस में देश के लिए बिजली और खेतों के लिए पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकेगा। भारत सरकार ने इसके इलावा देश के आर्थिक विकास के लिए दो पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई हैं। एक पाँच वर्षीय योजना 1956 में समाप्त हो

चुकी है और दूसरी चल रही है। जो काम हमारी पहली पंचवर्षीय योजना में हुआ है उससे सारी दुनियाँ आश्चर्य में है, क्योंकि इन वर्षों में हमारे देश ने बड़ी तेजी से प्रगति की। इन सब योजनाओं को संचालन करने के लिए धन की आवश्यकता है। अतः सरकार को जनता से धन उधार लेना पड़ रहा है। अभी सरकार ने नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट इत्यादि की योजना चलाई है। इन पर सरकार को काफी सूद देना पड़ेगा। जिन ऋणों की अवधि समाप्त हो जाती है, उनको भी चुकाना पड़ता है। इन सब पर इस वर्ष सरकार को 40 करोड़ रुपया देना पड़ेगा।

4. **विस्थापितों पर खर्च** (Expenditure on Refugees)—भारत विभाजन के बाद भारत सरकार के सामने पाकिस्तान से जो लोग आये, उनके पुनर्स्थापन के लिए बहुत खर्च करना पड़ा। इस साल सरकार विस्थापितों के ऊपर लगभग 20.5 करोड़ रुपया व्यय करेगी।

5. **राष्ट्र निर्माता विभागों पर खर्च** (Expenditure on Nation Building Departments)—भारत सरकार सार्वजनिक कार्य, राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं, स्वास्थ्य तथा शिक्षा इत्यादि पर लगभग 48.1 करोड़ रुपया खर्च करेगी।

6. **अन्य विविध खर्च** (Miscellaneous Expenditure)—भारत सरकार को पेन्शन और राज्यों को अनुदान देने में काफी रुपया लगता है। इस साल राज्यों को 47.0 करोड़ रुपया अनुदान देंगे। राज्य सरकारें इन अनुदानों को दूसरी पंचवर्षीय योजना के संचालन पर व्यय करेंगी। पेन्शन पर इस वर्ष 3.7 करोड़ रुपया देना पड़ेगा। ऊपर जो भारत सरकार के आय के स्रोतों का वर्णन किया गया है, रेलवे तथा डाक और तार की आय सिर्फ 7 तथा 1.2 करोड़ दिखाई गई है। यह आय कई करोड़ों में होती है परन्तु यहाँ सिर्फ वह आय दिखाई गई है जो सरकार को अपने अधिकारियों तथा अन्य खर्च करके बचती है। इस तरह जो आय सरकार को आयकर तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से मिलती है वह सारी अपने पास नहीं रखती। इसमें सारे भाग के राज्यों को हिस्सा मिलता है।

निम्नलिखित तालिका से भारत सरकार की बजट 1957-1958 तथा 1958-1959 की आर्थिक स्थिति का ज्ञान मिलता है। अंक करोड़ों में दिये गए हैं।

भारत सरकार का राजस्व तथा व्यय
Revenue and Expenditure of Government of India
(करोड़ों में)

Head of Revenue	1957-58	1959-60
1. राजस्व सीमा शुल्क (Customs)	183.0	170.0
2. केन्द्रीय उत्पाद शुल्क (Union Excise Duties)	264.6	304.8
3. निगम कर (Corporation Tax)	50.5	55.5
4. आय कर (Net Taxes on Income)	82.6	84.7
5. सम्पदा शुल्क (Estate Duties)	0.0	3.0
6. सम्पत्ति कर (Wealth Tax)		
7. व्यय तथा उपहार कर (Expenditure Tax and Gift Tax)	9.0	12.5
	0.0	6.0
8. अफीम (Opium)	3.3	2.9
9. व्याज (Interest)	6.2	6.6
10. नागरिक प्रशासन (Civil Administration)	56.8	44.2
11. मुद्रा तथा टंकाल (Currency and Mint)	36.8	36.5
12. असैनिक कार्य (Civil Works)	2.8	2.9
13. अन्य स्रोत (Other sources of Revenue)	21.5	19.0
14. डाक तथा तार (शुद्ध अंशदान) (Post and Telegram's Net Contribution)	1.2	2.3
15. रेलवे (शुद्ध अंशदान) (Railways)	6.3	7.0
16. असाधारण मदें (Extraordinary Items)	0.0	14.0
योग (Total)	724.9	769.0
व्यय (Expenditure)	1957-58	1958-59
1. राजस्व पर प्रत्यक्ष मांग (Direct Demands on Revenue)	63.0	94.5
5. सिंचाई (Irrigation)	0.1	0.1
3. ऋण सेवाएँ (Debt Services)	37.4	40.0
4. असैनिक प्रशासन (Civil Administration)	194.7	200.4
5. मुद्रा तथा टंकाल (Currency and Mint)	7.4	8.5
6. असैनिक कार्य (Civil Works)	16.2	18.7
7. Pensions	3.6	3.7
9. सैनिक सेवाएँ (शुद्ध) (Defence Services) (Net)	266.0	278.1
8. विविध (Miscellaneous)	70.9	76.6
10. राज्यों को सहायता तथा अंशदान (Grants to States)	47.2	47.0
11. असाधारण मदें (Extraordinary Items)	13.1	28.4
कुल व्यय	719.6	796.0
राजस्व लेखे से बचत (+) घाटा (−) +	5.0 (−)	27.0

भारत सरकार के खर्च पर समालोचना (Criticism on Union Expenditure)—भारत सरकार के बजट से यह प्रकट है कि पिछले साल यहाँ 724.6 करोड़ की आमदनी पर प्रतिरक्षा सेवाओं पर 266 करोड़ रुपया खर्च हुआ इस वर्ष 769 करोड़ की आय पर 278.1 करोड़ के लगभग रुपया व्यय हो रहा है—इसी तरह यहाँ असेनिक प्रशासन (Civil Administration) पर पिछले वर्ष 194.7 करोड़ खर्च हुआ इस वर्ष 200.4 करोड़ रुपया खर्च होने की संभावना है—यह दोनों खर्च हमारे देश की आमदनी का बहुत-सा भाग खत्म कर देते हैं जिसके फलस्वरूप राष्ट्र निर्माण के लिए सरकार के पास बहुत कम रुपया रह जाता है। अंग्रेजों के समय हमारे नेता बड़े ऊँचे स्तर से इस खर्च को कम करने को चिल्लाते थे। अब जब देश की बागडोर उनके हाथ आ गई है तो यह आशा थी कि वह इस खर्च को कम करेंगे यह आगे से भी बढ़ गया और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि में जितना रुपया खर्च होना चाहिए उससे बहुत कम होता है। परन्तु प्रतिरक्षा सेवाएँ के खर्च को सरकार बन्द करने पर भी नहीं कर सकती क्योंकि संसार की कुछ गति ही ऐसी है। हर समय तीसरे युद्ध का नाम सुनते हैं। दूसरे, पाकिस्तान का हमारे साथ अमैत्रीपूर्ण व्यवहार और तीसरा कश्मीर की अनिश्चित स्थिति यह सब भारत सरकार को विवश करती है कि वह अपनी सेना को बढ़ावे। असेनिक प्रशासन के खर्च के बढ़ने का कारण देश में महंगाई और उसमें हर एक को भत्ते (Dearness allowance) का मिलना, हर साल मसिक वेतन में वृद्धि तथा नये मन्त्रालयों का खोलना है। पं० जवाहरलाल ने कई दफा संसार के देशों के सामने यह समस्या रखी कि प्रतिरक्षा सेवाओं पर खर्च कम करो परन्तु अभी तक इस खर्च में कमी नहीं हुई। अभी भी U.N.O. के सामने यह समस्या है। वह दिवस न केवल भारत के लिए परन्तु संसार भर के लिए स्वर्ण अक्षरों में लिखने वाला होगा जब संसार की प्रतिरक्षा सेवाओं में कमी होगी।

६७. राज्यों की सार्वजनिक वित्त व्यवस्था (Public Finance in States)

राज्यों के राजस्व व व्यय के प्रमुख मद (Main heads of state Revenue)—नये संविधान में प्रशासन-कार्य को चलाने तथा जन-कल्याण को बढ़ाने के प्रयोजन से राज्यों के लिए राजस्व का कुछ भाग निर्धारित है। राज्यों की आय के प्रमुख आधार भू-राजस्व, आय-कर का भाग, कृषि-सम्बन्धी आय, सम्पदा और उत्तराधिकार कर, मद्यसार वाली शराबों पर उत्पादन कर, अफीम, भाँग तथा अन्य निद्राकारी पदार्थ, धन्वों पर कर आदि हैं। राज्य-व्यय के प्रमुख मदों में नागरिक प्रशासन (पन्सि, न्यायालय, जेल आदि को सम्मिलित कर) तथा शिक्षा, लोक-स्वास्थ्य, कृषि, सहयोगिता, देहात सुधार, उद्योग आदि से सम्बद्ध उपकारक या राष्ट्र-निर्माणकारी कार्य आते हैं।

६८. पंजाब का आय-व्यय (Revenue and Expenditure of the Government of Punjab)

राज्य-राजस्व (State Revenue)—1958-59 के बजट-आकन में 4.34 करोड़ रुपये की कुल आय दिखायी गयी है। राज्य-धनागम का मुख्य आधार भू-राजस्व (Land Revenue) है। पंजाब में इस स्रोत से कुल राजस्व का दसवाँ भाग प्राप्त होता है। 1958-59 में इस स्रोत से वार्षिक आय 4.34 करोड़ रुपये होने की आशा है। राज्यों का राजस्व के अतिरिक्त आय का स्रोत जल-दर (Water rate) अर्थात् नहरी जल के उपलब्ध करने का कर है इससे इस वर्ष 1.40 करोड़ आमदनी की आशा है। 1958-59 में स्टाम्प-कर से आय 1.40 करोड़ की आय और जंगलों से लगभग .58 करोड़ की प्राप्ति की आशा है। राज्यों के राजस्व का अन्य निकास बिक्री-कर है, जिससे 1958-59 में 2.73 करोड़ रुपये की प्राप्ति की आशा है। गत वर्ष जैसे विलास-सम्बन्धी-कर, नगर सम्पत्ति-कर, यात्री समान-कर, पेट्रोल-बिक्री-कर आदि से आमदनी हुई थी। इस साल भी इन तथा अन्य विविध करों से 22.67 करोड़ रुपयों की आशा है।

व्यय, नगर-प्रशासन, सामाजिक सेवाएँ तथा सिंचाई (Expenditure, on Civil Administration, Social Services and Irrigation etc.)—व्यय की मदों में से सबसे भारी मद नगर-प्रशासन पर किया गया व्यय है, जिसमें सामान्य प्रशासन, पुलिस, न्यायालय, जेल आदि पर लगाया गया धन सम्मिलित है। चालू वर्ष के बजट में नगर-प्रशासन के लिए 9.11 करोड़ रुपयों की निर्धारित कुल-राशि में से आधी धन-राशि केवल पुलिस पर व्यय की जायगी। संक्षेपतः, पुलिस इस राज्य के कुल वार्षिक व्यय के 10% की उत्तरदायी है। पुलिस पर इतने अधिक धन के व्यय करने से इस बात की शिकायत का अवसर मिल जाता है कि राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यों (Nation Building Activities) पर बहुत रुपया व्यय नहीं किया जा रहा है। 1958-59 में कार्यों के लिए सामूहिक रूप से 17.66 करोड़ रुपये दिये गए हैं। इससे गत वर्ष सामाजिक सेवाओं के लिए रखी गयी धन-राशि से 5 करोड़ की वृद्धि प्रकट होती है। राज्य के व्यय का एक और आवश्यक मद सिंचाई-विषयक कार्यों पर किया गया व्यय है। 1958-59 के बजट के आधार पर यह व्यय 1.31 करोड़ हो जाएगा। अन्य मद (Other Heads) जिन पर पंजाब की राज्य सरकार विभिन्न प्रकार की धन-राशि व्यय करती है, वे लोक-कर्म (Public Works), ऋण-व्यय (Debt Services), दुर्भिक्ष तथा विभिन्न करों की वसूली है। नीचे दी हुई सारणी (Table) में पंजाब की 1957-58 तथा 1958-59 आय-व्यय का लेखा दिखाया गया है—

पंजाब का आय-व्यय लेखा

(Revenue and Expenditure of the Government of Punjab)

(करोड़ों में)

Heads of Revenue	1957-58	1958-59
1. भू-राजस्व (Land Revenue)	3.79	4.34
2. आय कर का भाग (Share of Income tax)	3.11	3.26
3. उत्पादन शुल्क का भाग (Share Central Excise Duties)	1.96	3.52
4. जायदाद तथा उत्तराधिकारी शुल्क का भाग (Estate duty)	0.12	0.12
5. स्टाम्प (Stamps)	1.30	1.40
6. सोत जनदार (Irrigation)	1.90	1.73
7. केन्द्र से अंशदान (Grants-in-aid from Central Govt.)	2.34	2.38
8. बिक्री कर (Sales Tax)	4.27	2.73
9. अन्य स्रोत (Other Sources)	17.80	22.67
योग Total	42.24	47.61
Heads of Expenditure		
1. राजस्व से सीधी माँग (Direct demands on the Revenue)	3.63	4.03
2. नागरिक प्रशासन (Civil Administration)	8.41	9.11
3. ऋण-व्यय (Debt Services)	0.79	0.90
4. सिंचाई (Irrigation)	1.08	1.31
5. सामाजिक सेवाएँ (Beneficial Departments)	12.88	17.66
6. असैनिक कार्य (Civil Works)	7.03	9.79
7. विविध (Miscellaneous)	4.27	5.05
8. असाधारण मदें (Extraordinary Items)	1.56	2.04
कुल व्यय (Total)	39.65	49.89
लेखे से बचत (+) घाटा (—)	+2.59	—2.08

प्रश्न

1. भारत का संविधान, राजस्व, केन्द्रीय सरकार तथा राज्य-सरकारों में किस प्रकार विभाजित करता है ?
2. भारत-सरकार की आय तथा व्यय के प्रमुख मदों के नाम बताओ। उनकी प्रधानता दर्शाने के लिए आनुमानिक आंकड़े भी दो।
3. पंजाब सरकार के आय-व्यय सम्बन्धी प्रमुख स्रोत क्या हैं तथा उनकी समीक्षा करो।
4. राज्य सरकार की आय के उद्गमों के कौन से स्रोत हैं ? उनके नाम बताओ। यह धन कैसे व्यय किया जाता है ?

Questions

1. How does the Constitution divide the sources of revenue between the Union and the State Governments ?
2. Name the important sources of income and principal heads of expenditure of the Government of India. Give approximate figures to show their importance.
3. Enumerate and carefully discuss the main sources of revenue and expenditure of the Punjab Government.
4. Enumerate the sources of income of a state Government. How is the money spent ?

सार्वजनिक स्वास्थ्य, चिकित्सा और शिक्षा

(Public Health, Medical Relief and Education)

६६ भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की दशा—(The State of Public Health in India)

भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की शोचनीय स्थिति उसके पिछड़ेपन का एक स्पष्ट चिन्ह है। स्वतन्त्रता के पूर्व इस देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य की कितनी बुरी दशा थी, यह निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। 1947 के पूर्व हमारे यहाँ औसत आयु 27 वर्ष थी। जब कि इंग्लैण्ड में यह आयु 62 वर्ष और जापान में 47 वर्ष थी। भारत में मृत्यु-दर भी संसार में सबसे अधिक थी। यहाँ प्रति एक हजार पर 23 व्यक्ति मर जाते थे जब कि अमरीका और इंग्लैण्ड में यह संख्या क्रमशः 11.2 और 12.4 थी। हमारे यहाँ बच्चों की मृत्यु भी बहुत ज्यादा होती थी। पाँच बच्चों में से एक बच्चा एक वर्ष की आयु का होने से पूर्व ही मर जाता था। अब भी मलेरिया और तपेदिक से प्रतिवर्ष बहुत से लोग मर जाते हैं। अनुमान है कि प्रति औसत साल मलेरिया से 7.5 लाख लोग बीमार पड़ते हैं और उनमें से 3 लाख लोग चल बसते हैं। यह भी हिसाब लगाया गया है कि तपेदिक से प्रायः 25 लाख लोग प्रति वर्ष बीमार पड़ते हैं और उनमें से 5 लाख लोग चल बसते हैं। भारत में संक्रामक रोग (Infectious Diseases) भी संसार के सभी देशों से अधिक पाये जाते हैं।

कारण (Causes)—भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की जो बुरी दशा है, उसके कारण खोजने के लिए हमें दूर नहीं जाना पड़ेगा। इसका पहला कारण तो यह कि हमारी जनता अशिक्षित है। स्वास्थ्य और सफाई के नियमों का न तो उन्हें ज्ञान ही है और न वे उनका पालन ही करते हैं। उनका विचार है कि महामारियाँ ईश्वरीय कोप के कारण होती हैं और उनसे बचने के या उनका इलाज करने के उपाय करना बिल्कुल व्यर्थ है। ऐसी स्थिति में हमें इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि बीमारियाँ भारत में बड़ी आसानी से अपना पैर जमा लेती हैं और लाखों-करोड़ों लोगों को अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ता है। अशिक्षा भारतीय जनता की विकट निर्धनता और जीवन-स्तर की हीनता का कारण भी है और परिणाम भी। यह सामान्यतया ज्ञात नहीं है कि भारत में 39.1 प्रतिशत से भी कम लोगो को अच्छा भोजन मिलता है, 41.1 प्रतिशत लोगों को उचित रूप से पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता और 20.1 प्रतिशत लोगों को खराब भोजन मिलता है या वे

आधे भूखे रहते हैं। अधिकांश लोगों का भोजन असंतुलित होता है और वे आसानी से बीमार पड़ जाते हैं। हमारे खाद्य-पदार्थों में काफी अपमिश्रण रहता है। इसकी वजह से भी लोगों के स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँच रही है। हमारे यहाँ पानी की सप्लाई सन्तोषजनक नहीं है। भारत के केवल 6 प्रतिशत शहरों में ही संरक्षित पानी की सप्लाई का प्रबन्ध है। इससे कुल जनसंख्या के केवल 6.15 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या के 48.5 प्रतिशत अंश की ही आवश्यकताएँ पूरी हो पाती हैं। 48 शहरों में से जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या एक-एक लाख है, केवल 23 शहरों में ही नाले-नालियों की समचित व्यवस्था है। स्वास्थ्य की इतनी बुरी दशा होने के कारण भारत में स्वास्थ्य की प्रायः समस्त योजनाएँ निम्नलिखित बड़ी-बड़ी श्रेणियों में विभाजित की गई हैं—(1) बीमारी का नियंत्रण (Control of Disease), (2) चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा (Medical Education), (3) प्रशिक्षण और अनुसन्धान (Training and Research), (4) ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्र (Rural Health Units), (5) पानी और सफाई का प्रबन्ध (Water Supply and Drainage), (6) परिवार नियोजन (Family Planning) और (7) स्वास्थ्य शिक्षा (Health Education)।

स्वास्थ्य मंत्रालय (Ministry of Health)—स्वतन्त्रता के पश्चात् केन्द्र में एक स्वास्थ्य मंत्रालय की स्थापना हो गई है। यह मंत्रालय केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों (Centrally administered areas) के लिए सीधे उत्तरदायी है। जहाँ तक राज्यों का सम्बन्ध है, स्वास्थ्य मंत्रालय का कार्य केवल परामर्श देना और समन्वय स्थापित करना है। इसके अतिरिक्त वह डाक्टरी विषयों पर उन्हें महत्वपूर्ण जानकारी देता रहता है। स्वास्थ्य मंत्रालय विश्व स्वास्थ्य (W. H. O.) अन्तर्राष्ट्रीय बाल निधि संस्था (UNICEF) राकफेलर फाउण्डेशन (Rockefeller Foundation) और रेड क्रॉस (Red Cross) जैसी अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थाओं से सम्पर्क बनाये रखता है। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय और भी बहुत से कार्य करता है। बाहर से जिन विभिन्न औषधियों का आयात होता है, वह उनके गुण सम्बन्धी प्रमाणों का निरीक्षण करता है, केन्द्रीय स्वास्थ्य संस्थाओं पर नियन्त्रण रखता है और चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् (Council of Medical Research) तथा अन्य सरकारी संस्थाओं द्वारा गवेषणा की व्यवस्था करता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वास्थ्य (Health after Independence)—सार्वजनिक स्वास्थ्य के सुयोजित और समग्र आयोजन का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि जनता के स्वास्थ्य में स्पष्ट सुधार दिखाई देखा है। 1947 में प्रति 1000 जनसंख्या पर सामान्य मृत्युदर 19.7 थी। 1954 में वह घटकर 12.9 रह गई है। इसी प्रकार 1947 में बच्चों की मृत्यु दर प्रति 1000 बच्चों पर 146 थी। अब वह घटकर 113 रह गई है। अब बीमारियों से भी पहले की अपेक्षा कम मृत्युएँ होने लगी हैं। पहले प्रति 1000 पर 10.8 लोग विभिन्न प्रकार के ज्वरों से मर जाते थे। अब उनकी संख्या घटकर 6.1 रह गई है। पहले हैजे से प्रति 1000 पर 0.4 व्यक्ति मरते थे, अब 0.04 व्यक्ति ही मरते हैं। प्लेग तो अब प्रायः विलुप्त ही हो गई है। इसके

साथ ही औसत आयु 26 वर्ष से बढ़कर 32 हो गई है। हमारे यहाँ प्रजनन दर (Birth rate) भी 26.6 से कम होकर 25.8 रह गयी है। यह बहुत सराहनीय प्रयास है और आशा की जाती है कि आगे के कुछ वर्षों में भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की दशा बहुत अच्छी हो जायेगी। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में केन्द्र ने स्वास्थ्य प्रायोजनाओं पर 125.5 करोड़ रुपया खर्च किया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के काल में उन पर 274 करोड़ रुपया खर्च किये जाने का अनुमान है।

१००. भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा का संगठन (Organisation of Public Health and Medical Relief in India)

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय का संगठन (Organisation of the Central Ministry of Health)—केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय में मुख्य मंत्रालय और स्वास्थ्य सेवाओं का महानिदेशालय (Directorate General of Health Services) सम्मिलित हैं। यह महानिदेशालय एक सम्बद्ध कार्यालय (Attached Office) के रूप में कार्य करता है। निदेशालय अपने अधीनस्थ कार्यालयों के द्वारा विभिन्न स्वास्थ्य योजनाओं तथा अन्य सम्बद्ध मामलों के प्रारम्भ और क्रियान्वीकरण के लिये उत्तरदायी है। सभी महत्वपूर्ण समुद्री और हवाई पत्तनों (Ports) में ऐसी स्वास्थ्य संस्थायें कार्य करती रहती हैं जो संक्रामक बीमारियों के विस्तार को रोकती हैं। एक औषधि नियंत्रक (Drug Controller) और चार सहायक औषधि नियंत्रक (Asst. Drug Controllers) हैं जो इस बात की देखभाल रखते हैं कि हमारे देश में बाहर से जो दवायें आती हैं, वे निश्चित प्रमाणों के अनुसार हैं या नहीं। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् (Indian Council of Medical Research) स्वयं प्रत्यक्ष रूप से या अनुसन्धान संस्थाओं द्वारा परोक्ष रूप से स्वास्थ्य समस्याओं के सम्बन्ध में गवेषणा को प्रोत्साहन देती है। भारत की मलेरिया संस्था (Malaria Institute of India) मलेरिया की रोक थाम के उपाय करती है। कुछ संस्थायें विभिन्न प्रकार के टीकों के निर्माण में निरत हैं। प्रसूति और बालकल्याण सम्बन्धी एक संस्था और क्षय सम्बन्धी एक संस्था स्वास्थ्य सेवाओं के महानिदेशालय से और संलग्न है।

१०१. राज्यों में सार्वजनिक स्वास्थ्य और चिकित्सा का संगठन (Organisation of Public Health and Medical Relief in States)

सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग (Public Health Department)—स्वास्थ्य की समस्या के दो पहलू हैं—बीमारियों को रोकना और बीमारियों का इलाज करना। प्रत्येक राज्य में दो अलग-अलग विभाग हैं और उनमें से प्रत्येक समस्या के एक-एक पहलू से सम्बन्ध रखता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग (Public Health Department) महामारियों तथा अन्य बीमारियों के रोकने के लिए उचित कार्यवाही

करता है। गंदगी बीमारी का प्रमुख कारण है। सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग इस कारण को दूर करने का प्रयास करता है। नगरों में नगरपालिकाएँ स्वास्थ्य अधिकारियों (Health Officers) और स्वच्छता निरीक्षकों (Sanitary Inspectors) आदि की नियुक्त करती हैं। ये अधिकारी इस बात की व्यवस्था करते हैं कि लोगों को जल, तथा तरकारी, फल, दूध और अन्य खाद्य पदार्थ शुद्ध मिलें। वे इस बात की भी देखभाल रखते हैं कि सड़कें साफ रहें और वहाँ से गंदगी हटा दी जाये। उन्हें इस बात का भी प्रयत्न करना पड़ता है कि बीमारियों के सम्बन्ध में लोगों को सावधान रखा जाये और आवश्यकता पड़ने पर उनके टीके लगा दिए जायें। उन्हें मकानों आदि के निर्माण के सम्बन्ध में भी सफाई का ध्यान रखना पड़ता है।

देहाती क्षेत्रों में ये कार्य जिला बोर्डों की सार्वजनिक स्वास्थ्य शाखा (Public Health Branch) करती है। सार्वजनिक स्वास्थ्य निर्देशक (Director of Public Health) इस विभाग का प्रधान होता है वह एक मंत्री की अधीनता में कार्य करता है जो विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है।

चिकित्सा विभाग (Medical Department)—चिकित्सा विभाग बीमारियों के इलाज से सम्बन्ध रखता है। प्रत्येक जिले में एक सरकारी अस्पताल होता है जो सिविल सर्जन की अधीनता में कार्य करता है। छोटे शहरों में डिस्पेंसरियो होती हैं जो असिस्टेंट सर्जन और सब असिस्टेंट सर्जन की अधीनता में चलती हैं। सरकारी अस्पतालों के अलावा सरकार कुछ पागलखाने भी चलाती है जिनमें मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्ति रहते हैं। सार्वजनिक स्वास्थ्य की तरह चिकित्सा भी राज्य का विषय है। यह विभाग सरकारी अस्पतालों के महानिरीक्षक (Inspector General of Civil Hospitals) के प्रशासनिक नियंत्रण में रहता है। यह अधिकारी उत्तरदायी मंत्री के सामान्य निर्देशन में रहकर कार्य करता है।

सरकारी अस्पतालों के अलावा कुछ अस्पताल गैर सरकारी व्यक्तियों या ट्रस्टों के भी होते हैं। ये भी जनता की सहायनीय सेवा करते हैं।

१०२. भारत में शिक्षा का महत्त्व (Importance of Education in India)

शिक्षा और लोकतन्त्र (Education and Democracy)—एक ऐसी श्रेष्ठ शिक्षा प्रणाली, जिसके लाभ सबको समान रूप से उपलब्ध हों, देश में लोकतन्त्र की सफलता के लिए सबसे मजबूत बुनियाद होती है। प्रभु भाग्य सर्व प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य (Sovereign Democratic Republic) है। उसके नये संविधान में व्यवस्था की गई है कि उसके सभी लोग धन, यौन जाति वर्ण या रंग के बिना किसी भेदभाव के देश के प्रशासन में पूरा सहयोग देंगे। संविधान ने वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) की स्थापना की है और जनता को कुछ महत्वपूर्ण मूल अधिकार (Fundamental Rights) दिये हैं। क्या ये विशेषाधिकार (Privileges) भारत में सच्चे लोकतन्त्र (True Democracy) के एक नये युग का

सूत्रपात करेंगे ? क्या हम जनता के जनता द्वारा और जनता के लिए (Government of the People, by the People and for the People) शासन को स्थापित करना चाहते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर भविष्य के गर्भ में हैं लेकिन, इतिहास से हमें कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं। वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) जर्मनी में हिटलर के अधिनायकवाद (Dictatorship) को नहीं रोक सका था। अमरीकी संविधान के अधिकार पत्र (Bill of Rights) ने अमरीकी जनता को लोकतन्त्र का रूप ही दिया है, उसकी आत्मा नहीं। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि देश की जनता शिक्षित किस प्रकार हो। भारत जैसे देश में जहाँ जनता अज्ञान के गर्त में डूबी हुई है, लोकतन्त्रात्मक शासन की रूपसज्जा से एक छोटे से वर्ग को ही लाभ पहुँचेगा। लोकतन्त्रात्मक भारत को ऐसे प्रबुद्ध और ज्ञानवान् नागरिकों की आवश्यकता है जो स्वतन्त्रता का मूल्य समझते हैं और अपने अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं के ऊपर किये गये प्रत्येक हस्तक्षेप को रोकने के लिए तय्यार हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा न केवल सार्वभौम ही हो, प्रत्युत उसका लक्ष्य स्वतन्त्र चेतना और स्वतन्त्रताप्रिय नागरिकों का निर्माण करना हो। उसे हृदय और मस्तिष्क दोनों को अच्छा प्रशिक्षण देना चाहिए जिससे कि नागरिक सार्वजनिक कल्याण (General Welfare) में अधिक से अधिक योगदान दे सके।

१०३. भारत की शिक्षा प्रणाली (Educational System in India)

भारत में शिक्षा मुख्यतः राज्य सरकार (State Government) का विषय है। विभिन्न राज्यों की शिक्षा-प्रणाली में यत्किंचित् अन्तर है। हमारी शिक्षा-प्रणाली के निम्नतम धरातल पर ३ से ६ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए नर्सरी स्कूल (Nursery Schools) हैं। इसके बाद ६ से ११ वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए प्रारम्भिक या प्राथमिक स्कूल (Primary or Elementary Schools) आते हैं। ये स्कूल जूनियर बेसिक स्कूल (Junior Basic Schools) कहलाते हैं। तत्पश्चात् सेकेंडरी स्कूलों (Secondary Schools) का दर्जा है। सेकेंडरी स्कूल दो तरह के हैं। मिडिल या सीनियर बेसिक स्कूल (Middle or Senior Basic Schools) और हाई स्कूल (High Schools) ये स्कूल मोटे तौर से क्रमशः ११ से १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। कुछ राज्यों में सेकेंडरी स्कूल (Higher Secondary Schools) कहलाते हैं और साधारणतया ११ से १७ वर्ष तक की आयु के लड़के-लड़कियों की आवश्यकता को पूरा करते हैं। सामान्य शिक्षा में हाई स्कूल के बाद इन्टरमीडिएट कालिज या डिग्री कालिजों की इन्टरमीडिएट कक्षाएँ आती हैं। ये सामान्यतः १६ से १८ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के लिए हैं। इन्टरमीडिएट पास करने के उपरान्त विद्यार्थी डिग्री कालिजों में या विश्वविद्यालयों में प्रवेश करते हैं। यहाँ का आयु वर्ग १८ से २४ वर्ष है।

व्यावसायिक शिक्षा में पोलिटेक्नीक्स (Polytechnics) या व्यावसायिक और तकनीकी स्कूल कुछ मिले-जुले से (Mixed Type) होते हैं। वे जो डिप्लोमा और सर्टिफिकेट देते हैं, वे अवर स्नातक (Under Graduate) और उच्च स्तर दोनों के होते हैं। व्यावसायिक और तकनीकी कालिज (Professional and Technical Colleges) अन्य कालिजों के समान ही होते हैं और विश्वविद्यालय की उपाधियाँ (University Degrees) देते हैं।

नयी योजना (The New Plan)—सरकार की नयी शिक्षा-योजना (New Educational Plan) के अनुसार बच्चा जूनियर बेसिक स्कूल (Junior Basic School) में शिक्षा प्रारम्भ करेगा। इसके बाद वह सीनियर बेसिक स्कूल (Senior Basic School) में चला जायेगा और फिर वहाँ से हाई स्कूल में जहाँ वह चार वर्ष शिक्षा प्राप्त करेगा। वर्तमान माध्यमिक शिक्षा (Intermediate Education) समाप्त हो जायेगी और हाई स्कूल के विद्यार्थी सीधे विश्वविद्यालय में चले जायेंगे। बैचलर की डिग्री के लिए तीन वर्ष का पाठ्यक्रम। (Three Years Course) होगा और विश्वविद्यालय कृषि, चिकित्सा, इंजीनियरी, प्रौद्योगिकी (Technology) तथा विज्ञान जैसे विषयों के शिक्षण पर ज्यादा जोर देंगे। इसके साथ ही यह नहीं समझना चाहिए कि मानव विज्ञानों (Humanities) की उपेक्षा होगी। सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उन्हें समुचित स्थान मिलता रहेगा।

बुनियादी शिक्षा की रूपरेखा (Pattern of Basic Education)—पिछले वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने बुनियादी शिक्षा (Basic Education) को बच्चों की शिक्षा के लिए आदर्श मान लिया है।

बुनियादी शिक्षा उत्पादक या निर्माणात्मक दस्तकारियों के माध्यम से दी जाती है। इसमें बच्चे के भौतिक और सामाजिक वातावरण (Physical and Social Environment) का पूरा ध्यान रखा जाता है। उत्पादन-क्रिया पर जोर देने का यह अर्थ नहीं होता कि स्कूल के साधारण विषयों के मानवीय प्रभाव (Humanising Influence) की उपेक्षा की जाये।

बुनियादी शिक्षा के लिए केवल कताई और बुनाई, बागबानी, बढ़ईगिरी, चमड़े का काम, जिल्द बनाना और सीना, भोजन बनाना तथा घर का प्रबन्ध करना जैसी घरेलू दस्तकारियाँ ही उपयोगी हैं। इसका कारण यह है कि ये दस्तकारियाँ ही बौद्धिक विकास का पर्याप्त अवसर देती हैं। इन दस्तकारियों के द्वारा ज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर उन्नति की जा सकती है और व्यावहारिक कार्यक्षमता (Practical Efficiency) का अर्जन किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य दूसरी बात यह है कि बुनियादी दस्तकारी (Basic Craft) ऐसी होनी चाहिए जो स्कूल के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण (Natural and Social Environment) के अनुकूल हो।

हाल में ही भारत सरकार ने बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए एक संस्था (National Centre for Research in Basic Education) खोली है। यह संस्था बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में गवेषणा करेगी, पाठ्यक्रम तैयार करेगी तथा शिक्षण-पद्धतियों पर शोध कार्य करेगी। इस संस्था का यह भी कार्य होगा कि वह दस्तकारियों में सुधार करे, उनकी सामग्री के सम्बन्ध में अनुसंधान करे और बच्चों तथा शिक्षकों के लिए साहित्य का निर्माण करे। यह संस्था बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं को भी ऊँचे धरातल पर प्रशिक्षित करेगी।

सेकेंडरी शिक्षा (Secondary Education)—सेकेंडरी शिक्षा के दो स्तर हैं—मध्य स्तर (Middle Stage) और हाई स्कूल स्तर (High School Stage)। यह मध्य-स्तर या सीनियर बुनियादी शिक्षा (Senior Basic Education) जूनियर बुनियादी शिक्षा (Junior Basic Education) की अनुपूरक होती है। सीनियर बुनियादी स्कूलों की शिक्षा में दस्तकारियों पर विशेष जोर दिया जाता है। हाई स्कूल स्तर के विभिन्न राज्यों में विभिन्न नाम हैं। जो विद्यार्थी हायर सेकेंडरी स्तर को पार कर लेते हैं, वे विश्वविद्यालयों की डिग्री कक्षाओं में भरती हो जाते हैं। यहाँ डिग्री पाने के लिए शिक्षण-काल तीन वर्ष है। अन्य समस्त दशाओं में छात्रों को दो वर्ष इन्टरमीडिएट कक्षाओं में लगाने पड़ते हैं। भारत सरकार ने सेकेंडरी शिक्षा के लिए एक अखिल भारतीय परिषद् (All India Council for Secondary Education) की स्थापना की है। यह परिषद् सेकेंडरी शिक्षा की प्रगति में सहायता देती है और उसका निरीक्षण करती है।

इस प्रकार भारत के वर्तमान शिक्षा संगठन (Educational Structure) का सारांश यह है (1) प्राथमिक स्कूल जो बच्चे की प्रादेशिक भाषा (Regional Language) या मातृ भाषा (Mother Tongue) के द्वारा शिक्षा देते हैं; (2) मिडिल स्कूल जो प्रादेशिक भाषा और अंग्रेजी या केवल प्रादेशिक भाषा के द्वारा शिक्षा देते हैं; (3) सेकेंडरी स्कूल जो दसवी कक्षा तक शिक्षा देते हैं; (4) इन्टरमीडिएट कालिज जो बोर्डों या विश्वविद्यालयों से संलग्न होते हैं; (5) डिग्री कालिज जो विश्वविद्यालयों से संलग्न होते हैं और (6) स्नातकोत्तर तथा गवेषणा संस्थाओं (Post Graduate and Research Institutions)।

तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा (Technical and Professional Education)—अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (All India Council of Technical Education) की स्थापना नवम्बर 1945 में हुई थी। इसका उद्देश्य है कि तकनीकी शिक्षा के समन्वय और विकास के सम्बन्ध में सरकार को राय देना। परिषद् के अनुसार अब इंजीनियरी संस्थाएँ प्रायः 54,00 विद्यार्थियों को डिग्री पाठ्यक्रमों (Degree Courses) के लिए और 88,00 विद्यार्थियों को डिप्लोमा पाठ्यक्रमों (Diploma Courses) के लिए लेती हैं। 1947 में यह संख्या क्रमशः 2500 और 1000 से भी कम थी। योजना आयोग (Planning Commission) ने हिसाब लगाया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan) के अधीन जो विभिन्न

परियोजनाएँ (Projects) चल रही हैं उनके लिए आवश्यक इंजीनियरी से कर्मचारियों की पूर्ति के लिए 18 नए कालिजों और 62 पोलिटेक्नीकों (Polytechnics) की जरूरत है।

सामाजिक शिक्षा (Social Education)—भारतीय जनता का एक बहुत बड़ा भाग अशिक्षित है और इसमें अधिकांश वयस्क हैं। सामाजिक शिक्षा (Social Education) का उद्देश्य उनकी आर्थिक कार्यक्षमता (Economic Efficiency) में सुधार करना है। सामाजिक शिक्षा इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उनके लिए निम्नलिखित बातों की व्यवस्था करती है : (1) साक्षरता (2) स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों का ज्ञान, (3) अधिकारों और कर्तव्यों की चेतना सहित नागरिकता की भावना, (4) समाज और व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुकूल मनोरंजन के स्वस्थ साधन। इन विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित करने का वास्तविक उत्तरदायित्व राज्य सरकारों का है। केन्द्रीय सरकार उन्हें आर्थिक सहायता देती है और उनका पथ प्रदर्शन करती है। श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में स्थापित केन्द्रीय सामाजिक कल्याण बोर्ड (Central Social Welfare Board) सामाजिक कल्याण (Social Welfare) के लिए कार्य करने वाली भारत मेवक समाज जैसी विविध मस्याओं को आर्थिक सहायता देकर उनकी गतिविधियों का विकास करती है।

१०४. केन्द्रीय शिक्षा अधिकारी (Union Educational Authorities)

भारत की शिक्षा प्रणाली का आयोजन (Planning), अधीक्षण (Supervision) और नियन्त्रण (Control) विविध शिक्षा अधिकारियों (Educational Authorities) के हाथों में है। लेकिन वैज्ञानिक या तकनीकी शिक्षा की राष्ट्रीय महत्त्व की उन संस्थाओं के प्रशासन के लिए जिनका वह अंशतः या पूर्णतः विलोपोषण करती है, संघ सरकार (Union Government) ही उत्तरदायी है। भारत सरकार शिक्षा मन्त्रालय (Education Ministry) के द्वारा चार केन्द्रीय विश्वविद्यालयों (बनारस विश्वविद्यालय, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय और विश्वभारती) और उच्च शिक्षा की कई अन्य संस्थाओं के लिए उत्तरदायी है। भारत पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (The Archaeological Survey of India), भारत-नृवंश-सर्वेक्षण विभाग (Anthropological Survey of India), राष्ट्रीय लेखागार (National Archives) और राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता (National Library Calcutta) शिक्षा मन्त्रालय की अधीनता में हैं।

इसके अतिरिक्त संघ सरकार (Union Government) निम्नलिखित विषयों से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं या एजेंसियों पर भी नियन्त्रण रखती है—(1) व्यावसायिक, औद्योगिक या तकनीकी प्रशिक्षण जिसमें पुलिस अधिकारियों का भी प्रशिक्षण सम्मिलित है, (2) विशेष अध्ययन अथवा गवेषण की उन्नति, (3) अपराधों की खोज और शोध के सम्बन्ध में वैज्ञानिक या तकनीकी सहायता।

केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय में निम्नलिखित अधिकारी हैं—एक शिक्षा सलाहकार और सचिव (Educational Adviser and Secretary) एक अतिरिक्त सचिव

(Additional Secretary), संयुक्त शिक्षा सलाहकार और पदेन संयुक्त सचिव (Joint Educational Adviser and Ex-Officio Joint Secretary), दो उप सचिव (Deputy Secretaries) और चार उप-शिक्षा सलाहकार (Deputy Educational Advisers) जो विभिन्न विभागों के प्रधान हैं। शिक्षा मन्त्रालय के वाशिंगटन, लन्दन, बोन और नैरोबी में भी कार्यालय हैं।

शिक्षा मन्त्रालय का कार्य अब छः विभागों (Divisions) में बाँट दिया गया है (1) प्रशासन और विश्वविद्यालय शिक्षा (Administration and University Education), (2) हिन्दी और सांस्कृतिक सम्बन्ध (Hindi and Cultural Relations), (3) तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा (Technical and Scientific Education), (4) छात्रवृत्तियाँ और सूचना (Scholarships and Information), (5) बुनियादी और सामाजिक शिक्षा (Basic and Social Education) और (6) सेकेंडरी शिक्षा (Secondary Education)।

१०५. राज्यों में शिक्षा अधिकारी (Educational Authorities in the States)

जनसाधारण में शिक्षा के प्रसार करने का कार्य मुख्यतः राज्यों का है। राज्यों में 'शिक्षा' एक मन्त्री के हाथों में रहती है। शिक्षा विभाग का सचिव विभाग का स्थायी अध्यक्ष होता है और शिक्षा-संचालक (Director of Public Instruction) शिक्षा मन्त्री का विशेषज्ञ सलाहकार (Expert adviser) होता है। शिक्षा संचालक सरकारी संस्थाओं (Government Institutions) के निरीक्षकों और अध्यापकों पर नियन्त्रण रखता है। कुछ राज्यों में शिक्षा संचालक के कार्य शिक्षा अधिकारी और कुछ में शिक्षा-सचिव (Education Secretary) करता है। शिक्षा अधिकारी या शिक्षा संचालक प्राथमिक और सेकेंडरी शिक्षा की संस्थाओं पर अपने विभाग के निरीक्षक-वर्ग (Inspecting Staff) के द्वारा नियन्त्रण रखता है। इस वर्ग में डिवीजनल निरीक्षक (Divisional Inspectors) जिला निरीक्षक (District Inspectors) और सहायक जिला निरीक्षक (A. D. I.) आते हैं। सरकारी स्कूलों और कालिजों के अध्यापक और प्रशासक वर्ग पर भी शिक्षा संचालक का नियन्त्रण रहता है। पंजाब में शिक्षा सचिव तथा शिक्षा-संचालक दोनों हैं इनके अतिरिक्त एक उप-शिक्षा संचालक (Deputy Director of Public Instruction) भी है। यह उप-शिक्षा संचालक राज्य में स्त्री-शिक्षा की देखभाल रखती है। चूँकि राज्य में शिक्षा का कार्य बहुत बढ़ गया है, अतः वहाँ शिक्षा के कार्य की देखभाल के लिए कुछ और पदों का भी स्रजन हुआ है।

१०६. भारत में प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या (The Problem of Primary Education in India)

निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा की आवश्यकता (The Need of Free and Compulsory Education)—स्वतन्त्र भारत की सबसे महत्वपूर्ण

संस्थाओं में से एक यह है कि निरक्षरता का निवारण किया जाये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह समस्या ही हमारी अधोगति का प्रमुख कारण है। जब तक भारत के ८५% लोग लिख-पढ़ नहीं सकते, वह संसार के प्रगतिशील देशों में अपना उचित स्थान नहीं पा सकता। यदि हम भारत में आर्थिक और राजनीतिक उन्नति करना चाहते हैं तो हमें अरिस्टोफिन्स (Aristophinus) के इस सूत्र (Dictum) को याद रखना चाहिए "मैं सबसे पहले शिक्षा को स्थान देता हूँ।" यदि लोकतन्त्र को हमारे देश में दृढ़ता से अपने पैर जमाने हैं, तो जनता को सजग और प्रबद्ध नागरिकता (Active and enlightened citizenship) के लिए आवश्यक न्यूनतम शिक्षा तो दी ही जानी चाहिए।

निःशुल्क और सार्वभौम प्रारम्भिक शिक्षा के मार्ग में बाधाएँ (Factors which hinder Free and Universal Primary Education)—इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक शिक्षा सारे देश में निःशुल्क और अनिवार्य होनी चाहिए।

(क) **आर्थिक अभाव** (Paucity of Funds)—जब भारत में अंग्रेजों का शासन था, काँग्रेस निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा के लिए निरन्तर सशक्त और साराहनीय आन्दोलन करती रही थी। लेकिन हमारे साम्राज्यवादी अधिस्वामियों (Imperialist Masters) ने इस माँग को सदैव ही आर्थिक अभाव के बहाने अस्वीकार कर दिया था। अब तो हमारी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुए दस वर्ष से अधिक हो गये हैं, फिर भी प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या का अभी तक समाधान नहीं हो सका है। दुर्भाग्यवश हम अपने विदेशी शासकों की कई बुरी बातों को अभी तक नहीं त्याग सके हैं। प्रशासन, पुलिस और फौजों पर अब भी बहुत अधिक खर्च किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्र-निर्माण कार्यों (Nation Building Activities) पर जिनमें शायद शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण है, समुचित ध्यान नहीं दिया जा रहा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि धन एक बहुत बड़ी बाधा है, लेकिन सरकार का यह कर्तव्य है कि वह जैसे भी हो इस बाधा पर विजय प्राप्त करे। यदि सम्भव हो, तो इस कार्य के लिए अतिरिक्त कर भी लगाया जा सकता है। यदि भारत को अज्ञान, दरिद्रता और अधोगति के गर्त में बाहर निकलना है, तो जैसे भी हो निरक्षरता को समाप्त करना ही चाहिए।

(ख) **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली** (Defective System of Education)—हमारे देश में प्रारम्भिक शिक्षा की प्रगति के मार्ग में एक अन्य बाधा यह है कि हमारे स्कूलों में प्रचलित शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। पाठ्यक्रम देहाती बच्चों के जीवन की वास्तविकताओं से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इसके अतिरिक्त कम वेतन पाने वाले और आधे भूखे अध्यापक उस उत्साह से कार्य नहीं कर सकते जो निरक्षरता की महान् समस्या को सुलझाने के लिए आवश्यक है। इसका परिणाम यह होता है कि जो बच्चे तीन या चार वर्ष प्रारम्भिक पाठशालाओं (Primary Schools) में व्यतीत करते हैं उनमें से अधिकांश कुछ समय बाद पुनः निरक्षरता के गर्त में जा पड़ते हैं।

अगिक्षा को दूर करने के लिए हमें अधिक धन एक नई प्रकार की शिक्षा प्रणाली और एक नये प्रकार के शिक्षक की आवश्यकता है।

कुछ प्रयोग (Some Experiments)—निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा दिल्ली पंजाब तथा दूसरे बड़े-बड़े राज्यों के कुछ बड़े शहरों में प्रारम्भ कर दी गई है। उत्तर प्रदेश की सरकार दस वर्षों में 88,000 स्कूल स्थापित करने की एक योजना कार्यान्वित करने का प्रयास कर रही है। राजस्थान में तथा अन्यत्र भी ऐसे ही प्रयत्न किये जा रहे हैं। ये सही दिशा में उठाये गये कदम हैं लेकिन यह खेद की बात है कि आर्थिक अभाव इस महत्वपूर्ण सुधार की गति को धीमी कर रहा है।

१०७. हमारी शिक्षा प्रणाली की त्रुटियाँ (Defects in our Educational System)

हमारी शिक्षा प्रणाली कठोर आलोचना का विषय रही है। इसमें इतने अधिक दोष हैं कि बिना आमूल परिवर्तन के काम नहीं चल सकता। शिक्षा के क्षेत्र में सुधारों की आवश्यकता है, इसको सबने माना है, लेकिन शिक्षा-प्रणाली में अभी तक भारी परिवर्तन नहीं आया।

राष्ट्रीय प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं (It is not suited to our national genius)—मैकाले (Macaulay) के शब्दों में “वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का लक्ष्य (1) एक ऐसे वर्ग को जो हमारे तथा शासकों के बीच दुभाषिये का कार्य कर सके और व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग को जो रक्त तथा रंग में तो भारतीय हो, लेकिन रुचि, राय, भाषा और बुद्धि में अंग्रेज हो, तैयार करना, (2) शिक्षित भारतीयों में और उनके द्वारा जनता में अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति के विचारों को भरना, (3) ज्ञान और चिन्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा हिन्दुओं को उनके प्राचीन धर्म से विरत करना और (4) शासन-संचालन में सहायता देने के लिए सस्ते क्लर्कों को प्राप्त करना था। संक्षेप में, शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद (British Imperialism) की जड़ों को मजबूत करना था। इस बात की कोई कोशिश नहीं की गई थी कि शिक्षा को देश की सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जाये। इस शिक्षा ने जनता में प्रबुद्ध नागरिकता का भाव उत्पन्न करने में कोई योग नहीं दिया।

तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा (It neglects Technical and Vocational Education)---चूँकि विदेशी शासकों का मुख्य उद्देश्य सस्ते क्लर्कों की एक फौज तैयार करना था, अतः इस शिक्षा-प्रणाली में साहित्यिक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। चूँकि, यह शिक्षा-प्रणाली तरुणों को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार नहीं करती, अतः ये लोग जीवन-संघर्ष का सामना करने में स्वयं को असमर्थ मानते हैं। साहित्यिक शिक्षा पर अधिक बल देने के परिणामस्वरूप भारत के औद्योगिक विकास में भी बाधा पहुँचती है क्योंकि देश में इंजीनियरों प्राविधिज्ञों और कुशल कर्मचारियों का अभाव बना रहता है। हमें डाक्टरों, नर्सों और शिक्षकों को भी

आवश्यकता है। हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा का जल्दी से जल्दी ज्यादा से ज्यादा विकास हो। हम साहित्यिक शिक्षा के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करते। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए वह भी आवश्यक है। हमारे कहने का आशय यही है कि युवकों के लिए जीविकोपार्जन और देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के लिए तकनीकी शिक्षा बहुत जरूरी है। इस समय हमारे देश में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की संस्थाएँ बहुत कम हैं। उनसे हमारी विशाल आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती।

भारत में शिक्षा गरीबों के लिए बहुत मंहगी है (Education in India is too expensive for the poor)—आधुनिक शिक्षा प्रणाली का शायद सबसे बड़ा दोष यह है कि जनता का अधिकांश भाग उससे अछूता ही रह जाता है। भारतवर्ष निर्धनों का देश है, लेकिन यहाँ शिक्षा इतनी महंगी है कि केवल धनी लोक ही उससे लाभ उठा पाते हैं। सचार्ई यह है कि भारत में 83% से अधिक लोग बिल्कुल निरक्षर ही रह जाते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भिक शिक्षा को सबके लिए निःशुल्क और अनिवार्य कर दिया जाये। ऊँची शिक्षा को भी आज की अपेक्षा कम व्ययसाध्य किया जाना चाहिए।

स्त्री शिक्षा की अवहेलना (It neglects education of women)—वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में एक भीषण त्रुटि यह भी है कि इसमें स्त्री-शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं है। भारत में 6% से भी कम स्त्रियाँ साक्षर हैं। इसके लिए लोगों की कट्टरता को ही एक मात्र दोषी नहीं ठहराया जा सकता। सरकार भी इसके लिए दोषी है। जब तक स्त्रियों को शिक्षित नहीं किया जाता, भारत उन्नति नहीं कर सकता। नए संविधान ने स्त्रियों को भी मतदान का अधिकार दिया है। फलतः, उन्हें भी ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की पूरी सुविधाएँ मिलनी चाहिए ताकि वे अपने पुरुष-भाइयों के साथ मिलकर राष्ट्रीय निर्माण के कार्य में यथासम्भव योगदान दे सकें।

परीक्षाओं पर अत्यधिक बल (It is examination ridden)—हमारी शिक्षा प्रणाली में परीक्षाओं पर अत्यधिक बल दिया जाता है। इससे शिक्षकों और शिक्षार्थियों दोनों पर बहुत बुरा अमर पड़ता है। अध्यापक समझने लगते हैं कि जितने अधिक विद्यार्थियों को पास कराया जा सके, उतना ही अच्छा है। विद्यार्थी यह समझने लगते हैं कि परीक्षाएँ पास करना अच्छी नौकरी प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। उनकी यह भी धारणा हो जाती है कि परीक्षाएँ पास करना ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य है। इसका परिणाम यह होता है कि रटने-रटाने पर बहुत जोर दिया जाता है। छात्र पुस्तकीय कीट (Book Worms) बन जाते हैं। उनमें स्वतन्त्र चिंतन की शक्ति नहीं रहती।

साम्प्रदायिक संस्थाएँ और निर्हस्तेहस्व की नीति (Denominational institutions and laissez faire)—भारत में शिक्षा विषयक व्यवस्था का मूल कारण यह है कि सरकार ने उसके सम्बन्ध में निर्हस्तक्षेप की नीति का पालन किया

है। शिक्षा का प्रबन्ध अधिकतर गैर सरकारी लोगों के हाथ में छोड़ दिया गया है। इन्हें सरकार से या तो बिल्कुल सहायता नहीं मिलती या अगर मिलती है भी तो बहुत कम। हमारे देश की अधिकांश शिक्षा संस्थाएँ विभिन्न धर्मों या सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखती हैं। चूँकि सरकार का उनके आन्तरिक प्रशासन पर बहुत कम नियन्त्रण होता है, अतः ये संस्थायें अपने छात्रों में उदारता और सहिष्णुता की भावना उत्पन्न करने के बजाय संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की भावना पैदा करती हैं। धर्मनिरपेक्ष और लोकतन्त्र राज्य में यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रहनी चाहिए क्योंकि इससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचता है और लोकतन्त्र का मार्ग अवरोध होता है। इसके अतिरिक्त गैर सरकारी संस्थाओं के पास रुपये पैसे की सदैव कमी रहती है। वे मुख्यतः जनता के दान और ट्यूशन की फीस के सहारे चलती हैं। फलतः, इन संस्थाओं के प्रबन्धक छात्रों से ज्यादा से ज्यादा फीस लेते हैं और अध्यापकों को कम से कम वेतन देते हैं। जब तक सरकार शिक्षा का पूरा उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले लेती, उस समय तक देश में शिक्षा की वास्तविक प्रगति नहीं हो सकती। हमारे देश में शिक्षा के ऊपर सरकार बहुत कम खर्च करती है। इंग्लैण्ड में शिक्षा के ऊपर प्रति व्यक्ति 36 ६० वार्षिक व्यय है। भारत में यह व्यय केवल 4 ६० ही पड़ता है (1954-55)।

प्रश्न

1. भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य की दशा का वर्णन कीजिये और लिखें विभाजन के बाद इस दशा में केन्द्रीय सरकार के सुयोजन और समग्र स्वास्थ्य आयोजन का क्या परिणाम हुआ ?
2. स्वास्थ्य केन्द्रीय मंत्रालय क्यों स्थापित किया गया ? इस मंत्रालय के संगठन का वर्णन करें और लिखें यह देश में स्वास्थ्य के लिये क्या काम करता है ?
3. राज्यों में स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी संगठन का वर्णन कीजिये। यह क्या काम करता है, इसका केन्द्रीय मंत्रालय से क्या सम्बन्ध है ? जिले के हैलथ ऑफिसर के कामों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।
4. हमारे देश में स्वास्थ्य की दशा ससार के मुख्य देशों के मुकाबले में इतनी बुरी क्यों है ? इसके विशेष कारण लीखिये, इसमें उन्नति किस तरह हो सकती है और केन्द्रीय मंत्रालय इसमें क्या कर रहा है ?
5. स्वतन्त्र भारत के नागरिकों को शिक्षा देना क्यों आवश्यक है ? सरकार इस दिशा में क्या कार्य कर रही है ?
6. भारत की शिक्षा प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन कीजिए और यह भी बताइये कि इस प्रणाली पर कौन-कौन अधिकारी नियन्त्रण रखते हैं ?
7. भारतीय जनता की अशिक्षा दूर करने के लिए क्या-क्या कार्य किये जाने चाहिए ?

8. भारत में अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ करने की आवश्यकता पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
9. भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में क्या दोष है ? आप किन सुधारों का सुझाव देंगे ?
10. क्या यह कहना सही है कि आज भारत को साहित्यिक शिक्षा की नहीं, प्रत्युत तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता है ?

Questions

1. Write a note on the state of public health in India. What has been the result of concerted action of the Government of India in this direction after partition?
2. Why was the Central Ministry of Health formed? Give a description of its Organisation. What is this Ministry doing for the Country as a whole?
3. Write in detail the Health and Medical Organisation of a state. What is its relationship with the Ministry of Health? Give in detail duties performed by the Health Officer of a district.
4. Why is the state of health of our country so poor as compared with the other civilised countries of the world? Write its chief reasons and describe the methods that are being used to improve it.
5. Why is it necessary to educate the citizens of free India? What steps is the Government taking for the purpose?
6. Describe briefly the educational system of India and give a brief account of the authorities which control the system.
7. What steps should be taken to wipe out illiteracy among the masses of India?
8. Write a short note on the need of introducing compulsory primary education in India.
9. What are the defects in the present educational system of India? What reforms would you suggest?
10. Is it correct to say that what India needs today is not literary education but technical instruction?

पंजाब विश्वविद्यालय

(The Punjab University)

१०८. विश्वविद्यालय (University)

भारत में 1955-56 के अन्त में 37 विश्वविद्यालय 712 कला और विज्ञान के कालिज, 346 व्यावसायिक कालिज (Professional Colleges), 112 विशेष शिक्षा के कालिज तथा 11 सेकेंडरी और इंटरमीडिएट शिक्षा के बोर्ड (Boards of Secondary and Intermediate Education) थे।

विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम (Syllabuses) और पाठ्य पुस्तकें (Text Books) निर्धारित करते हैं, परीक्षाओं का प्रबन्ध करते हैं और साथ ही अपने शिक्षा विभाग भी चलाते हैं। उनकी आय के मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—परीक्षाएँ, ट्यूशन फीस और व्यक्तिगत धर्मस्व (Private Endowments) इसके अतिरिक्त उन्हें सरकार से भी सहायता अनुदान (Grants-in-Aid) मिलती है। कुछ हद तक राज्य सरकार विश्वविद्यालयों पर नियन्त्रण रखती है। राज्यपाल (Governor) पदेन (Ex-Officio) प्रत्येक विश्वविद्यालय का कुलपति (Chancellor) होता है। समान्यतः, वह उप-कुलपति (Vice-chancellor) की और फिर उसके माध्यम से सिडीक्रेट और सीनेट या कोर्ट के कुछ सदस्यों की नियुक्ति करता है। फिर भी, विश्वविद्यालय काफी हद तक स्वायत्तशासी संस्थाएँ हैं और उन्हें आन्तरिक प्रशासन एवं अपनी विद्या सम्बन्धी नीतियों (Academic Policies) के निर्धारण में काफी स्वतन्त्रता रहती है।

१०९. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)

1948 में भारत सरकार द्वारा नियुक्त विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (University Education Commission) की सिफारिशों के अनुसार 1953 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) की स्थापना की गई थी। ससद् ने 1956 में एक अधिनियम पास करके इस आयोग को स्वायत्तशासी पद (Autonomous Status) प्रदान किया। विश्वविद्यालय शिक्षा से सम्बन्ध अधिकांश मामले जिनमें स्तरों का निर्धारण और समन्वय, अध्ययन और गवेषणा की सुविधायें आदि भी शामिल हैं, इसी संस्था के सिपुर्द कर दिये गये हैं। आयोग को विभिन्न विश्वविद्यालयों के लिए अनुदान देने का और विकास योजनाओं को कार्यान्वित करने का अधिकार है। इस आयोग के वर्तमान अध्यक्ष श्री चिन्तामणि देशमुख हैं। उनकी सहायता के लिए आठ और अन्य सदस्य हैं।

११०. पंजाब विश्वविद्यालय का संगठन और संचालन (Organisation and Working of the Punjab University)

विश्वविद्यालय की स्थापना और उसके उद्देश्य—भारत के विभाजन ने अग-भग पंजाब (भारत) को ऐसी स्थिति में छोड़ दिया था कि उसका अपना कोई विश्वविद्यालय नहीं था। फलतः, सरकार ने एक अध्यादेश (Ordinance) के द्वारा पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय (East Punjab University) की स्थापना की। बाद में जब 1947 के अन्त में राज्य विधानमण्डल ने पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय अधिनियम (East Punjab University Act) पास किया, इस अधिनियम को 1957 में सशोधित (Ahmedabad 1957) किया गया तो इस विश्वविद्यालय को एक वैधानिक निगमात्मक संस्था (Statutory Corporate Body) का रूप दे दिया गया। यह विश्वविद्यालय समूचे पंजाब और हिमाचल प्रदेश की उच्च शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसका प्रधान कार्यालय पंजाब की नई राजधानी चण्डीगढ़ में है। उसके ऐसे शिक्षण विभाग जो विभाजन के बाद पूरी तरह से या अशतः बचे हुए हैं, अस्थायी रूप से राज्य की विभिन्न संस्थाओं से सलग्न हैं। पंजाब विश्वविद्यालय अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार (Territorial Jurisdiction) के बाहर दिल्ली में अपना एक कालिज (Camp College) भी चला रहा है।

चार्टर (Charter)—के अनुसार पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए की गई थी (1) कला, साहित्य और विज्ञान में शिक्षा देना, (2) मौलिक गवेषणा की उन्नति करना, (3) निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में विनियम बनाना (क) परीक्षाओं की संचालन, (ख) शिक्षण संस्थाओं को सलग्न या विलग्न करना, (ग) सलग्न संस्थाओं के कार्य का निरीक्षण, (घ) छात्रों के आवास और आचरण का निरीक्षण और (ङ) खेल-कूदों का प्रबन्ध कर छात्रों की शारीरिक उन्नति करना।

पंजाब विश्वविद्यालय लखनऊ या बनारस विश्वविद्यालयों की भाँति आवासीय विश्वविद्यालय (Residential University) नहीं है। वह आगरा विश्वविद्यालय की भाँति केवल परीक्षा लेने वाली संस्था (Examining Body) भी नहीं है। वास्तव में, वह शिक्षण देने वाला और परीक्षा लेने वाला सघात्मक ढंग (Federal Type) का विश्वविद्यालय है। इसके प्रादेशिक अधिकारक्षेत्र (Territorial Jurisdiction) में पंजाब और हिमालय प्रदेश के क्षेत्र आते हैं। इस सारे विस्तृत क्षेत्र की शिक्षा पर जिसमें मैट्रिकुलेशन और इससे ऊँची भी शिक्षा शामिल है, इस विश्वविद्यालय का अधिकार है। इस विश्वविद्यालय ने बहुत से हाई स्कूलों को मान्यता दी है। बहुत से डिग्री कालिज इस विश्वविद्यालय से संलग्न हैं। इसके अतिरिक्त इस विश्वविद्यालय के कुछ शिक्षण विभाग (Teaching Faculties) और संस्थाएँ (Institutions) भी हैं।

१११. विश्वविद्यालय का संगठन (क) कुलपति और उप-कुलपति (Its Organisation (a) Chancellor and Vice-Chancellor)

पंजाब का राज्यपाल पदेन (Ex-Officio) विश्वविद्यालय का कुलपति (Chancellor) है। अपनी अन्य शक्तियों के अतिरिक्त, वह तीन वर्ष के लिए उप-कुलपति (Vice-Chancellor) की नियुक्ति करता है। उप-कुलपति विश्वविद्यालय का सबसे ऊँचा अधिशासनिक प्राधिकारी है। विश्वविद्यालय के कार्य-संचालन में उसे कई संस्थाओं की सहायता मिलती है, वे संस्थाएँ हैं—सीनेट (Senate), सिंडीकेट (Syndicate), विभाग (Faculties), बोर्ड ऑफ स्टडीज (Board of Studies), स्कूल बोर्ड (School Board) एकेडेमिक कौंसिल (Academic Council) विश्वविद्यालय क्रीडा समिति (University Sports Committee), और रजिस्ट्रार और अन्य अधिकारी (Registrar and other paid officers of the Punjab University)।

नीचे हम इन संस्थाओं के गठन (Constitution) और कार्यकरण (Working) का संक्षिप्त वर्णन करते हैं—

(क) सीनेट (Senate)—विश्वविद्यालय के संगठन में सीनेट का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है और उसे विश्वविद्यालय का विधानमण्डल समझा जा सकता है। वह विश्वविद्यालय की प्रमुख नियम-निर्मात्री सत्ता (Chief rule making authority) है। विश्वविद्यालय के सभी मामलों की देखभाल का कार्य उसके जिम्मे रहता है। सीनेट के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं। वह कालिजों की संलग्नता (Affiliation) या असंलग्नता (Disaffiliation) और हाई स्कूलों की मान्यता (Recognition) रजिस्ट्रार, प्रोफेसर, रीडर और लैक्चरर जैसे विश्वविद्यालय के ऊँचे अधिकारियों की नियुक्ति विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में प्रवेश के शुल्क के निर्धारण, और परीक्षाओं की नियुक्ति के सम्बन्ध में नियमों के निर्माण आदि से सम्बन्ध रखने वाले विषयों के सम्बन्ध में सिंडीकेट (Syndicate) की सिफारिशों पर आदेश देता है। वह विश्वविद्यालय के वार्षिक बजट और लेखाओं पर विचार करता है और उनका अनुमोदन करता है। वह विश्वविद्यालय की अन्य संस्थाओं के लिए अपने सदस्यों में से कुछ प्रतिनिधि निर्वाचित करता है और उन संस्थाओं की गणपूर्ति (Quorum) और प्रक्रिया (Procedure) निर्धारित करता है।

सीनेट में (क) कुलपति (Chancellor), उप-कुलपति (Vice-Chancellor) और (ग) विश्वविद्यालय के फेलोस (Fellows) होते हैं। फेलोज की अधिकतम संख्या 90 है। इनमें पंजाब उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश (Chief Justice of the Punjab High Court), मुख्य मन्त्री (Chief Minister), शिक्षा मन्त्री (Education Minister), शिक्षा संचालक (Director of Public Instruction) और शिक्षा उप-संचालक (Deputy Directoress of Public Instruction) पदेन (Ex-Officio) फेलो होते हैं। शेष में से 30 कुलपति द्वारा नामनिर्देशित (Nominated) होते हैं और बाकी निम्नलिखित विधि से निर्वाचित होते हैं—

(क) 15 फैलो पंजीमित स्नातकों (Registered Graduates) द्वारा निर्वाचित होते हैं;

(ख) दो विश्वविद्यालय के शिक्षण विभागों में कार्य करने वाले प्रोफेसर्स द्वारा अपने में से निर्वाचित होते हैं लेकिन इसमें शर्त यह है कि एक सदस्य कला-विभाग से और एक विज्ञान-विभाग से चुना जाये;

(ग) दो विश्वविद्यालय के शिक्षण-विभागों में कार्य करने वाले रीडरों और लेक्चररों द्वारा अपने में से निर्वाचित होते हैं लेकिन इसमें शर्त यह है कि एक सदस्य कला-विभाग से और एक विज्ञान-विभाग से चुना जाये;

(घ) तीन सदस्य तकनीकी और व्यावसायिक कालिजों (Technical and Professional Colleges) के प्रिंसिपलों द्वारा अपने में से निर्वाचित होते हैं और तीन सदस्य इन कालिजों के स्टाफ द्वारा अपने में से निर्वाचित होते हैं;

(ङ) आठ सदस्य सम्बद्ध कला सम्बन्धी कालिजों (Technical Colleges) के प्रधानों द्वारा अपने में से निर्वाचित किये जाते हैं;

(च) आठ सदस्य सम्बद्ध कला-सम्बन्धी कालिजों के प्रोफेसर्स, सीनियर लेक्चररों और लेक्चररों द्वारा अपने में से निर्वाचित होते हैं;

(छ) चार सदस्य मान्यता प्राप्त हाई स्कूलों के प्रधानों द्वारा अपने में से निर्वाचित होते हैं;

(ज) छः सदस्य विश्वविद्यालय की विभिन्न फैकल्टियों द्वारा निर्वाचित होते हैं;

(झ) तीन सदस्य पंजाब विधान सभा और दो सदस्य पंजाब विधमन् परिषद् द्वारा अपने सदस्यों में से चुने जाते हैं, लेकिन इसमें शर्त यह रहती है कि निर्वाचित सदस्य विश्वविद्यालय की कोई डिग्री रखता हो।

(ख) सिंडीकेट (Syndicate)—सिंडीकेट विश्वविद्यालय की प्रमुख अधि-शासनिक सख्या (Executive body) है। वह मोटे तौर से मन्त्रि-परिषद् (Council of Ministers) से साम्य रखती है। उसमें उप-कुलपति जो उसका पदेन सभापति होता है, शिक्षा संचालक (Director of Public Instruction, Punjab), और 15 साधारण या पदेन सदस्य होते हैं। ये सदस्य विश्वविद्यालय की विभिन्न फैकल्टियों द्वारा निम्नलिखित अनुपात में चुने जाते हैं—3 कला-विभाग, 3 विज्ञान-विभाग, 2 प्राच्य ज्ञान-विभाग, 2 विधि विभाग, 2 चिकित्सा विभाग, और 3 कृषि, पशु शिक्षा और इंजीनियरी विभागों द्वारा सम्मिलित रूप से। विश्वविद्यालय के विनियमों (Regulations) के अनुसार 15 निर्वाचित सदस्यों में से आठ सदस्य विश्वविद्यालय द्वारा संचालित कालिजों या शिक्षण विभागों के प्रधान या अध्यापक होने चाहिएँ। सिंडीकेट के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष है और वे दुबारा निर्वाचन में खड़े हो सकते हैं।

चूँकि सिंडीकेट विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी (Executive) है, अतः उसका मुख्य कार्य सीनेट के निर्णयों को कार्यान्वित करना है। सीनेट को जिन नये

प्रस्तावों पर विचार या निर्णय करना पड़ता है, वे सबसे पहले सिडीकेट के सामने आते हैं। वह विश्वविद्यालय के 'ख' श्रेणी (B Class) के अधिकारियों को नियुक्त करता है। उनके वेतन निश्चित करता है और उनकी सेवा की शर्तें (Conditions of Service) निर्धारित करता है। सिडीकेट परीक्षकों, परीक्षा-केन्द्रों के अधीक्षकों (Superintendents) और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं से सम्बन्ध रखने वाले अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति पर मजूरी देता है और उन पर नियन्त्रण रखता है। वह डिग्री प्राप्ति की सलग्नता और असलग्नता, हाई स्कूलों की मान्यता और सम्मान सूचना उपाधियों (Honorary Degrees) के देने के सम्बन्ध में सीनेट से सिफारिशें करता है। सिडीकेट की बैठकें उप-कुलपति के निर्देशन में रजिस्ट्रार द्वारा आयोजित की जाती हैं। उनकी अध्यक्षता उप-कुलपति या उसकी अनुपस्थिति में उपस्थित सिडीको द्वारा निर्वाचित सिडीकेट का कोई एक सदस्य करता है। गणरूति (Quorum) के लिए पाँच सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है।

(ग) विभाग (Faculties)—पंजाब विश्वविद्यालय में 10 विभाग हैं—प्राच्य विद्या-विभाग कला-विभाग विज्ञान-विभाग, चिकित्सा-विभाग कृषि-विभाग वाणिज्य-विभाग, शिक्षा विभाग, इंजीनियरी-विभाग और पशु-शिक्षा-विभाग। प्रत्येक विभाग में कुछ फैलो होते हैं जिन्हें सिडीकेट की सिफारिश पर सीनेट नियुक्त करता है। फैलो की नियुक्ति में यह शर्त रहती है कि कोई भी फैला दो बड़े विभागों (कला, विज्ञान, प्राच्य, विधि और चिकित्सा) में से अधिक के लिए निर्धारित नहीं होता चाहिए। फैलो की नियुक्ति में उस विभाग के विषयों के योग्य विद्वानों की सिफारिशों पर भी उचित ध्यान दिया जाता है। प्रत्येक विभाग एक डीन (Dean) का निर्वाचन करता है। उप-कुलपति सभी विभागों का पदेन सदस्य होता है। सभी विभागों की बैठकों की अध्यक्षता उप-कुलपति या उसकी अनुपस्थिति में डीन (Dean) करता है। विभाग मुख्यतः विचार करने वाली और प्रतिवेदन देने वाली संस्थाएँ हैं। अतः वे विश्वविद्यालय की परीक्षाओं (मैट्रिकुलेशन को छोड़कर) वे पाठ्यक्रमों और एकेडेमिक कौन्सिल (Academic Council) द्वारा निर्दिष्ट प्रश्नों पर प्रतिवेदन देती हैं।

(घ) अध्यापन मण्डल (Board of Studies)—पंजाब विश्वविद्यालय में 26 अध्यापन मण्डल (Board of Studies) हैं। विश्वविद्यालय में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय के लिए एक-एक अध्यापन-मण्डल (Board of Studies) है। प्रत्येक अध्यापन-मण्डल में एक तो सम्बद्ध विभाग का अध्यक्ष होता है तथा छः अन्य सदस्य होते हैं जो विहित विधि से निर्वाचित किये जाते हैं। सीनेट सिडीकेट की सिफारिश पर अध्यापन मण्डल में एक सदस्य और शामिल कर सकता है। ये मण्डल अपने-अपने विषयों के पाठ्यक्रम निर्धारित करते हैं। वे परीक्षकों की नियुक्ति के बारे में सिडीकेट से सिफारिश करते हैं, यदि आवश्यकता हुई तो परीक्षकों के मार्ग-दर्शन के लिए आदर्श प्रश्न पत्र (Model Question Papers) बनाते हैं और परीक्षकों के साथ मिलकर कुछ विशिष्ट प्रश्न पत्रों के बारे में की गई शिकायतों पर विचार करते हैं। इस सम्बन्ध में मण्डल के पास राय के लिए जो भी मामले आते हैं, वे उन पर अपनी राय भी देते हैं।

(ड) स्कूल बोर्ड (School Board)—पंजाब विश्वविद्यालय का स्कूल बोर्ड दसवी कक्षा तथा हायर सैकण्डरी (Higher Secondary) की परीक्षा के लिए व्यवस्था करता है। इसमें पंजाब शिक्षा सचालक, (जो उसका पदेन सभापति होता है) चार कला विभाग के निर्वाचित प्रतिनिधि दो विज्ञान विभाग के निर्वाचित प्रतिनिधि और दो प्राच्य विद्या विभाग के निर्वाचित प्रतिनिधि, तीन मान्यता प्राप्त हाई स्कूलों के प्रधान अध्यापकों के अपने में से निर्वाचन प्रतिनिधि और तीन शिक्षा संचालक द्वारा विश्वविद्यालय के सदस्यों में से नाम निर्देशित सदस्य होते हैं। स्कूल बोर्ड दसवी कक्षा की परीक्षा से सम्बन्ध रखने वाले सभी मामलों का प्रबन्ध करता है और इस सम्बन्ध में सिडीकेट को प्रतिवेदन देता है। वह पाठ्यक्रम निर्धारित करता है, परीक्षकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में नामों की सिफारिश करता है और मेट्रिकुलेशन तथा हायर सैकण्डरी (Higher Secondary) परीक्षाओं के सम्बन्ध में अध्यापन-मण्डलों (Board of Studies) द्वारा की गई सिफारिशों पर विचार करता है और प्रतिवेदन देता है।

(च) एकाडेमिक कौन्सिल (Academic Council)—पंजाब विश्वविद्यालय की एकाडेमिक कौन्सिल में विश्वविद्यालय शिक्षा का डीन (Dean of University Instruction) जो उसका पदेन सभापति होता है, विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, सिडीकेट द्वारा नाम निर्देशित दो रीडर, कला तथा विज्ञान के कुछ कालिजों के प्रिंसिपल सीनेट द्वारा निर्वाचित छ फेलो, और सलग्न कालिजों में काम करने वाले अध्यापकों द्वारा निर्वाचित छ अध्यापक होते हैं। जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, एकाडेमिक कौन्सिल केवल विश्वविद्यालय की शिक्षा से ही सम्बन्ध रखती है। वह विश्वविद्यालय की शिक्षा के विकास और गवेषणा की उन्नति के लिए सुझाव देती है। वह पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में विभिन्न अध्यापन-मण्डलों (Boards of Studies) की सिफारिशों पर विचार करती है और उनके सम्बन्ध में सिडीकेट को प्रतिवेदन देती है। वह डाक्टरेट की डिग्री के लिए प्रस्तावित शोध विषयों पर विचार करती है और उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करती है। एकाडेमिक कौन्सिल विश्वविद्यालय की कक्षाओं में प्रवेश, परीक्षाओं की प्रणाली और परीक्षकों की नियुक्ति के सम्बन्ध में सामान्य नियम निर्धारित करती है। लेकिन, इन विषयों पर अन्तिम निर्णय सिडीकेट के हाथ में ही रहता है। कौन्सिल विश्वविद्यालय में नये शिक्षण पदों के निर्माण के लिए सिडीकेट से सिफारिश करती है। ऐसे पदों को बनाने और समाप्त करने तथा विश्वविद्यालय के शिक्षण के ऊपर नये व्यय से सम्बन्ध रखने वाले समस्त प्रस्तावों के सम्बन्ध में कौन्सिल ही सिडीकेट को राय देती है।

(छ) विश्वविद्यालय क्रीड़ा समिति (The University Sports Committee)—विश्वविद्यालय क्रीड़ा समिति छात्रों के सर्वांगीण शारीरिक विकास के लिए खेल-कूद की व्यवस्था करती है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए समिति खेल-कूदों के टूर्नामेंटों के प्रबन्ध और संचालन के लिए नियम बनाती है।

(ज) रजिस्ट्रार और अन्य अधिकारी (Registrar and other paid officers of the University)—विश्वविद्यालय का दैनिक कार्य परीक्षाओं के परचे छपवाना, परीक्षा लेने का इन्तजाम करना और उनका फल निकालना है—विश्वविद्यालय में वर्ष में दो लाख के लगभग स्त्री-पुरुष परीक्षा देते हैं इनका प्रबन्ध करना कोई सहज बात नहीं—यह सब काम रजिस्ट्रार, तीन उप-रजिस्ट्रार, एक चीफ एकाउन्ट्स ऑफिसर (Chief Accounts Officer), तीन सहकारी रजिस्ट्रार और कई सुपरिण्टेण्डेंटों तथा सैकड़ों क्लर्कों की मदद से करता है। रजिस्ट्रार की नियुक्ति सीनेट द्वारा चार साल की होती है और वह वाइस-चान्सलर के अधीक्षण (Supervision and Control) में काम करता है। शेष सब कर्मचारी 58 वर्ष की आयु में रिटायर होते हैं। यह अवधि दो वर्ष और भी बढ़ा दी जा सकती है।

११२. पंजाब विश्वविद्यालय का बजट (Budget of the Punjab University)

पंजाब विश्वविद्यालय इस साल 171 लाख के लगभग रुपया खर्च करेगी। इस खर्च का व्यौरा इस तरह होगा—कर्मचारियों पर खर्च 17.6 लाख, परीक्षाओं के ऊपर 43 लाख, विश्वविद्यालय के विविध शिक्षा विभागों के ऊपर 50 लाख, अन्य विविध खर्च 4 लाख। इस विश्वविद्यालय के शिक्षा-विभाग पंजाब के कई शहरों में बिखरे हुए पड़े हैं। यह सब अब चंदीगढ़ में लाये जा रहे हैं। अब तक 60 लाख से ऊपर की इमारतें बन चुकी हैं। इस वर्ष बजट में 57 लाख की व्यवस्था की है। विश्वविद्यालय का बजट 39 लाख रुपये घाटे में होगा।

प्रश्न

1. पंजाब विश्वविद्यालय के संगठन और कार्यकरण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। उसका वार्षिक बजट क्या है ?
2. निम्नलिखित की स्थिति, शक्तियों और कार्यों का वर्णन कीजिए।
(क) कुलपति, (ख) उप-कुलपति, (ग) रजिस्ट्रार।

Questions

1. Describe briefly the organisation and working of the Punjab University
2. Describe the status, powers and functions of the (a) Chancellor, (b) The Vice-chancellor, (c) The Registrar of the Punjab University

अध्याय १५

पुलिस और जेल

(Police and Jails)

११३. पुलिस की आवश्यकता और महत्त्व (The Need and Importance of the Police)

सार्वजनिक शान्ति की रक्षक और नागरिकों के जीवन स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की प्रहरी (A custodian of public peace and a shield of citizen's life, liberty and property)—प्रत्येक राज्य का यह प्राथमिक लक्ष्य है कि वह उन परिस्थितियों का निर्माण करे जिनमें कि उसके नागरिक सभ्य जीवन के लाभो का उपभोग कर सकें और अपनी शारीरिक, मानसिक और नैतिक प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास कर सकें। स्पष्ट है कि सभ्य जीवन तभी संभव हो सकता है जब कि लोगो के मन में अपने जीवन और सम्पत्ति के सम्बन्ध में सुरक्षा का भाव हो और वे अपने वैध कार्य दूसरो के अनुचित हस्तक्षेप के बिना ही कर सकें। दूसरे शब्दों में, कानून और व्यवस्था बनाये रखना सभ्य जीवन की पहली शर्त है। राज्य में कानून और व्यवस्था केवल दो ही तरह से भंग हो सकती है या तो पडौस के किसी राज्य के आक्रमण द्वारा या उसकी अपनी ही सीमाओं में समाज-विरोधी तत्त्वों की कार्यवाहियों द्वारा। इन खतरों का सामना करने के लिए राज्य अपनी क्षमतानुसार सुसज्जित सशस्त्र बल और कुशल पुलिस बल रखता है। राज्य के सशस्त्र बल विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करते हैं और पुलिस बल राजद्रोहात्मक कार्यवाहियों को रोक कर और उन्हें कुचल कर तथा कानून भंग करने वाले लोगों को दण्ड देकर देश के अन्दर शान्ति और व्यवस्था स्थापित करता है। राज्य अपने नागरिकों के समुचित जीवन-निर्वाह के लिए कानून बनाता है। लेकिन, जैसा कि हम अपने व्यावहारिक अनुभव से जानते हैं, सभी नागरिक तो कानूनों का पालन नहीं करते। कई कारणों से, कानूनों का अक्सर उल्लंघन होता रहता है। बहुत से लोग कानूनों का पालन केवल इसीलिए करते हैं क्योंकि उन्हें दण्ड का भय रहता है। पुलिस का यह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह अपराधों को रोके और यदि अपराध हो जाए, तो अपराधी को हवालात में ले जाये और उसे न्यायालय के सम्मुख उपस्थित करे जो उसके अपराध का निर्धारण कर सके और उसे दण्ड दे सके। यदि किसी राज्य के पास सशस्त्र बल न हों, तो इस बात का भय बना रहता है कि कहीं वह किसी विदेशी सत्ता के अधीन न हो। इसके साथ ही, यदि किसी राज्य के पास पुलिस बल न हो, तो वहाँ सुव्यवस्थित जीवन असंभव हो जायेगा और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का बोलबाला रहेगा। इस प्रकार सशस्त्र बलों की भाँति ही राज्य

की पुलिस भी सार्वजनिक शान्ति की रक्षक और नागरिकों के जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की प्रहरी के रूप में कार्य करती है। दुर्भाग्यवश, हम जानते हैं कि कुछ स्थितियों में देश की सरकार पुलिस को दमन के साधन के रूप में भी प्रयुक्त कर सकती है। पराधीन देशों में यही होता है। फासिस्ट सर्वाधिकारवादी देशों में भी यही होता है। वहाँ पुलिस जनता की रक्षक होने के स्थान पर भक्षक बन जाती है। यहाँ हम सर्वाधिकारवादी राज्यों के बारे में नहीं, प्रत्युत लोकतन्त्रात्मक राज्यों के बारे में सोच रहे हैं जिनकी सरकारें जनता पर शासन नहीं करती, प्रत्युत उसकी सेवा करती हैं।

यहाँ हम इस एक बात को और दृष्टि में रख सकते हैं। कुछ राजनीतिक विचार—महात्मा गांधी भी जिनमें एक थे—राज्य द्वारा बल के प्रयोग को एक बुराई, कम-से-कम, एक आवश्यक बुराई समझते हैं। फौज की तरह पुलिस भी राज्य की बलप्रवर्ती शासन का ही प्रतिनिधित्व करती है। गांधी जी के आदर्श समाज रामराज्य में पुलिस और फौज की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। लेकिन रामराज्य तो केवल पूर्ण व्यक्तियों की ही समाज व्यवस्था है जब कि हमारे चारों ओर तो अपूर्ण स्त्री-पुरुषों का ही निवास है। ऐसी स्थिति में, यह प्रश्न विवादास्पद ही बना रहता है कि क्या मानवता कभी ऐसी स्थिति में भी पहुँच सकेगी जब कि उसे पुलिस और प्रतिरक्षा बलों की बिल्कुल आवश्यकता न रहे और वह उन्हें समाप्त कर दे।

११४. पंजाब में पुलिस का संगठन (Organisation of the Police in the Punjab)

गृहकार्य मन्त्री (The Minister for Home Affairs)—चूँकि संविधान के अन्तर्गत कानून और व्यवस्था राज्य के विषय है, अतः पंजाब में पुलिस का सघटन भारत सरकार के नियन्त्रण में नहीं, प्रत्युत राज्य सरकार के नियन्त्रण में है। इस सम्बन्ध में मध्य सरकार का नियन्त्रण तो केवल इमी सीमा तक रहता है कि केन्द्रीय गृहकार्य मन्त्री जो सम्पूर्ण देश में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होता है, सामान्य निरीक्षण रखता है। बम्बई के विपरीत जहाँ पुलिस जिले के आधार पर संगठित है पंजाब में पुलिस का संगठन सम्पूर्ण राज्य के आधार पर किया गया है। राज्य का पुलिस विभाग अन्तर्गत कानून और व्यवस्था मन्त्री (जिसे गृहमन्त्री भी कहते हैं) की अधीनता में है। यह मन्त्री राज्य की मन्त्रि-परिषद् का सदस्य और इस नाते राज्य के विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है।

पुलिस का महानिरीक्षक (Inspector General of Police)—लेकिन, यह याद रहना चाहिए कि पुलिस मन्त्री नीति की मोटी रूपरेखा ही निश्चित कर सकता है और सामान्य निरीक्षण और नियन्त्रण ही रख सकता है। चूँकि वह अपने राजनीतिक कार्यों में ही बहुत व्यस्त रहता है अतः उसके पास इतना समय नहीं होता कि वह पुलिस प्रशासन के विवरण की ओर ध्यान दे सके। फलतः, पुलिस विभाग का वास्तविक प्रशासन पुलिस के महानिरीक्षक के हाथों में रहता है जो मन्त्री के

निर्देशानुसार कार्य करता है। राज्य के पुलिस दल की विभिन्न शाखाओं—अर्थात् साधारण पुलिस, गुप्तचर विभाग और यातायात पुलिस का वही प्रधान होता है।

उप महानिरीक्षक (Deputy Inspector General)—प्रशासन के विचार से सम्पूर्ण राज्य को कुछ क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र पुलिस के एक उप-महानिरीक्षक की निगरानी में कार्य करता है। सम्पूर्ण राज्य का गुप्तचर विभाग तात्कालिक रूप से एक उप-महानिरीक्षक की अधीनता में होता है। राज्य के अन्दर कार्य करने वाली रेलवे पुलिस एक सुपरिण्डेंट की अधीनता में होती है।

पुलिस का सुपरिण्डेंट (Superintendent of Police)—प्रत्येक पुलिस क्षेत्र में कई जिले होते हैं और जिले का पुलिस बल सुपरिण्डेंट की अधीनता में रहता है। महत्वपूर्ण जिलों में वरिष्ठ सुपरिण्डेंट की भी नियुक्ति की जाती है। यह पुलिस सुपरिण्डेंट के उत्तरदायित्व होते हैं।

सुपरिण्डेंट और डिप्टी सुपरिण्डेंट तथा सब-इन्स्पेक्टर—प्रशासनिक दृष्टि से वह उप-महानिरीक्षक तथा महानिरीक्षक के नियन्त्रण में रहता है। लेकिन, कानून और व्यवस्था सम्बन्धी मामलों में उसे डिप्टी कमिश्नर अथवा डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के आदेशों के अनुसार कार्य करना है। सुपरिण्डेंट को असिस्टेंट सुपरिण्डेंट और बहुत से डिप्टी सुपरिण्डेंट में सहायता मिलती है। ये अधिकारी जिले के मुख्य कार्यालयों और जिले के उपविभागों में रहते हैं। प्रत्येक उपविभाग कई 'सर्किलों' में बंटा रहता है और सर्किल का प्रधान एक पुलिस इन्स्पेक्टर होता है। सर्किल में कई थाने होते हैं। थाना पुलिस संगठन की शृङ्खला में एक महत्वपूर्ण कड़ी होती है। उसका प्रधान अधिकारी एक सब-इन्स्पेक्टर अथवा थानेदार होता है। वह अपने क्षेत्र में अपराध की रोक-थाम और गोज के लिए उत्तरदायी होता है। वह काफी शक्तियों का प्रयोग करता है और जनता में उसका आदर भी बहुत होता है। प्रत्येक थाने के अन्तर्गत कई चौकियाँ होती हैं। प्रत्येक चौकी एक प्रधान कास्टेबिल की अधीनता में रहती है।

स्त्री-पुलिस (Women Police)—पिछले कुछ वर्षों से स्त्रियाँ भी कास्टेबिल प्रधान कास्टेबिल, सब-इन्स्पेक्टर और इन्स्पेक्टर भरती की गई हैं। आजकल हड़तालों, उपद्रवों और तस्कर व्यापार में स्त्रियाँ भाग लेने लगी हैं। उनकी पकड़ना हवालात में ले जाना और उनकी तलाशी लेना स्त्री-पुलिस का ही कार्य है। वैश्यावृत्ति जैसे अनैतिक कार्यों के दबाने और बे-टिकट स्त्री यात्रियों के सम्बन्ध में उनकी सेवाओं की भी आवश्यकता होती है। संक्षेप में, स्त्री-पुलिस का कार्य उन स्त्रियों पर निगरानी रखना है जो कानून की पकड़ में आ जाती हैं। पुलिस के ऊपर अक्सर यह आरोप लगाया जाता था कि वह स्त्री-अपराधियों के साथ बुरा व्यवहार करती हैं। इस समस्या का यही समाधान निकाला गया है।

११५. पुलिस और जनता (Police and the People)

पुलिस क्या करती है ?—हम यह देख चुके हैं कि पुलिस का मुख्य कर्तव्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना तथा जनता की जीवन स्वतन्त्रता और अन्य

अधिकारों की रक्षा करना है। अपराधों की रोक-थाम और खोज, अव्यवस्था, विप्लवों और उपद्रवों का दमन उसके प्रमुख कार्य हैं। पुलिस अपने कार्यों को कितनी सावधानी, शौघता और ईमानदारी से करती है, यह उसकी सुचारुता की कसौटी है।

जनता और पुलिस के बीच खाई—यह स्पष्ट है कि पुलिस जनता की महत्वपूर्ण सेवा करती है। तथापि, पुलिस की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वह जनता का विश्वास प्राप्त करे और जनता अपराधियों की रोक-थाम तथा खोज के सम्बन्ध में पुलिस के साथ सहयोग करे। अक्सर यह देखा जाता है कि बहुत से लोगों को अपराधों और अपराधियों का ज्ञान होता है लेकिन वे उन्हें पुलिस से बचाने का प्रयत्न करते हैं। इससे प्रकट होता है कि हमारी जनता में नागरिक भावना का अभाव है। यह प्रवृत्ति ब्रिटिश शासन की देन है। विदेशी शासन के समय पुलिस और जनता के बीच चौड़ी खाई थी। उन दिनों पुलिस साम्राज्यवादी अधिकारियों के हाथों में एक ऐसा साधन था जिसके द्वारा वे भारत के ऊपर अपना नियन्त्रण रखते थे। पुलिस देश की राजनीतिक गति-विधियों का दमन करती थी और कभी-कभी बड़ी निर्दयता से आचरण करती थी। फलतः, लोगों के मन में उसके प्रति बहुत कम आदर था।

स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारी पुलिस के स्वरूप और उसके तथा जनता के सम्बन्धों के आधार में अमूल परिवर्तन हो गया है। यह परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ है, लेकिन निश्चित रूप से हुआ है। अब भूत काल की भांति पुलिस किसी विदेशी सत्ता के हाथों में दमन का साधन नहीं है। वर्तमान लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था में अब पुलिस धीरे-धीरे एक ऐसे साधन के रूप में बदल रही है जो लोगों को सुरक्षा प्रदान करे जिससे कि वे अपने अधिकारों का अधिकतम उपयोग कर सकें और अपना अधिकतम आत्म-विकास कर सकें। हमें पूरी आशा है कि कुछ समय बाद जनता और पुलिस के बीच की खाई बिलकुल पट जायेगी और उनके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जायेंगे। यदि पुलिस जनता के प्रति अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक पालन करना चाहती है, तो यह अतीव आवश्यक है कि उसके और जनता के बीच हार्दिक सहयोग रहे। जनता को चाहिए कि वह न केवल अपराध रोकने में ही प्रत्युत अपराधियों की छान-बीन में भी पुलिस की सहायता करे। इसी प्रकार यदि कहीं शान्ति-भंग की सम्भावना हो, तो जनता को चाहिए कि वह पुलिस को इसकी तुरन्त सूचना दे। इससे पुलिस समय रहते ही कार्यवाही कर सकती है और बड़े पैमाने पर जीवन और सम्पत्ति की सम्भाव्य हानि को रोक सकती है। यदि पुलिस अधिकारी जनता का हार्दिक सहयोग प्राप्त करना चाहते हैं, तो उनके लिए भी यह आवश्यक है कि वे जनता के साथ सज्जनता का व्यवहार करें तथा उनके ऊपर बेईमानी या पक्षपात का कोई सन्देह न हो।

इंग्लैण्ड के पुलिस संगठन से तुलना (Contrast to Police Organisation in England)—भारत का पुलिस संगठन इंग्लैण्ड के पुलिस संगठन से बहुत भिन्न है। इस देश में म्युनिस्सिपल बोर्ड्स कार्जेंट्रीज और बौरोज अपने-अपने क्षेत्रों में

पुलिस बल पर नियन्त्रण रखते हैं। पुलिस अधिकारी स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों की अधीनता में रहकर कार्य करते हैं और उनके प्रति उत्तरदायी होते हैं। इससे पुलिस जनता के बृहत्तर हितों में कार्य कर सकती है। इंग्लैण्ड में इस नियम का एकमात्र अपवाद लन्दन का पुलिस बल है जो सीधे गृह-मन्त्रालय के नियन्त्रण में रहता है। भारत में पुलिस के अन्दर इतना भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और जन-उसीडन पाया जाता है, उसका कारण अत्यधिक केन्द्रीकरण है। यदि यही बल स्थानीय संस्थाओं के अध्यक्षों के नियन्त्रण में रख दिया जाये, तो बहुत कुछ भ्रष्टाचार समाप्त हो जायेगा। आशा की जाती है कि कुछ राज्य सरकारें इस बात की सिफारिश करेंगी कि इनके यहाँ पुलिस बल का संगठन इंग्लैण्ड की भाँति रहे।

११६. जेलें (Jails)

यदि किसी राज्य में पुलिस और न्यायालय है, तो वहाँ जेलों का होना भी आवश्यक है। हम देख चुके हैं कि पुलिस का कार्य कानून और व्यवस्था बनाए रखना तथा कानून भग करने वालों को गिरफ्तार करना है। तथापि यह याद रखना आवश्यक है कि सारा कार्य स्वयं पुलिस ही नहीं कर सकती। यदि कानूनों को तोड़ा जाता है, तो पुलिस कानून तोड़ने वालों को गिरफ्तार कर सकती है, लेकिन वह उन्हें दण्ड नहीं दे सकती। दण्ड देने का कार्य न्यायालयों के हाथ में रहता है। शक्तियों का यह विभाजन शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का सीधा परिणाम है। विश्वास किया जाता है कि न्याय की समुचित व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि जो अधिकारी किसी व्यक्ति पर कानून भग करने का आरोप लगाये, उसे उसके अपराध को निश्चित करने और उसे दण्ड देने की शक्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि वह कुछ पक्षपात भी कर सकता है। इसलिए न्यायाधीशों और मजिस्ट्रेटों की आवश्यकता होती है जिन पर कोई अनुचित प्रभाव नहीं पड़ सकता और जो इन मामलों पर स्वतन्त्रता एवं निष्पक्षता से विचार कर सकते हैं।

जब पुलिस किसी व्यक्ति के ऊपर कानून भग करने का आरोप लगाती है, तो उस व्यक्ति को न्यायालय के सामने लाया जाता है। न्यायालय साक्ष्य परीक्षण करने के उपरान्त अभियुक्त का अपराध निश्चित करता है और अपराध के स्वरूप और गम्भीरता को देखते हुए अभियुक्त को दण्ड देता है। दण्ड कई प्रकार का हो सकता है—उदाहरण के लिए प्राणदण्ड, जुर्माना और कारावास। प्राणदण्ड केवल हत्या जैसे जघन्य अपराधों में ही दिया जाता है। दण्ड का सामान्य रूप कारावास है, कभी कभी इसके साथ जुर्माना भी कर दिया जाता है। कारावास का अर्थ यह है कि कुछ निश्चित अवधि के लिए अपराधी को प्रकृत सामाजिक परिस्थितियों से अलग हटाकर जेल में रख दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, उसे कानून का पालन करने वाले अन्य नागरिकों से अलग हटा दिया जाता है और जेल में रख दिया जाता है। अपराधी को समाज से अलग हटाकर जेल में रखना इसलिए आवश्यक समझा जाता है जिससे कि वह कुछ समय तक अलग रहकर अपनी करनी पर पश्चाताप करे और अपने

पुराने रास्ते को छोड़कर जीवन में एक नए अध्याय को प्रारम्भ करे। पहले जेल का जीवन अत्यन्त कठोर और यातनापूर्ण था जिससे कि अपराधी अपराध की पुनरावृत्ति करने में भयभीत रहे। लेकिन, अनुभव से ज्ञात हुआ कि इस कठोर व्यवहार का कैदी के ऊपर वाछित असर नहीं होता था। अक्सर ऐसा होता था कि अपराधी और भी दुष्ट हो जाता था।

पिछले कुछ समय से अपराध और दण्ड के स्वरूप में लोगों के विचार बिलकुल बदल गये हैं। मानववाद और मनोविश्लेषण के उदय के साथ-ही-साथ अधिकांश देशों में व्यापक जेल सुधार किये गये। अब इस बात पर जोर दिया जाने लगा कि अपराधियों का सुधार किया जाये और जेलों में उन्हें उचित शिक्षा एवं उपयुक्त वातावरण देकर इस योग्य बनाया जाये कि वे पुनः समाजिक जीवन व्यतीत कर सकें। फलतः, कारावास कठोर तपस्या के स्थल होने के स्थान पर सुधारालय बनने लगे।

११७. पंजाब का कारावास प्रशासन तथा संगठन (Jail Organisation and Administration in the Punjab)

पुलिस के समान जेल का प्रशासन भी राज्यों का विषय है और ग्राम तोर पर राज्य के गृह मन्त्री के अधीन होता है, परन्तु मन्त्री का काम केवल नीति निश्चय करना तथा कभी-कभी निरीक्षण करना है। असली देखभाल तथा नियन्त्रण भारत डाक्टरी सेवा (Indian Medical Service) के पूरा समय देने वाला वैतानिक (Paid) अधिकारी के हाथ होता है जिसको महाकारा निरीक्षक (Inspector General of Police) कहते हैं। जेल का असली प्रशासक यही होता है और यह जेल के सारी बातों से राज्य सरकार को मन्त्रणा (Advice) देता है और राज्य के सारे कारावासों का निरीक्षण करता रहता है और जेल के सभी अधीक्षक (Officers) उसके ही नियन्त्रण के नीचे काम करते हैं और हर एक जेल के स्वास्थ्य तथा अनुशासन का प्रबन्ध उसकी आज्ञा अनुसार होता है। जेलों में अनेक वस्तु बनती हैं उन्हें बेचने के प्रबन्ध भी वही करता है और जेल की आवश्यक सामग्री-रसद भाजी दूध आदि के ठेके देता है और जेल के भण्डार का ह्याल रखता है और वर्ष के अन्त में जेल का बजट बनता है और प्रशासन सम्बन्ध प्रतिवेदन (Report) लिखता है। उसके नीचे जेल अधीक्षक (Superintendent of Jails) जेल उपाधीक्षक (Deputy Superintendent of Jails) है तथा जेलर और वार्डन भी होते हैं। बड़े-बड़े जेलों में स्त्री उपाधीक्षक (Deputy Superintendent of Jails) तथा जेलर और वार्डन भी होती हैं।

जेल (Jails)—राज्यों में विभिन्न प्रकार के कारावास होते हैं—केन्द्रीय कारावास (Central Jail), जिला कारावास (District Jail), बन्दी खाना (Subsidiary Jails or Lock-ups) और विशेष कारावास (Special Jails)। केन्द्रीय जेल में बहुत गम्भीर अपराध करने वाले कैदियों को रखा जाता है प्रायः उनमें

वह अपराधी रखे जाते हैं जिनको सात वर्ष से ज्यादा कैद मिली हो। इस जेल का मुख्य निरीक्षक एक भारत डाक्टरी सेवा (Indian Medical Service) का एक पुराना सदस्य होता है। आजकल पंजाब का केन्द्रीय कारावास अम्बाले में है। प्रायः हर एक जिले के मुख्यालय (Head Quarter) में एक कारावास होता है, इसको जिला जेल बोलते हैं। जिले में और भी कारावास होते हैं और यह चार श्रेणियों में विभाजित है—पहले दर्जे में 500 से अधिक अपराधी रखे जा सकते हैं, दूसरे दर्जे के जेलों में 300, तीसरे दर्जे के कारावासों में 150 और चौथे में 100 से कम अपराधी रखे जाते हैं। पहली श्रेणी के कारावासों में 3 से 7 वर्ष के दण्ड पाने वाले कैदी रखे जा सकते हैं। दूसरे दर्जे में वे कैदी रखे जाते हैं जिन्हें तीन वर्ष से ज्यादा दण्ड मिला हो, तीसरे या चौथे किस्म के कारावास (Sub Jails) में उन लोगों को रखा जाता है जिन्हें एक वर्ष या उससे कम सजा मिली हो या जिसके ऊपर अभियोग चल रहा हो। छोटी तहसीलों में हवालात (Lock-ups) होती हैं इनमें उन अपराधियों को रखते हैं जिन पर अभियोग (Under trial) चल रहा हो। आजकल प्रत्येक राज्य में कुछ विशेष (Special Jails) भी होते हैं, इन्हें बोस्टल जेल या अद्याव्यय के अपराधियों का कारावास (Borstal Jails and Reformatories) भी कहते हैं। इस प्रकार के जेलों में छोटी आयु के अपराधियों को रखा जाता है।

जेल के कर्मचारियों के कर्तव्य (Duties of the Officers of the Jails)—उन सब जेलों के सेंट्रल तथा जिले के बड़े-बड़े जेलों के निरीक्षक कारावास के अधीक्षक (Superintendents of Jails) होते हैं। इनका कारावासों में अनुशासन, कैदियों की अभिरक्षा, स्वास्थ्य तथा भोजन का उचित इन्तजाम और समय समाप्त हो जाने पर मुक्त कर देना है। कारावास के अधीक्षक की सहायता के लिए जैसा के ऊपर वर्णन किया गया है और भी छोटे अधीक्षक होते हैं जिन्हें उपाधीक्षक जेलर तथा वार्डन कहते हैं। उपाधीक्षक जेल का एक बड़ा काम का अधिकारी है। उनका यह कर्तव्य है कि देखे के जेल में जेल के सब नियम विनियम (Rules and Regulations) ठीक चल रहे हैं और साग कारावास का काम इन्स्पेक्टर जनरल की आज्ञा के अनुसार चल रहा है। अपराधियों की हर रोज सायंकाल को कमरों में बन्द करना और प्रातः काल खोलना और उस समय वहाँ उपस्थित होना उपाधीक्षक का काम है। वह हर रोज की घटनाओं के प्रतिवेदन (Report) एक किताब में लिखता है। यह जेल के अहाते में ही रहता है। जेल में उपाधीक्षक के कर्तव्य बहुत होते हैं इसलिए उसके नीचे कुछ और कर्मचारी काम करते हैं जिन्हें जेलर तथा वार्डन कहते हैं। ये उसको जेल के प्रशासन में पूरा सहयोग देते हैं। वाडनों में कुछ ऐसे आदमी भी होते हैं जिन्हें अच्छे व्यवहार करने वाले कैदियों में से नियुक्त किया जाता है।

कैदियों की श्रेणियाँ (Classes of Prisoners)—अपराधियों में भी तीन श्रेणियाँ होती हैं जिन्हें A, B और C कहते हैं। A और B क्लास उन अपराधियों को

दी जाती है जिन्हे अपराध करने की आदत नहीं होती और शिक्षित तथा समाज के प्रतिष्ठित पुरुषों में होते हैं। जैसे राजनीतिक कैदी (Political Prisoners) हमारे प्रतिष्ठित नेताओं महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य नेताओं ने अपनी आयु के कई वर्ष इन्हीं कारावासों में व्यतीत किये हैं। A और B क्लास के कैदियों को भोजन भी अच्छा मिलता है तथा उन्हें किताबें लिखने और पढ़ने तथा समाचार पत्रों को पढ़ने की भी आज्ञा मिल जाती है। C क्लास के अपराधी को आम भोजन मिलता है।

जेल के दर्शक (Jail Visitors)—कारावास अब पुराने ढंग के नहीं रहे और अपराधियों के साथ कोई अन्याय तो नहीं हो रहा तो इसके देखने के लिए सरकार जेल दर्शक (Jail Visitors) नियुक्त करती है। यह सरकारी और गैर सरकारी दोनों श्रेणियों के होते हैं। सरकारी कर्मचारी आम तौर पर कमिश्नर डिप्टी कमिश्नर, पुलिस, का बड़ा अफसर तथा सिविल सर्जन होते हैं। गैर सरकारी अफसर राज्य किसी को भी मुकरर कर सकती है और इसको हर महीने एक दफा जरूर जेल देखना पड़ता है और अपनी राय रजिस्टर में लिखनी पड़ती है।

११८. बोस्टल जेलों पर एक टिप्पणी (A Note on Borstal Jails)

जेल प्रशासन में अर्वाचीन सुधार (Recent improvements in Jail Administration)—पहले के एक अवतरण में हम कह आये हैं कि पिछले कुछ वर्षों में जेल प्रशासन के सम्बन्ध में लोगों का दृष्टिकोण बिलकुल बदल गया है। एक समय ऐसा था जब कि कारावास साक्षात् नरक होते थे और कैदियों के साथ बहुत ही निर्दयतायुक्त व्यवहार किया जाता था। बहुत से कैदियों को एक छोटी-सी कोठरी में बन्द कर दिया जाता था और कभी-कभी उनकी बहुत बुरी तरह पिटाई होती थी। उनके लिए किसी प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं था। उन्हें भोजन और कपड़ा भी अच्छी तरह नहीं मिलता था। चूंकि अपराधियों को स्वभाव से ही कुटिल माना जाता था, अतः उन्हें पुनः सद्गुणी बनाने का कोई प्रयास नहीं किया जाता था। आजकल की प्रवृत्ति यह है कि अपराधी को जन्मजात दुष्ट नहीं माना जाता, प्रत्युत अपराध को एक रोग और अपराधी को परिस्थितियों का शिकार समझा जाता है। लोगों का यह यकीन है कि यदि कैदी की उपयुक्त वातावरण में रखा जाये और उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाये, तो वह सुधर सकता है, और एक उपयोगी, उत्तरदायी तथा कानून का पालन करने वाला नागरिक बन सकता है। इस विचारधारा के अनुसार ही जेल प्रशासन में कुछ महत्वपूर्ण सुधार किये गये हैं। सरकार कारावास के जीवन को सुखी बनाने का भरसक प्रयास करती है। कैदियों को साफ-सुथरे और हवादार कमरों में रखा जाता है और उन्हें अच्छा खाना-कपड़ा दिया जाता है। जो कैदी अच्छा व्यवहार करते हैं, उनके दण्ड में कमी कर दी जाती है और उन्हें कुछ अन्य सुविधाएँ भी दी जाती हैं। कई जेलों में रेडियों पुस्तकों और समाचार-पत्रों की सुविधाएँ रहती हैं। कैदियों को कताई, बुनाई और कालीन बनाने जैसी कई उपयोगी दस्तकारियाँ सिखाई जाती हैं। इससे परिणामस्वरूप कैदी आजाद होने पर ईमानदारी

से अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं। इस प्रकार के उपायों द्वारा सरकार इस बात की भरसक चेष्टा करती है कि जेल में रहने से कैदियों का जीवन बिलकुल नष्ट न हो जाये, प्रत्युत उन्हें इस बात का अवसर मिले कि वे अच्छे नागरिक बन जायें तथा अपने लिए और समाज के लिए उपयोगी हो सकें।

बोस्टल जेल (Borstal Jails)—इस सम्बन्ध में बोस्टल जेलों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। बोस्टल इंग्लैण्ड में एक शहर है। वहाँ 14 से 21 वर्ष तक की आयु के व्यक्तियों के लिए इस प्रकार की जेल सबसे पहले बनाई गई थी। बोस्टल जेल एक प्रकार का सुधारालय है और वह चौदह वर्ष से कम आयु वाले अपराधियों के लिए विशेष रूप से होता है। बोस्टल संस्थाओं में रखे जाने वाले युवक अपराधियों को प्राथमिक शिक्षा दी जाती है और उन्हें उपयोगी दस्तकारियाँ सिखाई जाती हैं। बोस्टल जेलों का मुख्य उद्देश्य यह है कि तत्क्षण अपराधियों को पुराने अपराधियों की बुरी सोहवत से जो साधारण जेलों में अनिवार्य है, अलग रखा जाये, उन्हें अच्छा वातावरण दिया जाये और उन्हें इस तरह से प्रशिक्षित किया जाये जिससे कि वे कारावास की अवधि को समाप्त करने पर उपयोगी जीवन व्यतीत कर सकें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बोस्टल जेल एक उपयोगी संस्था है।

प्रश्न

1. किसी देश के लिए पुलिस बल की क्यों आवश्यकता है ? पुलिस और जनता के बीच क्यों उचित सम्बन्ध होना चाहिए ?
2. "पुलिस शान्ति की रक्षक और नागरिकों के जीवन स्वतन्त्रता और सम्पत्ति की प्रहरी है।" विवेचन कीजिये।
3. अपने राज्य में पुलिस के संगठन का वर्णन कीजिए।
4. पंजाब में जेल प्रशासन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. जेल प्रशासन में हाल में जो सुधार किये गये हैं उनका वर्णन कीजिए और बोस्टल जेलों पर एक टिप्पणी लिखिए।

Questions

1. Why is it necessary for a country to have a police force ? What should be the proper relationship between the police and the people ?
2. "The police is a custodian of peace and a shield of the citizen's life, liberty and property " Discuss
3. Describe the organisation of Police in your state
4. Give a brief description of Jail administration in the Punjab
5. Give an account of the improvements recently made in Jail administration and write a short note on Borstal Jails.

अध्याय १६

सहकार

(Co-operation)

११६. सहकार क्या है ? (What is Co-operation ?)

व्यापकतम अर्थों में, सहकार का आशय किसी सामान्य उद्देश्य के लिए मिल-जुलकर कार्य करना है। सहकारी संगठन का उद्देश्य पारस्परिक सहायता द्वारा अपने स्वार्थ की अभिवृद्धि करना है। इस दृष्टि से सहकार मानव सभ्यता और उन्नति का मूल आधार है। सहकार के बिना सामाजिक जीवन असम्भव हो जायेगा। परिवार सहकारी अस्तित्व का सुन्दर उदाहरण है। आदमी उपाजित करता है, स्त्री घर चलाती है और वच्चे इधर-उधर के कामों में हाथ बँटाते हैं। यह हर कोई सबके लिए और सब कोई हरेक के लिए का श्रेष्ठ उदाहरण है। सहकार का यही सच्चा आधार है।

लेकिन, अर्थशास्त्र में सहकार जरा निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होता है। वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था प्रतियोगिता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके परिणामस्वरूप अमीर तो सब तरह के लाभ में रहते हैं और गरीब बुरी तरह पिस जाते हैं। सहकार इस बुराई को दूर करता है। इसलिए सहकार प्रतियोगिता का एक विकल्प है। जेलिगमैन (Jeligionman) के शब्दों में, “इसका अर्थ प्रतियोगिता को त्यागना और हर प्रकार के दलालों को समाप्त करना है।” सहकार पारस्परिक सहायता के द्वारा दुर्बलों को मजबूत बनाता है। वह एकता, शिक्षा और पारस्परिक प्रयत्न द्वारा गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने का प्रयास करता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था (I. L. O.) ने ग्रामीण जीवन में सहकारी-कार्य (Co-operative action in rural life) सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में सहकारी समाज की इस प्रकार परिभाषा की है, “वह आर्थिक दृष्टि से दुर्बल व्यक्तियों का एक सघ है। ये व्यक्ति समान अधिकारों और समान उत्तरदायित्व के आधार पर एक-दूसरे से मिलते हैं। वे अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को जिन्हें वे अलग-अलग पूरा नहीं कर सकते, मिल-जुलकर इस तरह पूरा करते हैं जिससे सब का समान रूप से भौतिक और नैतिक लाभ हो।”

१२०. सहकारी समाजों का रूप (Forms of Co-operative Societies)

सहकारी ऋण समाज (Co-operative Credit Societies) — सहकारी समाज किसानों और अन्य व्यक्तियों के लाभ के लिए शहरी और देहाती दोनों क्षेत्रों में कार्य करते हैं। सहकारी समाज ऋण सम्बन्धी या ऋण के सम्बन्धित सभी कार्यों

के लिए संगठित किए जा सकते हैं । सहकारी ऋण समाज अपने सदस्यों को कम ब्याज पर ऋण देता है । इन समाजों की निधियाँ सदस्यों के प्रवेश शुल्क और निक्षेपों, अन्य व्यक्तियों के निक्षेपों और केन्द्रीय सहकारी बैंकों के ऋणों से एकत्रित होते हैं । अन्य सहकारी समाज सयुक्त प्रयत्नों द्वारा सामान्य समस्याओं को सुलभाने और सामान्य कार्यों को करने के लिए बनाये जाते हैं । उदाहरण के लिए सहकारी विक्रय समाज फसलों को अच्छी कीमत पर बेचने के लिए बनाए जाते हैं । ये समाज अपने सदस्यों की फसलों को इकट्ठा करते हैं और उन्हें बाजार में अच्छी कीमत पर बेच देते हैं और विक्रेता को दलाल के चंगुल से बचा देते हैं । इस तरह वे सहायता करते हैं कि वह अपने परिश्रम का अधिकतम लाभ उठा सके । सहकारी विक्रय समाज अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की वस्तुओं को थोक मूल्य पर खरीद लेते हैं और उन्हें सदस्यों को उचित मूल्य पर बेच देते हैं । इसी प्रकार कुआँ और तालाबों आदि को खोदने के लिए सहकारी गिर्चाई समाजों की स्थापना की जाती है । शहरो और देहातों में अकृषि ऋण समाज (Non-agricultural Credit Societies) भी हैं । देहातों में कुटीर उद्योगों में कार्य करने वाले कारीगर और मजदूर ऋण या ऋण के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए सहकारी समाजों की स्थापना करते हैं । शहरो के लोग पारस्परिक सहायता के लिए सहकारी गोदाम समाज और सहकारी आवास समाज जैसे समाजों की स्थापना करते हैं ।

१२१. सहकारी समाजों का संगठन और उनकी वित्तीय स्थिति (Organisation and Financial Structure of Co-operative Societies)

प्राथमिक सहकारी समाज उनका संगठन और कार्य (Primary Co-operative Societies—their Organisation and Functions)—भारत में सहकारी समाजों का संगठन अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है और उनके बीच किसी प्रकार का सन्तुलन नहीं है । सहकारी समाजों के संगठन में प्राथमिक सहकारी समाज कृषि सम्बन्धी और अन्य कार्यों सम्बन्धी सबसे नीची इकाइयाँ हैं । प्राथमिक सहकारी समाज ऋण देने या अन्य कार्यों के लिए बनाया जा सकता है । यह स्मरणीय है कि सहकारी ऋण समाज कृषि सहकारी समाजों के ८० प्रतिशत हैं । प्राथमिक सहकारी समाज ऐसे दस या अधिक व्यक्तियों द्वारा बनाया जा सकता है जो एक ही इलाके में रहते हैं । प्रत्येक सदस्य को प्रवेश शुल्क देना पड़ता है और कुछ शेष खरीदने पड़ते हैं । वह अपनी बचत भी समाज में रख सकता है । सब सदस्य सामान्य समिति (General Committee) का निर्माण करते हैं । सामान्य समिति अपने सदस्यों में से एक छोटी समिति चुनती है जिसे प्रबन्ध समिति कहते हैं । यह समिति अधिशासी संस्था बन जाती है और समाज का कार्य-संचालन करती है । समाज का मुख्य कार्य अपने सदस्यों को औजार खरीदने जैसे उत्पादक कार्यों के लिए, या विवाह जैसे अनुत्पादक कार्यों के लिए या पुराने ऋण चुकाने के लिए ऋण देना है । ऋण

ऋणदाता के अतिरिक्त दो अन्य सदस्यों की प्रतिभूति पर दिए जाते हैं और वे थोड़ा-थोड़ा करके वसूल किये जाते हैं। समाज की पूंजी सदस्यों के प्रवेश शुल्क, शेयरों की बिक्री और सदस्यों तथा अन्य व्यक्तियों के निक्षेपों से मिलकर बनती है। ये समाज केन्द्रीय सहकारी बैंकों से भी ऋण प्राप्त करते हैं। प्राथमिक सहकारी ऋण समाज का उत्तरदायित्व असीम है जिसका अभिप्राय यह है कि यदि समाज अपने ऋण को नहीं चुका सकता तो उसके प्रत्येक सदस्य की सम्पत्ति कुर्क की जा सकती है। यदि समाज को लाभ होता है, तो उसका चौथाई हिस्सा रिजर्व फंड में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। शेष लाभ में से दस प्रतिशत धार्मिक कार्यों में खर्च किया जा सकता है और बाकी लाभांशों के रूप में सदस्यों में बाँट दिया जाता है।

(2) **केन्द्रीय सहकारी बैंक या यूनियनें** (Central Co-operative Banks or Unions)—प्राथमिक सहकारी समाजों से ऊपर केन्द्रीय सहकारी बैंक अथवा यूनियनें होती हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंक जिले के मुख्यालयों में या प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में स्थापित किए जाते हैं। वे अपने क्षेत्र के प्राथमिक समाजों की अतिरिक्त निधियाँ एकत्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त वे सामान्य जनता से भी निक्षेप प्राप्त करते हैं। वे अपने प्राथमिक समाजों को ऋण देते हैं। सहकारी यूनियनें छोटे आधार पर सहकारी बैंक हैं। उनके कार्य केन्द्रीय सहकारी बैंकों के समान ही हैं। वे सीधे या केन्द्रीय सहकारी बैंक के द्वारा प्रान्तीय सहकारी बैंकों से सम्बद्ध हो सकती हैं।

(3) **राज्य सहकारी बैंक** (State Co-operative Bank)—राज्य सहकारी बैंक या शिखर बैंक राज्य में सहकारी सगठन का शीर्ष होता है। वास्तव में, वह राज्य के सहकारी आन्दोलन का प्राण होता है। उसके सदस्य होते हैं—सहकारी केन्द्रीय बैंक, सहकारी यूनियनें और सहकारी भूमि बंधक बैंक। कभी-कभी उदाहरण के लिए पंजाब में प्राथमिक सहकारी समाजों या व्यक्तियों को भी सदस्य बनने की अनुमति दे दी जाती है। राज्य सहकारी बैंक के पास अपनी अंश पूंजी होती है। इसके अतिरिक्त वह सदस्यों से निक्षेप भी प्राप्त करता है। वह बैंक के सब तरह के कार्य करता है लेकिन ऋण केवल सदस्यों को ही देता है। उसका एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि बैंकों, यूनियनों और प्राथमिक समाजों के बीच निधियों का उचित वितरण हो। यदि किसी एक क्षेत्र में अधिक निधियाँ होती हैं, तो उनका दूसरे क्षेत्रों में प्रयोग हो सकता है। संक्षेप में, “राज्य सहकारी बैंक सहकारी संस्थाओं के बीच सहयोग प्राप्त करता है।”

(4) **बहुद्देशीय सहकारी समाज** (Multi-purpose Co-operative Societies)—साधारण सहकारी समाजों के दो भेद हैं—ऋण सम्बन्धी सहकारी समाज और अन्य कार्यों सम्बन्धी सहकारी समाज। प्रत्येक सहकारी समाज का एक ही मुख्य कार्य होता है—ऋण, ऋय, विक्रय, बीमा या बेहतर जीवन-यापन। हाल में एक नये प्रकार के सहकारी समाज बहुद्देशीय सहकारी समाज (Multi-purpose Co-operative Society) का प्रतिपादन किया गया है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट

है, इस प्रकार का समाज कई प्रकार के कार्य करता है । वह अपने सदस्यों की ओर से बीज, खाद और पशु आदि खरीद सकता है । वह कुएँ और सार्वजनिक इमारतें बनवा सकता है, अपने सदस्यों को किराए पर कृषि के औजार दे सकता है और उपभोग की वस्तुओं को बेच सकता है । वह निक्षेप भी स्वीकार कर सकता है और ऋण भी दे सकता है । बहुद्देशीय समाज बहुत उपयोगी होते हैं । हमारे देहातों की समस्या अनेकमुखी है । इसलिए, इसको सभी ओर से सुलभाने का प्रयास करना चाहिए । बहुद्देशीय समाज किसानों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करके यह कार्य कर सकता है । संक्षेप में, इस प्रकार का समाज ग्रामीण उत्थान के लिए केन्द्र बिन्दु का कार्य कर सकता है ।

(5) भूमि बन्धक सहकारी समाज (Land Mortgage Banks)—भूमि बन्धक सहकारी समाज एक अन्य प्रकार का सहकारी समाज है । ये बैंक सहकारी संगठन के एक प्रभिन्न भाग हैं, लेकिन उनकी एक विशिष्ट श्रेणी है । साधारण सहकारी ऋण समाज केवल कुछ काल के लिए ही ऋण दे सकते हैं । लेकिन कभी कभी किसानों को काफी लम्बे समय के लिए ऋण की आवश्यकता होती है । यह तब होता है जब कि वे अपनी जमीन में स्थायी सुधार करना चाहते हैं । भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Bank) इस तरह के दीर्घकालीन ऋण देते हैं । ये ऋण इन उद्देश्यों के लिए दिए जाते हैं—(1) जमीन की खरीद या फार्मों का विकास, (2) स्थायी सुधार करना जैसे कि कुएँ को खोदना और (3) ऐसे पुराने ऋणों को चुकाना जिनमें व्याज की दर बहुत अधिक हो । भूमि बन्धक बैंक जमीन की प्रतिभूति पर ऋण देते हैं । वे दीर्घकालीन निक्षेपों और ऋण-पत्रों को स्वीकार करके अपनी निधियाँ एकत्रित करते हैं ।

१२२. पंजाब में सहकारी आन्दोलन (Co-operative Movement in the Punjab)

अविभक्त पंजाब भारत के उन तीन प्रान्तों में से एक था जहाँ सहकारी आन्दोलन सबसे अधिक सफल हुआ था । लाहौर के पंजाब प्रान्तीय सहकारी बैंक के अतिरिक्त प्रान्त में 46 केन्द्रीय बैंक और 68 ऋण यूनियनें थी । 1938 में 23,657 सहकारी ऋण समाज थे जो प्रान्त के आधे गाँवों की सेवा करते थे । इन समाजों के प्रायः 90 लाख सदस्य थे । यह प्रान्त की करीबन 30% जनसंख्या थी । वहाँ अ-ऋण सहकारी समाजों (Non-credit Co-operative Societies) ने भी काफी प्रगति की थी । जीवन सुधार और पशु समाजों (Better living and cattle societies) की प्रगति भी सन्तोषजनक थी । पंजाब ही एकमात्र ऐसा प्रान्त था जिसमें काश्त समेकन समाज (Consolidation of Holdings Societies) थी । लाहौर का मॉडल टाउन सहकारी भवन समाज (Co-operative Holdings Society) ने बनवाया था । इसके विपरीत, पंजाब में भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks) और उपभोग सहकारी स्टोर्स (Consumer's Co-operative Stores) असफल हो गए ।

विभाजन से इस आन्दोलन को धक्का पहुँचा, लेकिन भारतीय पंजाब की विशेष हानि नहीं हुई है। विभाजन के पूर्व भी गुरदासपुर, जलंधर और होशियारपुर के जिलों में सहकारी आन्दोलन का बहुत विकास हुआ था। भारतीय पंजाब के सहकारी समाजों के रजिस्ट्रार के प्रतिवेदन के अनुसार पंजाब में इस समय 21105 सहकारी समाज हैं। और यह आज कल 22.5% के लगभग जनता की सेवा कर रही है।

१२३ भारत में सहकारी आन्दोलन के लाभ और सफलतायें (Benefits and Achievements of the Co-operative Movement in India)

भारत में 1956-56 में 2,40,395 सहकारी समाज हैं और यह 22.5% के लगभग जनता की सेवा कर रही हैं, परन्तु उन्होंने किसानों और सीमित साधनों के अन्य व्यक्तियों के लिए स्वर्ण का सृजन नहीं किया है। लेकिन, फिर भी, इमने जनता को कुछ लाभ तो पहुँचाया ही है। प्रथमतः, इसकी वजह से व्याज की दर में बहुत कमी हो गई है। पहले महाजन 25% से लेकर 50% तक और कभी-कभी तो 100% तक व्याज लिया करते थे। इसके विपरीत सहकारी समाज केवल 7% से लेकर 12½% तक ही व्याज लेते हैं। प्रतियोगिता ने महाजनों को विवश कर दिया है कि वे अपनी व्याज की दर में कमी कर दें। हिसाब लगाया गया है कि सहकारी आन्दोलन के कारण भारतीय किसान अकेले व्याज के रूप में ही प्रायः तीन करोड़ रुपये प्रतिवर्ष बचा लेते हैं। दूसरे, सहकारी आन्दोलन ने कुछ सीमा तक किसानों को मितव्ययिता (Thrift) की शिक्षा दी है। सदस्य पैसा बचाना और अपनी बचत को सहकारी समाजों में लगाना चाहते हैं। इस तरह सहकारी आन्दोलन में कर्जखोरी में कमी होती है। तीसरे, सहकारी आन्दोलन किसानों का चरित्र-निर्माण करता है। वह उन्हें आत्म-विश्वास और पारस्परिक सहायता के पाठ पढ़ाता है। यदि सहकारी आन्दोलन का ठीक से विकास किया जाए, तो वह किसानों को महत्वपूर्ण नागरिक शिक्षा दे सकता है, उन्हें सिखा सकता है कि वे अपने पैरों पर कैसे खड़े हों, अपने काम अपने आप कैसे करें और एक दूसरे को किस प्रकार सहायता दें। चौथे, सहकारी विक्रय समाज सब तरह के दानों को हटा कर किसानों के लिए उनकी फसलों का उचित मूल्य प्राप्त करते हैं। पाँचवे, सहकारी आन्दोलन ग्रामीण उत्थान का पथ प्रस्तुत करता है। सहकार का कई उपयोगी आर्थिक और सामाजिक कार्यों के लिए प्रयोग किया गया है। पंजाब में काश्तो के समेकन (Consolidation of Holdings), पशु प्रजनन (Cattle Breeding) पशु-बीमा, सफाई और सिंचाई आदि प्रयोजनों के लिए सहकारी समाजों का निर्माण हुआ है। इसी तरह, सहकारी समाजों के प्रभाव के कारण मुकदमेवाजी और बाल-विवाह जैसी सामाजिक कुरीतियाँ कम हुई हैं और शिक्षा का विकास हुआ है। सहकारी समाज में मुकदमेवाजी, मदिरापान और बुआखोरी कम हो जाती है और उनके स्थान पर उद्योग, आत्म-निर्भरता शुद्ध-व्यवहार,

प्रेरणा, आत्म-सहायता और पारस्परिक सहायता का भाव दिखाई देने लगता है। छोटे, सहकारी समाज से केवल किसानों का ही लाभ नहीं हुआ है, उससे सीमित साधनों के सभी व्यक्तियों का हित हुआ है। देहाती क्षेत्रों में कारीगरों ने और शहरों में निम्न और मध्यवर्ग के लोगो ने ऋण, क्रय और विक्रय सम्बन्धी सहकारी समाजों की स्थापना करके अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार किया है। यद्यपि इस क्षेत्र में सहकारी समाजों को ज्यादा सफलता नहीं मिली है, लेकिन आशा की जाती है कि भविष्य में वे ज्यादा सफल होगी।

१२४. सहकारी आन्दोलन की धीमी उन्नति के कारण (Causes of Slow Progress of the Co-operative Movement)

असन्तोषजनक उन्नति (Unsatisfactory Progress)—यद्यपि सहकारी आन्दोलन ने अनेक लाभ दिये हैं, लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस आन्दोलन को भारत में उतनी सफलता नहीं मिली है जितनी कि अन्य देशों में। हमारे देश में किसानों से अतिरिक्त वर्गों में इस आन्दोलन का ज्यादा विकास नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त, अधिकतर जोर सहकारी ऋण समाजों (Co-operative Credit Societies) पर ही दिया जाना रहा है। किसानों में भी सहकारी आन्दोलन ने कर्जखोरी में कोई कमी नहीं की है। वास्तव में उसने भारतीय कृषि के इस खूब रोग को केवल छुआ भर ही है। इसने किसानों की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओं को केवल २% ही पूरा किया है और केवल १.५% जनता ने ही सहकारी समाजों की सदस्यता को स्वीकार किया है।

उपचार (Remedies)—सहकारी आन्दोलन की इस धीमी प्रगति का प्रमुख कारण जनता की अशिक्षा है जिसकी वजह से वह सहकार के लाभों को नहीं समझ पाती। सहकारी आन्दोलन की उत्प्रेरणा (Initiative) जनता की ओर से कम, सरकार की ओर से अधिक आई है। सहकारी समाजों के पास पैसे का अभाव रहता है। ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया बहुत जटिल है और इसमें बहुत देरी लगती है। इसके अतिरिक्त ऋण प्रदान करते समय और जो लोग ऋण प्रदा नहीं कर पाते, उनके विरुद्ध आज्ञाप्रियाँ निकालने समय पक्षपात में काम लिया जाता है। सहकार विभाग के अधिकारियों में अछाचार पाया जाता है। इन सब कारणों से सहकारी आन्दोलन बहुत बर्दनाम हो गया है। अब तक भारत में सहकारी आन्दोलन केवल ऋण की व्यवस्था तक ही सीमित रहा है। अन्य उपयोगी सेवाओं की उपेक्षा हुई है। अंतशः, सहकारी आन्दोलन के ऊपर सरकार का बहुत अधिक नियन्त्रण है। सहकारी समजों का रजिस्टार एक प्रकार से इस आन्दोलन का अधिनायक (Dictator) है। यह सहकार के मूल उद्देश्य के प्रतिकूल है। सहकार का मूल उद्देश्य है—गरीबों में पारस्परिक सहायता की भावना पैदा करना। ये श्रुतियाँ ही उपचारों का सकेत करती हैं। सहकार की उत्प्रेरणा गरीब किसानों और अन्य लोगों की ओर से आनी चाहिए, जिनको लाभ पहुँचाना इस आन्दोलन का उद्देश्य है। यह तभी हो सकता है जब कि अशिक्षा को

दूर किया जाये और क्रमबद्ध योजना तथा प्रचार के द्वारा जनता को सहकार के विविध लाभों से परिचित कराया जाये । देहाती लोगों का पिछड़ापन केवल सस्ते ऋण की व्यवस्था करने से ही दूर नहीं हो सकता । यह और भी ज्यादा जरूरी है कि किसानों को ऋण की आवश्यकता ही नहीं रहे । इसका अभिप्राय यह है कि सहकारी प्रयत्नों के द्वारा कृषि में तेजी से सुधार किया जाये । सहकारी समाज ब्याज की जो दरें लेते हैं, उनमें अभी और कमी होनी चाहिए । यदि भारत का रिज़र्व बैंक सहकारी आन्दोलन को सहायता दे, तो इसमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । सहकार-विभाग का इस आन्दोलन के ऊपर जो नियन्त्रण है, उसमें कमी होनी चाहिए और लोगों को इस बात का प्रोत्साहन देना चाहिए कि वह स्वयं ही पहल करें । अंतशः, बहुद्देशीय सहकारी समाजों का विकास ज्यादा होना चाहिए जिससे कि वे एक प्रयोजनीय सहकारी समाजों का स्थान ग्रहण कर सकें । डॉ० मुकर्जी ने निम्न शब्दों में इस आवश्यकता पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है, “हमें समस्त मोर्चों पर योजनाबद्ध सहकार के अनुसार कार्य करना चाहिए । यदि हम एक क्षेत्र में दुर्बलता या शिथिलता से काम लेते हैं, तो यह सारे क्षेत्र में व्यापक हो जायेगी । किसान का जीवन अविभक्त जीवन है और देहाती कार्यक्रम तभी सफल होगा जो उसका आर्थिक, सामाजिक और नैतिक सभी दृष्टियों से उत्थान करेगा ।”

प्रश्न

1. सहकार से आपका क्या अभिप्राय है ? यह किसानों की ऋण-समस्या को कैसे हल कर सकता है ?
2. सहकारी समाजों के विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए ।
3. पंजाब में सहकारी समाजों के संगठन का वर्णन कीजिए ।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—(1) केन्द्रीय सहकारी बैंक, (2) भूमि बन्धक बैंक, (3) बहुद्देशीय सहकारी समाज ।
5. प्राथमिक देहाती ऋण सहकारी समाजों के संगठन और कार्यों का वर्णन कीजिए ।
6. पंजाब में सहकारी आन्दोलन के विकास का वर्णन कीजिए ।
7. भारत में सहकारी आन्दोलन की सफलताओं का वर्णन कीजिए ।
8. भारत में सहकारी आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण हैं ? आप इन कठिनाइयों पर विजय पाने के क्या उपाय सुझावेंगे ?

Questions

1. What do you mean by Co-operation ? How can it solve the problem of rural indebtedness ?
2. Describe briefly the different forms of co-operative societies.
3. Give an account of the organisation of the co-operative societies in the Punjab.
4. Write short notes on : (i) Central Co-operative Banks, (ii) Land Mortgage Banks (iii) Multi-purpose Co-operative Societies
5. Describe the organisation and functions of Primary Rural Credit Co-operative Societies
6. Give an account of the progress of the co-operative movement in the Punjab
7. Make an estimate of the achievements of the co-operative movement in India
8. Why has the progress of the co-operative movement been slow in India ? What measures would you propose for overcoming the difficulties ?

भारत, राष्ट्रमंडल और संयुक्त राष्ट्र संघ

(India, Commonwealth and the U. N. O.)

१२५. राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Nations)

जिस समय भारत राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहा था, देश के लोगों की आम माँग यह थी कि जैसे ही भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करे, वह ब्रिटेन से और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से जिसे अब केवल राष्ट्रमंडल कहा जाता है, अपना पूर्ण सम्बन्ध हटा ले। लेकिन इतिहास की गति दूसरी ही रही है। भारत ने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, लेकिन वह राष्ट्रमंडल का सदस्य है। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम ने जो 15 अगस्त 1947 को प्रभावी हुआ, भारत को डोमिनियन स्टेटस प्रदान किया। इसका अभिप्राय यह है कि भारत राष्ट्रमंडल का एक पूर्ण और समान सदस्य बन गया। ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, पाकिस्तान और सीलोन राष्ट्रमंडल के अन्य सदस्य हैं। उक्त अधिनियम ने भारत को राष्ट्रमंडल में बने रहने या उससे बाहर निकलने की पूरी स्वतन्त्रता दी थी। इस प्रश्न के ऊपर सारे देश में वाद-विवाद हुआ। अंततः, भारत सरकार ने अपने निर्णय के लिए कि वह राष्ट्रमंडल में रहे या नहीं, संसद का प्रनुमोदन चाहा। संसद ने सरकार के निर्णय का समर्थन किया।

डोमिनियन स्टेटस (Dominion Status)—डोमिनियन स्टेटस शब्द राष्ट्रमंडल के सदस्य देशों के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन करता है। 1926 की बल्फोर रिपोर्ट में स्थिति को स्पष्ट किया गया था। वेस्टमिनिस्टर की सविधि (Statute of Westminster) में इस स्थिति को वैधानिक रूप दिया गया था। “ये (डोमिनियन) ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र समाज हैं जो पद में एक दूसरे के बराबर हैं, अपने घरेलू और वैदेशिक मामलों में किसी प्रकार एक दूसरे के अधीन नहीं हैं यद्यपि ‘क्राउन’ (Crown) के प्रति एक समान भक्ति-भाव रखने से एक दूसरे से मिले हुए हैं और राष्ट्रमंडल के स्वेच्छा से सदस्य हैं।” दूसरे शब्दों में डोमिनियन न्यूनाधिक (Sovereign) रूप से प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य हैं। वे अपने घरेलू और वैदेशिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि पुराने डोमिनियन मूलतः इंग्लैंड के उपनिवेश थे और पूर्णतः इंग्लैंड की सत्ता के अधीन थे। समान साम्रदायी की उनकी वर्तमान स्थिति क्रमिक वैधानिक विकास की परिणाम है।

आन्तरिक स्वतन्त्रता (Internal Freedom)—डोमिनियन किसी भी तरह इंग्लैंड की सरकार या संसद के अधीन नहीं हैं। घरेलू क्षेत्र में उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है। यह अधिशास्त्री और विधायी दोनों क्षेत्रों के सम्बन्ध में ही सही है। साम्राट्

डोमीनियन के गवर्नर जनरल को सम्बद्ध डोमीनियन के मंत्रिमंडल की राय पर नियुक्त करते हैं, इंग्लैंड के मंत्रिमंडल की राय पर नहीं। ब्रिटिश संसद् डोमीनियन के विधानमंडल द्वारा पास किये गये किसी कानून का उल्लंघन नहीं कर सकती। इसी प्रकार ब्रिटिश संसद् द्वारा पास किया गया कोई कानून डोमीनियन के विधानमंडल की राय के बिना डोमीनियन के ऊपर लागू नहीं हो सकता। डोमीनियनों ने न्यायिक क्षेत्र में भी पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। अब उनकी अपनी-अपनी इंग्लैंड की प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति में नहीं होती।

वैदेशिक स्वतन्त्रता (External Independence)—कम से कम सिद्धान्तः डोमीनियन वैदेशिक मामलों में भी पूर्ण प्रसन्नता का उपभोग करते हैं। वे दूसरे देशों के साथ सीधे कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं और उनके साथ किसी भी तरह की राजनीतिक या आर्थिक सन्धि कर सकते हैं। ये संयुक्त राष्ट्र संघ के स्वतन्त्र सदस्य हैं। युद्ध और शान्ति के मामलों में राष्ट्रमंडल का प्रत्येक देश स्वतन्त्र नीति अपना सकता है। यह सही है कि राष्ट्रमंडल की समान सदस्यता के कारण थोड़ी बहुत एकता आवश्यक है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वह प्रत्येक प्रश्न पर हो। उदाहरण के लिए, राष्ट्रमंडल के देशों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे ऐसे किसी युद्ध में शामिल हों ही जिसमें कि इंग्लैंड या राष्ट्रमंडल का अन्य कोई देश अन्तर्ग्रस्त हो। द्वितीय विश्वयुद्ध में आयरलैंड तटस्थ रहा था। यद्यपि वह उस समय राष्ट्रमंडल का सदस्य था। हाँ, यदि किसी युद्ध में राष्ट्रमंडल के सदस्य एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ें, तो राष्ट्रमंडल कठिनाती से ही जीवित रह सकेगा।

राष्ट्रमंडलीय देशों का सम्पर्क स्वतन्त्र और ऐच्छिक है। इसका अभिप्राय यह है कि डोमीनियन जब चाहे, तब राष्ट्रमंडल से पृथक् हो सकता है। आयरलैंड अब राष्ट्रमंडल का सदस्य नहीं है। बर्मा ने डोमीनियन स्टेटम प्राप्त करने के तुरन्त बाद ही राष्ट्रमंडल से अपना नाता तोड़ लिया था। 1947 के भारत स्वतन्त्रता अधिनियम ने भारत और पाकिस्तान को उस बात का पूरा अधिकार दिया था कि वे जब चाहे तब राष्ट्रमंडल से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर सकते हैं।

भारत की अद्वितीय स्थिति—(India's Unique Position)—एक दृष्टि से राष्ट्रमंडल में भारत की स्थिति अद्वितीय है। भारत (और पाकिस्तान) को छोड़कर राष्ट्रमंडल के समस्त देश ब्रिटिश क्राउन के प्रति निष्ठा रखते हैं। इंग्लैंड का राजा प्रत्येक डोमीनियन का अलग-अलग भी राजा है। वस्तुतः, क्राउन वह स्वर्ण शृङ्खला है जो राष्ट्रमंडल के विभिन्न देशों में एकता स्थापित करती है। भारत ब्रिटिश सम्राट् को राष्ट्रमंडल का प्रधान और उसकी एकता का प्रतीक मानता है, लेकिन वह उसके व्यक्तित्व के प्रति कोई निष्ठा नहीं रखता और न उसे अपना सम्राट् ही स्वीकार करता है। यह अपरिहार्य है क्योंकि भारत गणराज्य है। फिर भी उसे राष्ट्र का पूण और समान सदस्य मान लिया गया है।

राष्ट्रमंडल का परिवर्तनशील स्वरूप (The changing form of the Commonwealth)—उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रमंडल का स्वरूप

कठोर या अपरिवर्तनीय नहीं है। इसके विपरीत, उसका स्वरूप निरन्तर बदलता रहा है। एक समय वह ब्रिटिश साम्राज्य के नाम से विख्यात था। इस समय उपनिवेश इंग्लैंड की प्रभुसत्ता के अधीन थे। लेकिन, ज्यों-ज्यों इन उपनिवेशों में लोकतन्त्रात्मक शक्तियों का प्रसार होता गया, उन्हें स्वायत्तता मिलती गई और वे धीरे-धीरे डोमिनियन बन गये। किप्लिंग (Kipling) की निम्नलिखित पंक्तियाँ डोमिनियन की स्थिति का अच्छी तरह से वर्णन करती हैं—

A daughter in my mother's house,
A mistress in my own.

जब ब्रिटिश साम्राज्य के स्वरूप में यह परिवर्तन हुआ, तो उसका नाम भी बदल गया। अब उसका नाम ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (British Commonwealth of Nations) हुआ। जब भारत, पाकिस्तान और सीलोन उसके नए सदस्य बने, उसके नाम के आगे से 'ब्रिटिश' शब्द भी हटा दिया गया। इसका कारण यह था कि इस नाम से कुछ तो जातीयता का भान होता था और कुछ इंग्लैंड की श्रेष्ठता का।

शिथिल संघ (A Loose Union)—यह स्मरणीय है राष्ट्रमंडल एक शिथिल संगठन है। वह संघान (Federation) नहीं है। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, वह एक स्वतन्त्र समुदाय है। प्रत्येक देश को उससे बाहर निकलने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रमंडल के पास संघ-शासन की भाँति कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं है। यह ठीक है कि इंग्लैंड कई सामाजिक और राजनीतिक उपायों द्वारा विशेषकर विदेश नीति के क्षेत्र में राष्ट्रमंडल के देशों के ऊपर प्रभाव डाल सकता है। लेकिन, यह प्रभाव न तो इतना व्यापक है और न इतना गहरा ही है कि वह नियंत्रण और निर्देशन की शक्ति प्राप्त कर सके।

१२६. भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता क्यों स्वीकार की ? (Why India accepted the membership of the Commonwealth ?)

भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता क्यों स्वीकार की, इसका सर्वश्रेष्ठ उत्तर जवाहरलाल नेहरू ने दिया है। उनका कहना है, “नया राष्ट्रमंडल न तो आंतरिक और न बाहरी क्षेत्र में ही भारत की स्वतन्त्रता को मर्यादित करता है। उसने भारत के ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया है। भारत अपनी इच्छा के विरुद्ध एक मिनट भी राष्ट्रमंडल में रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यह समझौता कांग्रेस की प्रतिज्ञाओं और किसी भी गुट में शामिल न होने की भारत की विदेश नीति के अनुकूल है। वह भारत को स्वतन्त्रता और आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में सुरक्षा प्रदान करता है। भारत ने किसी भी चीज का बलिदान नहीं किया है। उसकी मूल नीति अब भी यथावत् है। यदि कोई परिवर्तन हुआ भी है, तो केवल राष्ट्रमंडल में ही हुआ है।”

लेकिन जब इंग्लैंड दक्षिण अफ्रीका का जाति-विरोधी नीति त्यागने के लिए विवश नहीं कर सकता या काश्मीर के प्रश्न पर भारत की भावनाओं की उपेक्षा करके पाकिस्तान का साथ देता है, तो फिर भारत राष्ट्रमंडल को क्यों न छोड़ दे ? वह अब भी क्यों उसका सदस्य है ? इन प्रश्नों का उत्तर देते समय पंडित नेहरू ने सितम्बर, 1956 में राज्य सभा में कहा था, “आजकल संसार में पहले से ही अनेक विघटनकारी शक्तियाँ हैं। भारत का यह विशेषाधिकार और नीति रही है कि वह राष्ट्रों के बीच पुल (Bridge) का कार्य करे न कि पहले से ही वर्तमान पुलों को तोड़े। हम अन्य देशों के साथ जो भी सम्पर्क रखते हैं, चाहे वे राष्ट्रमंडल के देश हों या अन्य देश हों, उनसे शान्ति के उद्देश्य में सहायता मिलती है। मैं ऐसी प्रत्येक वस्तु के पक्ष में हूँ जो हमें बाँधे बिना एक दूसरे के निकट लाती है। किसी भी चीज को तोड़ना तो आसान है, लेकिन बनाना मुश्किल।” कुछ लोगो का कहना है कि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य केवल भावनात्मक कारणों (Sentimental Reasons) से है। पंडित नेहरू ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया है, “भारत के लिए वह दिन दुर्भाग्यपूर्ण होगा कि इसकी सरकार की नीति जनता की भावनाओं या आकस्मिक क्षणिक उत्तेजनाओं के आधार पर शासित होगी। मैं जानता हूँ कि इंग्लैंड में और राष्ट्रमंडल के अन्य देशों में ऐसा बहुत कुछ किया जा रहा है जो हमारी रूढ़ि के प्रतिकूल है और जिसके विरुद्ध हमने भूतकाल में संघर्ष किया है। लेकिन, यह एक अन्य मामला है जिससे हम एक प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र के नाते निबटेंगे।”

कुछ अन्य लोगों ने भी हमें सलाह दी है कि हम राष्ट्रमंडल से अपना सम्बन्ध विच्छेद न करें। जनवरी, 1957 में भारत के प्रति अपने एक सन्देश में लार्ड बर्ट्रैंड रसेल (Lord Bertrand Russel) ने कहा था, “भारत राष्ट्रमंडल का सबसे शक्तिशाली सदस्य है। इस नाते वह संसार की बड़ी-बड़ी प्रतिद्वंद्वी शक्तियों के संघर्ष के कुपरिणाम को दूर करके मानव जाति की अपूर्व सेवा कर सकता है। मिस्र में इंग्लैंड और फ्रांस की कार्यवाही को भारत सरकार ने जो निन्दा की है, मैं उससे सहमत हूँ। इसकी वजह से भारत ने राष्ट्रमंडल से अपना सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है।” मार्च 1957 में इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध श्रमिक नेता श्री बेवान (Bevan) भारत आये थे। उन्होंने भी यही बात कही थी। उन्होंने कहा था, “राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध विच्छेद भारत और इंग्लैंड दोनों के लिए न केवल मूर्खतापूर्ण ही होगा, प्रत्युत एक भयंकर भूल होगी। यदि हम मिल-जुलकर सहयोग नहीं करते, तो हम अलग-अलग मर जायेंगे। राष्ट्रमंडल का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। उसका सही दिशा में पथ-प्रदर्शन करने के लिए भारत के प्रभाव की आवश्यकता है।”

१२७. भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ (India and the U. N. O.)

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का मूल सदस्य (India, an original member of the U. N. O.)—संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों, संगठन और सफलताओं का हम

इस पुस्तक के पहले भाग के अंतिम अध्याय में वर्णन कर चुके हैं। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर पर हस्ताक्षर किये थे। वह इस संस्था का तथा इसकी सहयोगी अन्य संस्थाओं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था (International Labour Organisation), एशिया और सुदूर पूर्व के लिए आर्थिक आयोग (The Economic Commission for Asia and the Far East) संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संस्था (United Nations Food and Agricultural Organisation) पुनर्निर्माण विश्व बैंक (The World Bank for Reconstruction) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation) आदि का प्रारम्भ में ही सदस्य रहा है।

भारत का महत्वपूर्ण कार्य (India's important role)—संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत ने बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने अक्सर उन पिछड़े हुए देशों का समर्थन किया है जो साम्राज्यवाद की चक्की के अन्दर पिस रहे हैं। भारत ने बार-बार कहा है कि इन देशों को अपने भाग्य का निर्माण आप करने का अधिकार मिलना चाहिए। भारत ने उच्च साम्राज्यवाद के विरुद्ध हिंदेशिया के उद्देश्य का समर्थन किया था। दक्षिण अफ्रीका के श्वेत शासक भारतीयों और अन्य काले लोगों के साथ जातीय भेदभाव की जो नीति बरत रहे हैं, भारत ने उसका सतत विरोध किया है। भारत दोनों शक्ति गुटों (Power Blocks) से अलग रहा है। इससे वह आंग्ल-अमरीकी गुट और सोवियत रूस तथा उसके समर्थकों के गुट के बीच की खाई को पाटने में और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना में काफी सफल हुआ है।

कोरिया में लड़ाई समाप्त करवाने में भारत ने महत्वपूर्ण कार्य किया था। भारत ने ही यह सुझाव दिया था कि संयुक्त राष्ट्र संघ की फौजों को 38वीं पैरेलल पार नहीं करनी चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली ने आखिर में भारत का ही प्रस्ताव स्वीकार किया था जिसके आधार पर 1953 में कोरिया में लड़ाई समाप्त हुई। पन. भारत के प्रचण्ड समर्थन के परिणामस्वरूप ही हिंदेशिया के संयुक्त राज्य का निर्माण हुआ था। जब शुरू में उच्च साम्राज्यवादियों ने इस देश की स्वतन्त्रता के लिए सकट खड़ा किया था, भारत ने हिंदेशिया की स्वतन्त्रता के पक्ष में विश्व का जनमत तैयार किया था। कोरिया की भाँति ही हिन्दचीन में भी भारत ने शान्ति-संस्थापन में बहुत योग दिया था। कोलम्बो कान्फ्रेंस में और फिर जनरल असेम्बली में उसके प्रतिनिधि श्री कृष्णा मेनन ने हिन्दचीन के संघर्ष को समाप्त करने के लिए ठोस सुझाव रखे थे। ये सुझाव स्वीकार कर लिये गए और 1954 में युद्ध समाप्त हो गया। हिन्दचीन में शान्ति समझौते की शर्तों को कार्यान्वित करने के लिए तीन राष्ट्रों का जो निरीक्षण आयोग नियुक्त किया गया था, भारत भी उसका एक सदस्य था।

अभी हाल में, भारत ने मिस्र और हंगरी के अधिकारों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भाग लिया था। मिस्र की भूमि से इंग्लैंड और फ्रांस की सेनाओं को

हटान के सम्बन्ध में जो अफ्रीकी-एशियाई प्रस्ताव पास हुआ था, उसमें भारत की भी आवाज शामिल थी। ये सेनाएँ स्वेज नहर में अपने-अपने देशों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए मिस्र में गई थी। हिन्दचीन की भाँति यहाँ भी भारत ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की आयात मेना में अपनी एक सैनिक टुकड़ी भेजी थी। इसका कार्य यह देखना था कि वहाँ युद्ध विराम हो और विदेशी सेनाएँ देश छोड़कर चली जाये। 1956 के अन्त में हंगरी में आन्तरिक विद्रोह हुआ था। रूस को भय था कि कहीं इस विद्रोह में पश्चिम शक्तियाँ हस्तक्षेप न कर बैठे। अतः, उसने यह विद्रोह कठोरता से दबा दिया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में एक प्रस्ताव उपस्थित किया था जिनमें हंगरी से कहा गया था कि वह अपनी प्रभुसत्ता के साथ किसी प्रकार का समझौता किये बिना संयुक्त राष्ट्र संघ के एक निरीक्षक को अपने यहाँ आने दे।

भारत प्रारम्भ से ही इस बात के लिए प्रयत्न करता रहा है कि जनवादी चीन को च्यांगकाई श्रेक की कठपुतली सरकार के स्थान पर सुरक्षा परिषद् में स्थान मिले। अब तक उसे सफलता नहीं मिल सकी है। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में नये सदस्यों के प्रवेश का जोरदार समर्थन किया था। इस बात का प्रमुख श्रेय भारत को ही प्राप्त है कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्य संख्या 60 से बढ़कर 81 हो गई।

ऐसे और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जब कि भारत ने शोषित राष्ट्रों के उद्देश्य का समर्थन किया है। यह बहुत कुछ भारत के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि टुनीसी के समस्त उपनिवेशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। भारत ट्यूनिशिया, मोरक्को अल्जीरिया और कीनिया के स्वतन्त्रता आन्दोलन का निरन्तर समर्थन करता रहा है। भारत कई वर्षों से ट्रस्टीशिप कौंसिल का सदस्य रहा है। यह उसके प्रस्ताव का ही नतीजा था कि ब्रिटिश टोगोलैण्ड पर से ट्रस्टीशिप को समाप्त करने और उसे घाना डोमीनियन में शामिल होने की अनुमति दी गई। पिछले कुछ समय में भारत इस बात के लिए प्रयास करता रहा है कि हाइड्रोजन और न्यूक्लियर बमों के निर्माण पर अंकुश लगे।

संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य संस्थाओं में कार्य (Work on the other bodies of the U.N.O.)—संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत ने जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, उसको मुक्तकण्ठ से मान्यता मिली है। 1949 में भारत प्रबल बहुमत से सुरक्षा परिषद् का अस्थायी सदस्य निर्वाचित हुआ था। 1950 में भारत की स्वास्थ्य मन्त्री राजकुमारी अमृतकौर विश्व स्वास्थ्य संस्था (World Health Organisation) की अध्यक्ष निर्वाचित हुई थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था के शासी निकाय में भारत को भी स्थायी स्थान प्राप्त है और भारत के श्रम मन्त्री श्री जगजीवन राम इस निकाय के अध्यक्ष निर्वाचित किये गए थे। यूनेस्को में भी भारत ने सहाय्य कार्य किया है। उसने यूनेस्को के सहयोग से कार्य करने के लिए भारत में एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की है। एक भारतीय श्री वी० एन० राव अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (International Court of Justice) के न्यायाधीश निर्वाचित हुए थे। भारत

के आमन्त्रण पर 1956 में इकाफे (ECAFE) का अधिवेशन भारत में हुआ था। भारत के एक प्रमुख राजनयज्ञ श्री बी० एन० सेन खाद्य और कृषि संस्था (F.A.O.) के डाइरेक्टर जनरल हैं। यूनेस्को की साधारण सभा का नवाँ अधिवेशन दिसम्बर 1956 में मौलाना अब्दुलकलाम आजाद के सभापतित्व में नई दिल्ली हुआ था।

सदस्यता के लाभ (Advantages of Membership)—संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य सदस्यों की भांति ही भारत को भी संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता से अनेक लाभ हैं। वह महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के विचार-विनियम में भाग ले सकता है और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना में योग दे सकता है। ऐसा मालूम पड़ता है मानो दुनिया तीसरे विश्वयुद्ध के कनारे पर खड़ी हो। संयुक्त राष्ट्र संघ में आग्ल-अमरीकी गुट का दबदबा है। उसके निर्णय सदैव ही न्याय पर आधारित नहीं होते। भारत जितना महान् है, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसे उतना महत्त्व प्राप्त नहीं है। फिर भी, वह संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयास कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के नाते भारत को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के किसी भी खतरे की ओर सुरक्षा-परिषद् का ध्यान आकृष्ट कर सकती है। पाकिस्तान ने सुरक्षा परिषद् के ऊपर जो आक्रमण किया था, उसकी सुरक्षा परिषद् में शिकायत भारत ने इसी क्षमता में की थी। यदि भारत की शिकायत पर उचित रीति में विचार नहीं हो सका है, तो इसका एकमात्र कारण यह है कि बड़ी-बड़ी शक्तियाँ और उनके पिछलग्गू देश प्रत्येक प्रश्न को उसके गुणावगुणों की दृष्टि में नहीं, प्रत्युत शक्ति-संघर्ष (Power Politics) की दृष्टि से देखते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के कारण ही भारत जनरल असेम्बली में दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का प्रश्न उठा सका था। संयुक्त राष्ट्र संघ दक्षिण अफ्रीका की जातीय भेदभाव की नीति को दूर नहीं कर सका है, इससे उसका निकम्मापन ही सिद्ध होता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संस्था ने जो भी अभिसमय स्वीकार किए हैं, भारत ने उन सबका अनुसमर्थन किया है। भारत सरकार ने इन अभिसमयों में प्रस्तावित कुछ सुधारों को तो कार्यान्वित भी कर दिया है और उनके कारण श्रमिकों की दशा में पर्याप्त सुधार हुआ है। भारत विश्व स्वास्थ्य संस्था (W.H.O.) का सदस्य है। इस कारण उसे क्षय, मलेरिया और अन्य रोगों के सम्बन्ध में उपयोगी सूचना और सहायता मिलती रहती है।

इसी तरह भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund), विश्व बैंक (World Bank), संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संस्था (United Nations Food and Agricultural Organisation) और यूनेस्को (U.N.E.S.C.O.) का सदस्य होने के नाते महत्वपूर्ण आर्थिक और सांस्कृतिक लाभ प्राप्त करता है।

सदस्यता के दायित्व—(Obligations of Membership)—संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता में कई कर्तव्य और दायित्व भी निहित हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के

सदस्य को अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिए एक साधन के रूप में युद्ध का त्याग करना पड़ता है। भारत ने अपने इस कर्तव्य को यथाशक्ति ईमानदारी के साथ निबाहा है। यही कारण है कि उसने पाकिस्तान के साथ काश्मीर सम्बन्धी अपने विवाद को सुलझाने के लिए सुरक्षा परिषद् से प्रार्थना की थी। पाकिस्तान की ओर से काफी उत्तेजना दिलाए जाने के बाद भी भारत ने युद्ध का रास्ता नहीं पकड़ा है। अन्य समस्त देशों की भाँति भारत को भी संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किये गये समस्त निर्णाय और पास किए गए समस्त प्रस्ताव कार्यान्वित करने पड़ते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी सहयोगी संस्थाओं के संधारण में जो व्यय होता है, अन्य समस्त सदस्य-राज्यों के साथ भारत को भी उमका कुछ भार सहन करना पड़ता है।

१२८. भारत की विदेश नीति और पंचशील (India's Foreign Policy and Panchsheel)

भारत की विदेश नीति की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि (Historical background of India's Foreign Policy)—भारत को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में आज जो मान प्राप्त है, उसका प्रमुख श्रेय जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में संचालित भारत की विदेश नीति को है। भारत की विदेश नीति के तीन आधार-स्रोत हैं—(1) देश की सुदीर्घ शान्ति-परम्परा, (2) राष्ट्रीय आन्दोलन की विशेष पद्धति और (3) महात्मा गांधी का प्रभाव। जहाँ तक सुदीर्घ शान्ति-परम्परा का सम्बन्ध है, भारत अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही शान्ति-प्रधान रहा है। शान्ति, सहिष्णुता और अहिंसा भारतीय जनता के प्रधान गुण रहे हैं। भारत की विदेश नीति इन्हीं राष्ट्रीय गुणों का प्रतिनिधित्व करती है। भारत की विदेश नीति के निर्माण में हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की विदेश पद्धति और स्वरूप का भी काफी योग रहा है। जहाँ संसार के अन्य अधिकांश देशों ने हिंसात्मक उपायों द्वारा अपनी स्वाधीनता प्राप्त की, भारत सरकार का पहला देश है जिसने अहिंसा और सत्य के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देकर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ी और उसमें सफलता प्राप्त की। जब पराधीन भारत ने शान्ति और अहिंसा के आदर्श को अपना लिया, स्वतन्त्र भारत उस आदर्श को कैसे छोड़ सकता था। अन्ततः, भारत की विदेश नीति को वर्तमान रूप देने में महात्मा गांधी की शिक्षाओं का भी कम महत्त्व नहीं है। महात्मा गांधी ने चालीस वर्षों तक भारत की राजनीति पर अपना प्रभाव जमाये रखा। जिन लोगों के हाथों में आज देश की बागडोर है, वे गांधी जी के सुयोग्य शिष्य हैं।

भारत की विदेश नीति के मूल सिद्धान्त (Fundamentals of India's Foreign Policy)—भारतीय संविधान के अनुच्छेद 58 में भारत की विदेश नीति के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख कर दिया गया है। उसमें कहा गया है, “राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति का, राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, संघटित लोगों के, एक दूसरे के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और

सन्धि बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का, तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के मध्यस्थता द्वारा निश्चयाने के लिए प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा।" भारत की विदेश नीति जातिवाद उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का चाहे वे सत्ता के किसी कोन में किसी भी रूप में क्यों न पाए जाते हों, विरोध करती है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीय बस के लोगों के सम्बन्ध में वहाँ की सरकार जातिवाद की जिस भयंकर नीति को प्रश्रय देती रही है, भारत सरकार ने उनका सदैव विरोध किया है। भारत का विचार है कि उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का अन्त्य यग्न निकलना समाप्त हो गया है और संसार के प्रत्येक देश को अपना भाग्य आप निर्माण करने का अधिकार मिलना चाहिए। उपनिवेशवाद और साम्राज्य-विरोधी इसी भावना में अनुप्राणित होकर भारत ने डची के विद्रोह हिन्देशिया के स्वतन्त्रता संग्राम का समर्थन किया। अफ्रीका में कीनिया, अञ्जीरिया और दक्षिणीय आदि विभिन्न देश अपनी स्वतन्त्रता के लिए जो संघर्ष कर रहे हैं, भारत की उससे पूरी सहानुभूति है और वह उनकी यथाशीघ्र सफलता चाहता है। भारत युद्ध का विरोधी और शान्ति का उपासक है। भारत का विचार है कि मनुष्यता को पिछले दो महायुद्धों की भयंकरता में शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और यह समझ लेना चाहिए कि यदि कहीं तीव्रता विश्वयुद्ध हुआ तो सम्पूर्ण मनुष्य जाति का अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। यही कारण है कि भारत ने आणविक आयुधों के विस्फोटों का गदैव विरोध किया है और निरस्त्रीकरण का समर्थन किया है। भारतवासी पैक्ट, सीटो और बगदाद पैक्ट जैंगे सैनिक समझौतों का विरोधी है और उसका विचार है कि इनसे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ता है तथा शान्ति की स्थापना में बाधा पहुँचती है। भारत स्वयं संसार के सभी देशों से मित्रता बनाये रखना चाहता है और किसी भी गुट में शामिल नहीं होना चाहता। भारत राष्ट्रमंडल और संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य है और समझौता है कि वे समस्त संस्थायें जो विभिन्न राष्ट्रों को एक दूसरे के निकट लाती हैं, सराहनीय हैं। भारत पाकिस्तान के साथ सधुर सम्बन्ध बनाए रखना चाहता है। भारतीय गोआ को शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा ही भारत में मिलाने के पक्ष में है।

पंचशील (Panchsheel):—भारत की विदेश नीति पंचशील के सिद्धान्तों पर आधारित है। पंचशील का साहित्यिक अर्थ आचरण के पाँच नियम हैं। इस शब्द की सबसे पहले आज से 25,00 वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने चर्चा की थी। उन्होंने मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति दिलाने के लिए 5 सिद्धान्तों का निरूपण किया था। जो मुख्य रूप से नैतिक और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखते थे। इन सिद्धान्तों का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। राजनीति में इस शब्द का सबसे पहले हिन्देशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो ने प्रयोग किया। उन्होंने 1 जून, 1945 को नवजात गणराज्य के 5 निर्देशक सिद्धान्त स्थिर किए थे और उन्हें पंचशील का नाम दिया था। वे सिद्धान्त थे—ईश्वर विश्वास, मानववाद, राष्ट्रवाद, लोकतन्त्र और सामाजिक न्याय।

अन्तर्राष्ट्रीय आचरण के सिद्धान्त के रूप में पंचशील का सर्वप्रथम उल्लेख 29 अप्रैल, 1954 को तिब्बत के सम्बन्ध में भारत-चीन समझौते में किया गया था। समझौते की प्रस्तावना में कहा गया था कि दोनों देशों के सम्बन्ध निम्नलिखित पाँच सिद्धान्तों के ऊपर आधारित होंगे—

- (1) एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुसत्ता के प्रति आदर !
- (2) एक दूसरे के ऊपर आक्रमण न करना !
- (3) एक दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना !
- (4) समानता और पारस्परिक लाभ !
- (5) शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व !

अप्रैल, 1955 में वाइंग में अफ्रीकी और एशियाई राष्ट्रों का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें पंचशील को मान्यता प्रदान की गई थी और कहा गया था कि यदि संसार के विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे के प्रति अपने सम्बन्ध पंचशील के आधार पर चलायें, तो संसार में शान्ति-स्थापना में भारी सहायता मिलेगी। रूस, चीन, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, बर्मा, मिस्र, हिन्देशिया और लका आदि संसार के विभिन्न राष्ट्रों ने पंचशील का समर्थन किया है। आज संसार में अशान्ति, तनाव और आपसी खींच-तान का जो वातावरण दिखाई दे रहा है, पंचशील उसे दूर करने में काफी सहायक हो सकता है।

प्रश्न

1. डोमोनियन स्टेट्स का क्या अभिप्राय है ? राष्ट्रमण्डल के सदस्य के रूप में भारत की स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. राष्ट्रमण्डल के स्वरूप और संगठन का वर्णन कीजिए। उसके सदस्य कहाँ तक स्वतन्त्र और प्रभुतासम्पन्न राज्य हैं ?
3. क्या आप भारत की राष्ट्रमण्डल की सदस्यता का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं ?
4. भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ से क्या सम्बन्ध है ?
5. भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य होने के नाते क्या लाभ प्राप्त होते हैं ? इस सदस्यता से भारत के ऊपर क्या दायित्व आ जाते हैं ?
6. भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति के लिए क्या करता रहा है ?
7. भारत की विदेश नीति पर एक टिप्पणी लिखिए।
8. डॉ राजेन्द्रप्रसाद कहते हैं, 'कि अगर मनुष्य जाति ने नष्ट नहीं होना तो इसको चाहिए कि संयुक्त राष्ट्र मण्डल के आदर्शों को अपनाने के लिए भरसक यत्न करे।' ऐसा करने के लिए भारतवर्ष ने अभी तक क्या किया है ?

Questions

1. What is the meaning of "Dominion Status ?" Explain India's position as a member of the Commonwealth of Nations.
2. Give an account of the nature and structure of Commonwealth. How far are its members independent, sovereign states ?
3. Can you justify India's membership of the Commonwealth ?
4. How is India related to the U.N O. ?
5. What advantages does India derive from being a member of the United Nations Organisation ? What obligations does this membership impose on India ?
6. What part has India been playing in honoring and upholding the aims and objects of U.N.O. ?
7. Write a short note on India's foreign policy.
8. Dr Rajendra Prasad had said, "If the human race is to survive, continued efforts for the realisation of the United Nations ideals are more necessary to day than ever before." What efforts have been made by India towards the realisation of there ideals of the United Nations ? (P.U. 1958)

अध्याय १८

भारत भविष्य के लिए योजना बनाता है

(India Plans for the Future)

१२६. भारत की दरिद्रता (India's Poverty)

केवल कोई भूला भटका देश-भूत ही इस तथ्य से इन्कार कर सकता है कि भारत एक दरिद्र देश है। कुछ लोग सदैव भारत के प्राचीन वैभव (Glory) की रट लगाते रहते हैं। परन्तु हमारे देश की वर्तमान अवस्था वैभव से कहीं दूर है। वह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और यहाँ तक कि राजनीतिक दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ है। सामाजिक दृष्टि से हम अस्पृश्यता (Untouchability), विधवाओं की अवस्था, बाल-विवाह, जाति-प्रथा और पर्दा आदि की अनेक बुराइयों से ग्रस्त है। आर्थिक दृष्टि से हम इस रूप में पिछड़े हुए हैं कि हमारे पास कोई प्रमुख उद्योग नहीं है और हमें बहुत-सा तैयार माल विदेशों से मँगवाना पड़ता है। कृषि तक में हम रूस, आस्ट्रेलिया और मिस्र-जैसे देशों से पिछड़े हुए हैं। शिक्षा में हम बिलकुल ही पीछे हैं। हमारे 15 प्रतिशत लोग भी शायद पढ़े-लिखे नहीं हैं।

यह सुविदित है कि हमारी वर्तमान पिछड़ी हुई अवस्था का मुख्य कारण भयानक दरिद्रता है। वास्तव में, हमारा देश अर्थशास्त्र की एक पहेली है—देश समृद्धिशाली (Prosperous) और उसकी जनता असंख्य दरिद्र ! इतने प्राकृतिक साधन (Natural Resources) होते हुए भी जनता का रहन-सहन का स्तर बहुत ही गिरा हुआ है। कुल जनसंख्या के केवल 40 प्रतिशत को पेट भर भोजन मिलता है। 30 प्रतिशत आधे पेट रहते हैं और 30 प्रतिशत लगभग भूखे ही रह जाते हैं। स्वभावतः ही भारत रोगों का निवास-स्थान बन गया है। मलेरिया के कारण सालाना 3 लाख मृत्युएँ होती हैं। क्षय रोग से प्रतिवर्ष 25 लाख व्यक्ति पीड़ित होते और 5 लाख व्यक्ति मरते हैं। अनुमान के अनुसार भारत की प्रति-व्यक्ति आय 1931-32 में 65 रु० वार्षिक थी। जबकि अमरीका में 1,406 ब्रिटेन में 908 और जापान में 218 रुपये थी। द्वितीय विश्व-महायुद्ध के बाद व्यक्तिगत आय तिगुनी बढ़ गई है। राष्ट्रीय आय समिति नेशनल इनकम कमेटी ने 1954-55 की आय 254 रु० बताई है लेकिन इससे सचाई छिप जाती है, क्योंकि वस्तुओं की कीमत इस अवधि में चौगुनी बढ़ गई है।

भारत की गरीबी के कारण (Causes of India's Poverty)—भारत की गरीबी के कारण बहुत से हैं, जिनमें से कुछ राजनीतिक हैं। निष्पक्ष इतिहासकार मानते हैं कि अंग्रेजी शासन के पहले भारत एक समृद्धिशाली देश था। अकबर के

समय के भारत का राजनीतिक वर्णन करते हुए डब्ल्यू० एच० मूरलैड लिखते हैं कि 5000 सैनिकों के सेनापति एक महीने में कम-से-कम 18000 रुपये कमाते थे। यह रकम 1914 में 1 लाख रुपये और 1951 में 5 लाख के समान थी। (अर्थात् 1951 में 400 रु० से 900 रु० तक के बराबर थी)। यह स्पष्ट है कि भारत की गरीबी अंग्रेजी शासन की देन है। ब्रिटिश शासकों ने अपने 200 वर्ष के शासन में शोषण (Exploitation) की स्वार्थपूर्ण नीति का अवलम्बन किया। उन्होंने जान-बूझ कर हमारी कला-कौशल का नाश किया और भारत में बड़े उद्योगों की वृद्धि को रोका। उनकी नीति यह थी कि भारत सदैव ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति करता और बने-बनाये ब्रिटिश माल की खपत करता रहे। उन्होंने भारत की समृद्धि की सामाजिक बाधाओं का निराकरण करने के लिए केवल आधे दिल से प्रयत्न किए। इसके अतिरिक्त उन्होंने भारत के शासन तन्त्र के उच्चतम स्तर को बहुत व्यय-साध्य बना दिया, जो भारत की वास्तविक शक्ति के बाहर था। उन्होंने राष्ट्र-निर्माण के कार्यों की अपेक्षा सेना और पुलिस पर अधिक व्यय किया।

भारत की गरीबी के आर्थिक कारण भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। भारत के छोटे उद्योगों का नाश सबसे बड़ा कारण है। और बड़े उद्योगों के अभाव के कारण अधिकाधिक लोग कृषि पर अवलम्बित होते गए। फलतः, आज 70 प्रतिशत (See India 1958) से अधिक लोग कृषि जीवन-निर्वाह करते हैं। परन्तु हमारी कृषि की पद्धति पुरानी है और भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े भी हो गए हैं। हमारी प्रति-एकड़ उपज बहुत कम है और किसान बहुत गरीब हैं। देश की जनसंख्या में भारी वृद्धि भी गरीबी का एक कारण बन गई है। शिक्षा और अज्ञान भी गरीबी के कारण हैं। शिक्षा के अभाव से हमारे कृषि-मजदूर और औद्योगिक-मजदूर अदक्ष हो गए हैं। इससे उत्पादन के आधुनिक उपायों को काम में लाने में बाधा पड़ती है। इस प्रकार इससे उत्पादन-शक्ति घटती और गरीबी में वृद्धि होती है। संयुक्त परिवार और विवाहादि के अवसरो पर दिल खोलकर व्यय करने की प्रथाएँ भी हमारी आय पर बहुत भार डालती हैं।

उपाय—राष्ट्र के सामने दरिद्रता-निवारण का काम पहला है परन्तु यह उतना ही कठिन भी है। इसके लिए बहुत से उपाय अपनाये गए हैं, जिनमें कुछ ये हैं—छोटे और बड़े उद्योगों का विकास, कृषि का आधुनिकीकरण, शिक्षा-प्रचार और सामाजिक बुराइयों को दूर करना। इन सबके लिए बुद्धिमत्तापूर्ण योजना बनाने और जोरों के साथ काम करने की जरूरत है। परन्तु इन उपायों से समस्या की ऊपरी तह-मात्र खुलेगी। दरिद्रता के क्रान्तिकारी पूर्ण उच्छेदन (Complete Change) के लिए समाजवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। उसके अनुसार, उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व होना चाहिए। भूमि पर किसानों का स्वामित्व हो और परोपजीवी (Parasitic) जमींदारों की प्रथा तोड़ दी जाय। सब महत्वपूर्ण उद्योगों का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Industries) कर दिया जाना

चाहिए। राष्ट्रीय सम्पत्ति का न्यायपूर्ण बँटवारा होना चाहिए। इस समय देश की कुल आय का एक तिहाई 5 प्रतिशत लोगों को प्राप्त होता है। यह स्थिति समाप्त होनी चाहिए।

१३०. सरकार की औद्योगिक नीति तथा पंचवर्षीय योजना (India's Industrial Policy and Five Year Plan)

15 अगस्त, 1947 को भारत को स्वतन्त्रता मिली। इससे जनता को अपने आर्थिक और राजनीतिक भविष्य-निर्माण का अधिकार प्राप्त हुआ। भारत के औद्योगिक विकास के बारे में नेहरू जी ने अपनी सरकार की नीति को स्पष्ट करते हुए 1948 में एक घोषणा की थी। उसके अनुसार देश के औद्योगिक विकास में प्रगति करने की महान् जिम्मेदारी राष्ट्र ने अपने ऊपर ली थी। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर सरकार ने मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपनाया है। उद्योग 4 विभागों में बाँटे गए हैं—(1) जो राष्ट्र के कल्याण के लिए इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि खानगी प्रयत्नों (Private Enterprise) पर नहीं छोड़े जा सकते; उदाहरणार्थ—शस्त्रास्त्र-निर्माण, रेलवे यातायात, आदि। इनके ऊपर अधिकार केवल राष्ट्र का ही होना चाहिए। (2) ऐसे उद्योग, जिनके नए कारखाने सरकारी होंगे; परन्तु अभी जितने मौजूद हैं, जिनके हाथ में है, उन्हीं के हाथ में रहने दिए जाएँगे; जैसे लोहा और इस्पात उद्योग, (Steel Industry) कोयला, विमान और जहाज-निर्माण, आदि। (3) जो खानगी प्रयत्नों द्वारा संचालित होंगे, परन्तु सरकार का उन पर नियन्त्रण रहेगा। उदाहरण के लिए यन्त्रों के हिस्से, भारी रासायनिक पदार्थ, (Heavy Chemical Industries) चीनी, उर्वरक, कपास और ऊनी मिलें, सीमेण्ट, नमक, आदि। (4) बाकी सभी उद्योगों में खानगी प्रयत्नों को पूरी स्वतन्त्रता दी जायगी। अतः, यह स्पष्ट है कि सरकार जल्दी-से-जल्दी औद्योगिक विकास में प्रगति करना चाहती है। इसलिए औद्योगीकरण कृषि तथा समस्त भारत की अन्य समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकार ने 1951 में एक योजना आयोग (Planning Commission) को जन्म दिया। इस आयोग का मुख्य कर्तव्य एक दूसरे के बाद ऐसी योजनाएँ बनाये जाना है, जिससे देश के उपलब्ध साधनों का उत्तमोत्तम उपयोग हो और भारतीय जनता का आर्थिक अथवा सामाजिक स्तर ऊँचा हो।

१३१. प्रथम पंचवर्षीय योजना (First Five Year Plan)

योजना आयोग ने सोच विचार कर पहली पंचवर्षीय योजना बनाई, जिसका कार्यकाल अप्रैल 1951 से मार्च 1956 तक था। इस योजना का मुख्य उद्देश्य था—(1) आने वाली योजनाओं के लिए नींव रखना, (2) अन्न की समस्या को दूर करना, (3) उद्योगों (Industries) के लिए कच्चे माल (Raw material) की व्यवस्था करना और (4) क्योंकि कच्चा माल कृषि उपज पर निर्भर है इस लिए इस योजना में कृषि पर जोर ज्यादा दिया गया। इस योजना पर 2,356 करोड़ रुपया खर्च किया गया। यह खर्च इस प्रकार हुआ—

करोड़ों में

(1) खेती और सामुदायिक विकास (Agriculture and Community Development)	357
(2) सिंचाई और बिजली (Irrigation and Power)	361
(3) उद्योग (Industries and Mining)	179
(4) परिवहन और संचार साधन (Transport and Communication)	557
(5) सामाजिक सेवाएँ (Social Services)	533
(6) अन्य (Miscellaneous)	69

योग 2,356

सफलता (Success)—पहली योजना 1956 में समाप्त हो गई और हमें अच्छी सफलता मिली। इन पाँच सालों में हमारी राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो 9,100 करोड़ से बढ़कर 10,800 हो गई। कृषि के क्षेत्र में हमें विशेष सफलता मिली। हमने 1951 के मुकाबले 1956 में 90 लाख टन ज्यादा खाद्यान्न उत्पन्न किया और रूई में भी 11 लाख टन की वृद्धि हुई। कई कारखाने खोले गए जिनमें से कुछेक का नाम निम्न दिया जाता है—

- (1) सिन्दरी खाद का कारखाना (Sindri Fertilizer's)।
- (2) अलवाय में रेयर अर्थस् (Rare Earths) सरकारी फैक्ट्री का निर्माण।
- (3) रूपनारायणपुर में टेलीफोन केबल (Cables) का कारखाना।
- (4) जलहाली में मशीन पुर्जों का कारखाना (Machine Tools Factory)।
- (5) दिल्ली में डी. डी. टी फैक्ट्री (D. D. T. Factory)।
- (6) पूना में पेनसिलीन की फैक्ट्री (Penicillin Factory), आदि।

इस पंचवर्षीय योजना ने सबसे बड़ा जो काम किया है वह है ग्रामीण क्षेत्रों में क्रान्ति। इससे ग्राम और ग्रामीण को एक नयी जिन्दगी मिली है, जिसका आरम्भ सामुदायिक विकास आन्दोलन (Community Development Projects) ने किया।

सामुदायिक विकास का आदर्श (Objectives of Community Projects)—इनके मुख्य काम ये हैं—गाँव की खेती की उपज सब तरह से बढ़ाना, गाँव में उद्योग की उन्नति, गाँव में साफ रास्ते बनाना, गाँव को बड़ी सड़क के साथ मिलाना और अन्य संचार साधन बढ़ाना, गाँव में पाठशाला बनाना तथा स्वास्थ्य का ख्याल रखना, गाँव में मनोरंजन (Recreation) का इन्तजाम, गाँव में अच्छे और साफ घरों का निर्माण, ग्राम सभा और पंचायत आदि सभाओं को शक्ति देना, आदि। संक्षेप में, इनका क्षेत्र ग्राम्य जीवन को सब दिशा में उन्नत करना है।

इस समय भारत में 2,152 ऐसे प्रोजेक्ट्स काम कर रहे हैं। इनसे हमारे देश के 27,600 गाँवों पर प्रभाव पड़ रहा है जिनमें लगभग 15 करोड़ लोग रहते हैं। इस समय इन विकास योजनाओं के कुछ परिणाम ये हैं—40 हजार मील कच्ची

और 8 हजार मील पक्की सड़क बन चुकी है, 15 हजार नए स्कूल, 41 हजार समाज शिक्षा केन्द्र खोले गये हैं, 12 लाख प्रौढ़ों (Adults) को अक्षर ज्ञान कराया जा चुका है, 11,540 पंचायतें स्थापित हुई हैं। खेती-बाड़ी की उपज में 25% वृद्धि हुई है। और भी कई एक क्षेत्र हैं जिनमें इनके और जनता के सहयोग से बहुत महत्वपूर्ण काम हुए हैं।

१३२. दूसरी पंचवर्षीय योजना (Second Five Year Plan)

पहली योजना ने तो हमारी नींव ही रखी है अभी भवन तो बाकी है। योजना आयोग ने अब दूसरी योजना बनाई है और अभी तीसरी भी बनेगी। इसके मूल उद्देश्य हैं राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना और देश का स्तर ऊँचा करना, मूल और भारी उद्योगों (Basic and Heavy Industries) के विकास पर जोर देना, रोजगार के अवसरों का अधिक विस्तार (Expansion of employment opportunities) और आय और सम्पत्ति की विशेषताओं (Inequalities) को दूर करके अधिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण (Even distribution of economic power) करना है। इस योजना का कार्यकाल 1956-61 तक का होगा और इसमें 4,800 करोड़ का व्यय इस प्रकार किया जायेगा—

	करोड़ों में
1. कृषि और सामुदायिक विकास	538
2. सिंचाई और बिजली	913
3. उद्योग और खान	890
4. परिवहन और संचार	1,385
5. सामाजिक सेवाएँ	984
6. विविध	99
योग	4,800

यह योजना पहली योजना से बहुत बड़ी है और इसका विशेष लक्ष्य भारतवर्ष को संसार के सभी देशों में ऊँचा बनाना है। बहुत से लोगों को यह भय है कि केन्द्रीय सरकार इसकी पूर्ति के लिए शायद इतना रुपया इकट्ठा न कर सके, परन्तु हमें भयभीत नहीं होना चाहिए। अकेले ज्वालामुखी में अगर पेट्रोल (Petrol) निकल आया, जैसे कि आशा है तो देश के भाग्य में तथा योजना की सफलता में बड़ा सहयोग मिलेगा।

१३३. केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल (Central Social Welfare Board)

समाज कल्याण (Social Welfare)—सरकार का कर्त्तव्य है कि देश के सब दुःखी लोगों की सहायता करें। हमारे देश में लाखों अपाहिज, लूले-लंगड़े, अबला

स्त्रियाँ तथा बच्चे हैं। इन लोगों के हेतु तथा कई सामाजिक बुराईयों को जैसे स्त्रियों का अनैतिक व्यापार (Immoral traffic in women and girls), बाल अपराध (Juvenile Delinquents), भीख माँगना आदि को दूर करने के लिए 1953 में यह मण्डल स्थापित किया गया था। यह मण्डल एक स्वायत्तशासी है, समाज कल्याण सम्बन्धी कार्यों को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से स्वैच्छिक समाज सेवा सगठनों (Private Welfare Associations) को सहायता अनुदान देना इसका मुख्य कार्य है। इस कार्य के लिए प्रथम योजना में 4 करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी तथा द्वितीय योजना में 14 करोड़ रु० की व्यवस्था की गई है। इस मण्डल के सहयोग से कई कल्याण गभाएँ चल रही हैं। 2,345 ग्राम सेविकाएँ तथा 300 दाइयाँ प्रशिक्षित हुई हैं। इस मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती दुर्गा देशमुख हैं।

१३४. भूदान (Voluntary Land Gift)

हम पहले लिख आये हैं कि भारत में 70 प्रतिशत कृषक हैं और जिसमें उनकी भलाई हो, उमी में देश का कल्याण है। भूदान अथवा स्वैच्छिक भूमिदान का श्रीगणेश आचार्य विनोबा भावे ने अप्रैल 1951 को उस समय किया, जब वह हैदराबाद राज्य के तेलगाना जिले की यात्रा कर रहे थे। इन जिलों में उन दिनों भूमि के प्रश्न पर किसानों में बड़ा असन्तोष छाया हुआ था।

आन्दोलन के उद्देश्य के विषय में बतलाते हुए आचार्य विनोबा कहते हैं, “न्याय और समानता के आधार पर टिके हुए समाज में भूमि पर सब का अधिकार होना चाहिये इसलिए हम भूमि की भिक्षा नहीं माँग रहे, परन्तु उन गरीबों का हिस्सा माँग रहे हैं जो भूमि प्राप्त करने के सच्चे अधिकारी हैं”—इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य विना किसी खून खराबी के देश में सामाजिक और आर्थिक दुर्व्यवस्था को दूर करना है।

आचार्य विनोबा भावे का भूदान आन्दोलन ग्राज सारे देश में चल रहा है और दिसम्बर 1957 के अन्त तक 44 लाख एकड़ के लगभग लोगों ने भूमि दान दी जिसमें से 7 लाख एकड़ भूमि जमींदारों में बाँट दी गई है। यह एक ऐसा क्रान्तिकारी आन्दोलन है जिसने सारे संसार को आश्चर्य में डाला हुआ है।

प्रश्न

1. सामुदायिक विकास कार्यक्रम के विषय में आप क्या जानते हैं, इसके अन्तर्गत भारत के गाँवों में क्या हो रहा है ?
2. हम योजनाएँ क्यों बनाते हैं ? प्रथम पंचवर्षीय योजना का संक्षिप्त में वर्णन करो। क्या हमारी यह योजना सफल हुई ?
2. दूसरी पंचवर्षीय योजना क्या है, इसमें उद्योगिककरण पर क्यों इतना जोर दिया गया है ?

4. योजना आयोग, केन्द्रीय समाज कल्याण मण्डल, सामुदायिक विकास आन्दोलन तथा भूदान भारत की क्या सेवा कर रहे हैं ?

Questions

- 1 What do you know about Community Projects ? What work is being done in the villages under their direction ?
- 2 Why do we have Plans ? Write briefly about the First Five Year Plan Was this Plan successful ?
- 3 What is India's Second Five Year Plan ? Why it lays stress on Industrialisation of the country ?
4. What services are the following bodies rendering to the country (a) Planning Commission (b) Central Social welfare Board (c) Community Projects and (d) Bhoodan

